

श्रीश्रीरूपगोस्वामी विरचित

श्रीलालितमाधव नाटक



वज्रविभूति
श्रीश्यामदास

॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दौ जयतः ॥

श्रीमद्रूपगोस्वामी-प्रभु प्रणीत
श्रीललितमाधव-नाटक

श्रीमन्नित्यानन्दप्रभु वंशावतंस अखण्ड गुणगणालंकृत
परम पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित श्रीदेवकीनन्दन गोस्वामि प्रभु-
पादाश्रित

श्रीश्यामदास

द्वारा सम्पादित

प्रकाशक : श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

श्रीललितमाधव के नाटकीय-पात्रों का परिचय

१. सूत्रकार-ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामी।
२. नटी-मुखरा, श्रीराधा की नानी।
३. श्रीकृष्ण-श्रीयशुदानन्दन, नाटक-नायक।
४. तारा-श्रीराधा का एक नाम है।
५. पौर्णमासी-श्रीसान्दीपनि की माता, नारद-शिष्या, सर्वसिद्धिविधायिनी।
६. नान्दीमुखी-श्रीसान्दीपनि की कन्या, श्रीराधा-सहचरी।
७. गार्गी-श्रीगर्ग मुनि की कन्या
८. एकानंशा-अष्टभुजादेवी-विन्ध्यवासिनी, कंस के हाथ से छूटकर उसे उसके मारने वाले के जन्म का समाचार देने वाली।
९. श्रीचन्द्रभानु-श्रीचन्द्रावली के पिता, श्रीवृषभानु के बड़े भाई।
१०. श्रीवृषभानु-श्रीराधा के पिता।
११. विन्ध्याचल-विन्ध्यपर्वत, विन्ध्यवासिनी देवी का निवास स्थान।
१२. जटिला-अभिमन्यु गोप की माता, श्रीराधा की माया-प्रत्यायित सास।
१३. ललिता-विशाखा-श्रीराधा की प्रधान सखियां।
१४. पद्मा-भद्रा-शैव्या एवं श्यामा-श्रीचन्द्रावली की सखियां।
१५. जाम्बवान-रिक्षराज जाम्बवान, जाम्बवती के पिता।
१६. कराला-श्रीचन्द्रावली की नानी। भारुण्डा की माता।
१७. भारुण्डा-गोवर्धन मल्ल की माता, चन्द्रावली की माया-प्रत्यायित सास।
१८. कुन्दलता-श्रीउपनन्द के पुत्र सुभद्र की पत्नि, चन्द्रावली की देवरानी (सुभद्र एवं गोवर्धन परस्पर भाई हैं)।
१९. वृन्दा-श्रीवृन्दावन की वनदेवी, श्रीराधा की वनसखी।

२०. मधुमंगल-श्रीसान्दीपनि मुनि का पुत्र, जिसे श्रीकृष्ण ने अध्ययन के बाद यमलोक से लाकर दक्षिणा रूप में दिया था, श्रीकृष्ण का विदूषक-सखा।

२१. शंखचूड़-कुबेर का अनुचर एक यक्ष जो कुबेर के खजाने से स्यमन्तक मणि चुरा लाया था, कंस द्वारा श्रीराधा का अपहरण करने के लिए व्रज में भेजा गया था। श्रीकृष्ण ने इसे मारकर इसके मस्तक में से मणि निकाल ली थी।

२२. श्रीमाधव-श्रीकृष्णवेषधारी गन्धर्व, श्रीकृष्ण का अभिनयकर्ता।

२३. नववृन्दा-विश्वकर्मा की शिष्या जो द्वारका में निर्मित नववृन्दावन की देवी थी। श्रीराधा का दास्य करती थी।

२४. माधवी-कंचुकी-श्रीरुक्मिणी की प्रमुख सखी एवं दासी।

२५. बकुला-श्रीरुक्मिणी के लिए पुष्प चयन कर लाने वाली दासी। नववृन्दा की सखी।

२६. पिंगला रथांगी एवं सुकण्ठी-श्रीसत्यभामा की सखियाँ।

२७. सुनन्द-श्रीरुक्मिणी का पत्रवाहक ब्राह्मण जो श्रीकृष्ण के पास द्वारका गया था।

२८. धात्री-जाम्बवान के घर ललिता रूपी सुन्दरी की धात्री।

२९. विश्वकर्मा-देवताओं का शिल्पी।

३०. तुलसी-मालती-द्वारका-अन्तःपुर की द्वार-सखियाँ।

३१. श्रीउद्धव, अक्रूर, भीष्मक, नारद, गरुड़ या सुपर्ण, श्रीनन्द-यशोदा-बलराम, रोहिणी, श्रीराधा, श्रीचन्द्रावली-आदि आदि और अनेक पात्र सबके चिर परिचित हैं।

विशेष-श्रीरुक्मिणी स्वरूपतः चन्द्रावली हैं और श्रीसत्यभामा श्रीराधा हैं-इस नाटक-उल्लेख में।

प्रकाशक : श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

संस्करण : प्रथम : १००० प्रतियां, तिथि : श्रीराधाष्टमी सं. २०४८, १५ सितम्बर १९६१

द्वितीय : १००० प्रतियां, तिथि : मकर संक्रान्ति २०५५ जन. १९६६

न्योछावर : एक सौ रुपये

मुद्रक : चित्रलेखा, श्रीहरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ, बागबुन्देला, वृन्दावन

दूरभाष : ४४२४१५, ४४३४१५, ४४४४१५

प्राक्कथन !

परम करुणामय कलियुग-पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्यदेव की असीम कृपा से उनके प्रियपार्षद, उनके मनोभीष्ट स्थापक, भक्तिरस प्रस्थानाचार्य श्रीमद्रूपगोस्वामी रचित श्रीललितमाधव-नाटक को कृष्णलीलारस-रसिक भागवतजनों के करकमलों में अर्पण करते हुए महान् हर्ष का अनुभव हो रहा है। यह ऐसा अद्भुत नाटक है जिसकी श्रीमहाप्रभुजी ने शतमुख प्रशंसा की। नाट्यकला के आचार्य श्रीरामानन्दराय (श्रीजगन्नाथ नाटक-कर्ता) ने जब श्रीरूप रचित श्रीविदग्धमाधव-नाटक तथा इस श्रीललितमाधव नाटक के कुछ अंशों को सुना तो उनको कहना पड़ा-

एत शुनि राय कहे प्रभुर चरणे।
रूपेर कवित्व प्रशंसि सहस्र बदनै॥
कवित्व न हय एइ अमृतेर धार।
नाटक लक्षण सब सिद्धान्तेर सार॥
प्रेमपरिपाटी एइ अद्भुत वर्णन।
शुनि चित्त-कर्णे हय आनन्द-धूर्णन॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत, ३।१।१३८-४०)

प्रभो ! यह तो कवित्व नहीं, अमृत की धारा है। नाटक के सब लक्षण इसमें हैं। सभी सिद्धान्तों का सार है। प्रेमपरिपाटी का ऐसा अद्भुत वर्णन है, जिसे सुनकर चित्त एवं कान आनन्द से घूमने लगते हैं-मूर्छित हो जाते हैं।

वास्तव में सुधी पाठकजन इसमें वर्णित अप्राकृतरस-रहस्य काव्य-माधुर्य तथा प्रेमलीला-परिवेशन-परिपाटी का आस्वादन कर मन्त्रमुग्ध रह जायेंगे।

श्रीमहाप्रभुजी की अपूर्व कृपा-शक्ति एवं शिक्षा प्राप्त कर उनकी आज्ञा से श्रीरूप प्रयाग से वृन्दावन की ओर चल पड़े थे। उनके मन में श्रीकृष्ण-लीलाओं का रससागर तरंगायित हो रहा था। उन्होंने उन सब लीलाओं को नाटक रूप में रचने का निश्चय किया। ब्रज तथा द्वारका-लीलाओं को एक ही नाटक ग्रन्थ में वे सन्निविष्ट करना चाहते थे। वृन्दावन आकर अनुमानतः संवत् १५८५ में उन्होंने ग्रन्थ का (विदग्धमाधव-नाटक का) मंगलाचरण लिखा। उनका मन श्रीमहाप्रभु के विरह में बेचैन था, दर्शनों के लिए चंचल हो उठा। चल पड़े पुनः नीलाचल की ओर।

नीलाचल की ओर चल रहे थे, किन्तु नाटक की

विविध घटनाओं तथा स्वरूप सामग्री का चिन्तन उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। गौड़देश से नीलाचल की ओर बढ़ने पर उड़ीसा के सत्यभामापुर गांव में उन्हें रात को ठहरना पड़ा। वहीं उन्होंने स्वप्न देखा कि एक दिव्य रमणी सम्मुख आकर उन्हें आदेश दे रही है-

आमार नाटक पृथक् करह रचन। आमार कृपाते नाटक हइवे विचक्षण॥

स्वप्न देखि रूप करिल विचार। सत्यभामार आज्ञा पृथक् नाटक करिवार॥

ब्रज-पुरलीला एकत्र करियाछि घटना। दुइ भागे करि एवे करिब रचना॥

श्रीचै. चरि. ३।१।३७-३८

रूप ! मेरे नाटक की (पुर-लीला की) पृथक् रचना करना। अर्थात् ब्रजलीला के साथ मिलाकर एक नाटक रूप में रचना मत करना। मेरी कृपा से तुम्हारा नाटक अति सुन्दर और विलक्षण होगा। जागने पर श्रीरूप ने जाना कि वह रमणी तो साक्षात् श्रीसत्यभामा थीं। उनका आदेश है कि मैं उनका नाटक (द्वारका-लीला) ब्रज-लीला से पृथक् रचूँ। मैंने तो दोनों लीलाओं को एक ही नाटक में रखने का निश्चय किया था। ठीक है अब मैं ब्रजलीला तथा द्वारकालीला सम्बन्धी नाटक अलग-अलग करके उल्लेख करूँगा।

श्रीरूप नीलाचल में श्रीमहाप्रभुजी के पास पहुँचे, हर्ष पूर्वक प्रभु का सान्निध्य प्राप्त किया। अनेक भक्तों का परिचय कराया श्रीप्रभु ने श्रीरूप के साथ। दो एक दिन बाद सर्वज्ञ शिरोमणि श्रीमहाप्रभु श्रीरूप से अचानक कह उठे-

कृष्णकै बाहिर नाहि करिह ब्रज हैते।

ब्रज छाड़ि कृष्ण कभु ना जाय काहां ते॥

(वही, ३।१।६१)

रूप ! श्रीकृष्ण को ब्रज से बाहर मत ले जाना। वे ब्रज छोड़कर कभी कहीं नहीं जाते। श्रीरूप आश्चर्य में डूब गये कि मैंने महाप्रभु से अभी नाटकों के सम्बन्ध में कुछ जिक्र ही नहीं किया। गम्भीर हो गये। (बाद में श्रीमहाप्रभु ने इस रहस्य को भी श्रीरूप को बताया कि श्रीकृष्ण प्रकट-लीला में तो ब्रज से मथुरा-द्वारका जाते हैं, किन्तु अप्रकट-लीला में वे ब्रज छोड़कर कभी अन्यत्र नहीं जाते।)

प्रायिकी-लीला

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रकट-लीला को 'प्रायिकी-लीला' कहते हैं। इसमें ब्रज-लीला ब्रज में ही आरम्भ होकर ब्रज में ही परिसमाप्त होती है। जब श्रीकृष्ण मथुरा-द्वारका जाते हैं, तब ब्रजवासीजन अदम्य-विरह सागर में डूब जाते हैं। उस विरह को शान्त करने के लिए वे फिर ब्रज में दन्तवक्र के वध के बाद लौट आते हैं। उस समय ब्रजवासी-वर्ग श्रीकृष्ण मथुरा-द्वारका जाने को स्वप्न रूप में अनुभव करते हैं। तीन मास ब्रज में प्रकट-विहार करके फिर परिकरों सहित श्रीकृष्ण के अप्रकट-लीला में प्रवेश कर जाते हैं। अर्थात् ब्रज-लीला की परिसमाप्ति ब्रज में ही हो जाती है। किन्तु द्वारका-लीला विद्यमान रहती है। दन्तवक्र का वध करने के बाद ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण तो ब्रज में लौट आते हैं, किन्तु उनका श्रीवासुदेव रूप द्वारका में प्रकाशित रहता है। द्वारका-लीला चलती रहती है। यथा समय फिर द्वारका-लीला द्वारका में ही परिसमाप्त होती है। उस समय बहुत पहले ब्रजलीला ब्रज में परिसमाप्त हो चुकी होती है। इस प्रकार प्रायिकी ब्रजलीलान्तर्गत रसरज धीरोदात्त लालित्य-गुणशाली श्रीकृष्ण तथा उनकी ह्लादिनी-स्वरूपाशक्ति महाभाव-स्वरूपिणी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी के सौन्दर्य-माधुर्यमय लीलारस का जो दिव्याति दिव्य सिन्धु तरंगायित होता है, उसका एक कणा है, "श्रीविदग्धमाधव-नाटक" उसमें अनेकानेक अपूर्व चित्त-चमत्कारी मधुर रसास्वादन रसिकजन के लिए सन्निविष्ट है।

कादाचित्की-लीला

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के ब्रज में वापस लौट आने का स्पष्ट उल्लेख न रहने से ब्रजोपासक अतिशय कष्ट भोग करते रहते हैं। ब्रज-परिकरों के साथ श्रीकृष्ण के नित्य अप्रकट-लीला में प्रवेश के रहस्य को भी न जानकर, अधिकन्तु द्वारका में उनकी अवस्थिति तथा लीला-परिसमाप्ति का उल्लेख देख-सुनकर ब्रजोपासकों के हृदयों का विदीर्ण होना स्वाभाविक है। ब्रजोपासकों की इस वेदना का अनुभव कर ब्रजोपासना-निष्ठ स्वयं श्रीरूपगोस्वामी को श्रीमहाप्रभु-कृपा से एक दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। उस दिव्यदृष्टि में श्रीरूपगोस्वामी ने भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की "कादाचित्की-लीला" का साक्षात्कार किया। कादाचित्की-अर्थात् जो लीला कभी-कभी कदाचित् होती है। गत द्वापर में यह लीला नहीं हुई, किसी दूसरे कल्प में हुई होगी। कादाचित्की-लीला में ब्रजपरिकर तथा द्वारका-परिकर भिन्न विग्रह होते हुए भी

योगमाया द्वारा एक तत्त्वात्मक एवं समान रूप में प्रतिभात होते हैं। इस लीला में श्रीकृष्ण के ब्रज से द्वारका आने पर ब्रजवासी-गण भी द्वारका में आकर श्रीकृष्ण से मिलते हैं-उनका विरह-सन्ताप सब दूर हो जाता है और सब ब्रज में लौट आते हैं। इस प्रकार रस का अद्भुत रूप में यथेष्ट पोषण होता है।

श्रीरूपगोस्वामिपाद ने द्वारकालीला को ब्रजलीला के क्रोड़ में स्थापन कर इस कादाचित्की-लीला का सन्निवेश किया है अपनी इस अद्वितीय रचना 'श्रीललितमाधव-नाटक' में। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी ने जब इस कादाचित्की-लीला को सुना तो विरहोन्मत्त होकर कई दिन तक मूर्छित पड़े रहे। और तो और स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने जब नीलाचल में श्रीसार्वभौम, श्रीरामानन्दराय तथा श्रीस्वरूप दामोदर के साथ श्रीरूप से श्रीललितमाधव-नाटक के कुछ अंशों को सुना तो वे प्रेमाविष्ट हो उठे थे। वास्तव में कवित्व में वृहस्पति, तत्त्व-विचार में श्रीव्यास और प्रेम शृंगार की व्यंजना में श्रीशुकदेव के समान श्रीमद्रूपगोस्वामी की इस अद्भुत कृति में तीनों बातें-कवित्व, तत्त्व एवं प्रेम की एक साथ चमत्कारी झांकियां मिलती हैं।

देवाचार्यं यं विदुःसत्कवित्वे,

पाराशर्यं तत्त्ववादे महान्तः।

शृंगारार्थव्यंजने व्याससूनुं स

श्रीरूपः पातु नो भृत्यवर्गान्॥

कलानिधि श्रीकृष्ण के विवाह-व्यापार सम्पर्क में अश्रुतपूर्व पौराणिक गुह्य तत्त्व को लेकर इस नाटक का आरम्भ हुआ है। श्रीललितमाधव नाटक में चित्रित लीला का क्रमविकास अति विलक्षण है। उसे हृदयंगम करने के लिए अंक-क्रमानुसार इसकी विषय सूची को सारगर्भ कथा रूप में संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है-

सारगर्भ-कथा

पहले अंक में-सर्वप्रथम श्रीगोस्वामिपाद ग्रन्थ प्रतिपाद्य अपने इष्टदेव श्रीकृष्णचन्द्र का आशीर्वाद रूप मंगलाचरण करते हैं। मंच पर श्रीरूप ही सूत्रधार रूप में आकर इस नाटक-रचना के कारण को इस प्रकार बताते हैं-ब्रजोपासक वैष्णवों की सेवा-सन्तुष्टि के लिए इस कार्य के लिए मैं उत्सुक हुआ हूँ श्रीगोपीश्वर महादेवजी के स्वप्नादेश से। इतने में मंच पर नटी का वेश धारण कर श्रीराधा की नानी मुखरा उपस्थित होती है और अपनी विपत्ति या हृदय के दुःख को व्यक्त करती है। सूत्रधार के आश्वस्त करने और पूछने पर वह अपने मन की बात कहती

है-विधाता ने मुझे एक नातिनी (दोहती) प्रदान की है जिसका नाम 'तारा' (राधा) है। वह एक अलौकिक कन्या है। उसे मैं श्रीकृष्णचन्द्र को समर्पण करना चाहती हूँ-वही एकमात्र उसके लिए योग्य वर हैं। सूत्रधार अपने को ज्योतिषी बताकर, गणनादि का अभिनय करके कहता है कि तुम निश्चिन्त रहो। श्रीकृष्ण कंस का वध करके पूर्ण मनोरथ समय में तारा (राधा) का पाणिग्रहण करेंगे। इसी समय पर्दे के पीछे से बोलती हुई-“राधा-कृष्ण” के विवाह की बात करने वाला कौन व्यक्ति है जो मुझ चिन्तातुर को आश्वस्त कर रहा है? पौर्णमासी (योगमाया) और उसके साथ गार्गी (गर्गाचार्य मुनि की पुत्री) सामने आती हैं। तब सूत्रधार और मुखरा-नटी मंच से चले जाते हैं।

फिर एक निर्दिष्ट स्थान पर पौर्णमासी, नान्दीमुखी (पौर्णमासी की नातिनी-सान्दीपनि की पुत्री) तथा गार्गी मिलती हैं। पौर्णमासी श्रीश्रीराधा-माधव के विवाह की बात दुहराती हैं। गार्गी पूछती है-हे आर्ये ! तुमने अभिमन्यु के साथ श्रीराधा का विवाह संघटित किया है, तो क्या फिर श्रीकृष्ण के साथ विवाह कराने की इच्छा करती हो? पौर्णमासी बताती है कि अभिमन्यु के साथ श्रीराधा का विवाह माया द्वारा आरोपित किया गया है, वास्तव में उसका विवाह नहीं हुआ। सुनो, विन्ध्य-पर्वत की तपस्या के फलस्वरूप श्रीब्रह्मा ने जो उसे वरदान दिया या फिर उसकी पुत्री श्रीराधा और किस अधम पुरुष के हाथ पड़ सकती है ?

गार्गी विन्ध्य को श्रीब्रह्मा द्वारा प्राप्त वरदान का प्रसंग पूछती है। पौर्णमासी बतलाती है-विन्ध्य पर्वत ने तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न किया और कन्या की प्राप्ति का वर मांगा। ब्रह्मा ने कहा-विन्ध्य ! तुम्हारी इच्छानुरूप दो कन्याएँ होंगी और उनका पति महादेवजी को भी विजय करने वाला तथा अपने गुणों से जगत् को आश्चर्य में डालने वाला होगा। गार्गी चकित होकर पूछती है कि विन्ध्य याचल ने पुत्र का वर न मांग-कर कन्या का वर क्यों मांगा ? पौर्णमासी ने कहा-हिमालय-पर्वत अपनी कन्या पार्वती के पति श्रीमहादेव को पाकर गर्वित हो रहा था। विन्ध्याचल ने उसकी स्पर्धा कर ऐसी कन्या का वर मांगा, जिसका पति महादेव-विजयी हो। गार्गी कहती है-कितना आश्चर्य है ? कि विन्ध्याचल अपने गोत्र जाति हिमाचल के उत्कर्ष को सहन नहीं कर पाया। ठीक है-इस विन्ध्या ने पहले सुमेरु को भी जीतने की इच्छा की थी। परन्तु कुम्भयोनि अगस्त्यमुनि के रोकने पर वह सुमेरु से ऊँचा नहीं उठ सका था।

‘श्रीराधा को विन्ध्याचल से गोकुल कौन लाया’-गार्गी के पूछने पर पौर्णमासी कहती है कि देवकी की कन्यारूपी योगमाया ने जब कंस के हाथ से छूटकर यह कहा कि तेरे मारने वाला पैदा हो चुका है, तब उसने बालघातिनी पूतना राक्षसी को नियुक्त किया था कि वह जाकर बालकों का संहार करे और कुमारियों का अपहरण कर उन्हें कंस के हाथ सौंप दे। क्योंकि उस एकंशा देवी ने यह भी कहा था-ओ कंस ! तुम्हारे मारने वाले के अलावा मुझसे भी अधिक माधुर्यशालिनी राधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामला और भद्रा ये अष्ट महाशक्तियाँ कल परसों तक पृथ्वी पर अवतीर्ण होने जा रही हैं। उनमें श्रीराधा एवं श्रीचन्द्रावली अत्यन्त सुन्दर और प्रसिद्ध होंगी। उनसे जो विवाह करेगा वह राजेन्द्र होगा और महादेव विजयी होगा। अतः कंस श्रीराधा और श्रीचन्द्रावली से विवाह करना चाहता था। राक्षसी पूतना ही उन दोनों बहनों श्रीराधा और श्रीचन्द्रावली को विन्ध्याचल से अपहरण कर ले उड़ी थी। यह देखकर विन्ध्याचल के पुरोहित ने राक्षस-नाशक मन्त्र पाठ किया, जिसके प्रभाव से चन्द्रावली पूतना के हाथ से छूटकर विदर्भ देश की एक नदी में गिर गयी। उसे कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक ने अपने घर में लड़की की भांति पाला-पोसा। पूतना राधा (तारा) को लेकर गोकुल आयी थी। मन्त्र प्रभाव से गोकुल में पूतना के प्राण निकल गए। हे गार्गी ! मैंने राधा को उठाकर वृषभानुजी की सास और यशोदा की धात्री मुखरा को एकान्त में यह कहकर दे दिया कि बालिका तुम्हारे जामाता वृषभानु की पुत्री है।

गार्गी कहती है-हे आर्ये ! मेरे पिता गर्गमुनि तो सर्वज्ञ थे, वे कहते थे कि श्रीराधा दुर्वासा मुनि के वर से वृषभानुजी के औरस से पैदा हुई है। आप उसे विन्ध्य याचल की पुत्री बता रही हैं ? तब पौर्णमासी कहती है-गर्गमुनि की बात ठीक है। वास्तव में चन्द्रावली श्रीचन्द्रभानु की औरस-कन्या है और श्रीराधा वृषभानु की औरस-कन्या। जब ये माताओं के गर्भ में थीं तो श्रीब्रह्मा की प्रार्थना पर श्रीभगवान् की माया ने इन दोनों को वहां से आकर्षण कर विन्ध्याचल की पत्नी के गर्भ में स्थापन कर दिया था। पौर्णमासी ने आगे कहा-यह सब रहस्यमय वृत्तान्त मैं गुरुदेव श्रीनारदजी के आशीर्वाद से जानती हूँ। हे गार्गी ! ललिता, पद्मा, भद्रा, शैव्या और श्यामा को भी मैंने पूतना से छुड़ाकर गोकुल की विभिन्न गोपियों को सौंप दिया। विशाखा पूतना के हाथ से गिरकर यमुना में बहती जा रही थी तो जटिला ने उसे उठा लिया था।

पौर्णमासी आगे बोली-हे गार्गी ! चन्द्रावली जब कुण्डिनपुर में पांच वर्ष की हुई, तो गोवर्धन पर्वत और विन्ध्याचल की गुहाओं में निवास करने वाला भालुराज जाम्बान उसे देवकी कन्या विन्ध्यवासिनी देवी के आदेश से गुप्तरूप से उठा लाया गोकुल में। फिर श्रीराधा और श्रीचन्द्रावली दोनों बहिनें गोकुल में मिलित हुईं। वह श्रीचन्द्रावली ब्रज में कराला की दुहित्री होकर प्रसिद्ध हुई उसका विवाह भारुण्डा के पुत्र गोवर्धनमल्ल के साथ माया द्वारा प्रतीत कराया गया। ऐसे ही विन्ध्यवासिनी देवी के द्वारा श्रीराधा का विवाह अभिमन्यु के साथ सम्पादित हुआ।

पौर्णमासी ने कहा-श्रीचन्द्रावली और श्रीराधा को अपनी पत्नी मानने वाले गोवर्धनमल्ल और अभिमन्यु में मायादेवी के प्रभाव से इनके प्रति दार भाव था, जो केवल ममता मात्र था। उनका कभी भी वे स्पर्श नहीं कर पाते थे। ललिता एवं विशाखादि तो श्रीराधा की सखियां और पद्मा-शैव्यादि श्रीचन्द्रावली की सखियां कहके प्रसिद्ध हुईं। श्रीविशाखा वस्तुतः सूर्यकन्या कालिन्दी ही थी जो धर्मराज यम की बहिन है। लीला के लिए विशाखा रूप में प्रकट हुई थी। यह भी तुम जानते हो कि चन्द्रावली, पद्मा, भद्रा, शैव्या और श्यामा ये पांचों तथा इनके साथ सोलह हजार एक सौ गोप कन्याएं श्रीगर्गमुनि के आदेश से श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायिनी की अर्चना करती थीं इस मन्त्र के साथ-“नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।” हे गार्गी ! श्रीराधा तुम्हारे पिता गर्ग की प्रेरणा से सूर्य पूजा किया करती थी।

यहां तक प्रतिपाद्य विषय की सूचना है। इसके बाद पर्दे के पीछे सखियों का परस्पर वह वार्तालाप वर्णित है जो श्रीकृष्ण के वन से गोचारण के बाद ब्रज में लौटने से सम्बन्धित है। तदनन्तर गार्गी एवं पौर्णमासी श्रीबलराम-कृष्ण की शोभा वर्णन करती हुई यशोदाजी के पास चली जाती हैं।

इसके बाद सखाओं के साथ श्रीकृष्ण रंगमंच पर आते हैं। श्रीबलदेव श्रीकृष्णकी सन्ध्याकालीन शोभा वर्णन कर यमुना पर स्नान के लिए चले जाते हैं। फिर मधुमंगल एवं श्रीकृष्ण का सुन्दर वार्तालाप वर्णित है। श्रीकृष्ण चन्द्रावली आदिक की वेशभूषा का व्यंगपूर्वक स्मरण करते हैं। कुन्दलता के द्वारा प्रेरित होकर श्रीकृष्ण चन्द्रावली के पास जाकर उसके सौन्दर्य का तथा श्रीविशाखा के लक्षणों का वर्णन करते हैं। फिर श्रीकृष्ण माता यशोदा के पास चले जाते हैं।

तदनन्तर रंगमंच पर पौर्णमासी, गार्गी, रोहिणी तथा

यशोदाजी आती हैं। सब मिलकर श्रीराधा और श्रीचन्द्रावली के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती हैं। श्रीराधाजी के नित्य नन्दभवन में जाने और वहां रसोई बनाने के कारण की आलोचना परस्पर करती हैं। इतने में वहां श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं। वे माता-यशोदा का वात्सल्य रस आस्वादन करते हैं। कुन्दलता एवं पौर्णमासी में विविध नर्म-परिहास चलता है। श्रीकृष्ण पिता श्रीनन्दजी को मिलने के लिए चले जाते हैं।

फिर वकुलवन में कुन्दलता के साथ श्रीराधा आगमन करती हैं परस्पर अनुराग पूर्वक श्रीकृष्ण सौन्दर्य का वर्णन प्रसंग है। श्रीराधा श्रीकृष्ण-दर्शन कर उन्मत्त हो उठती हैं। श्रीकृष्ण जब आगे बढ़कर श्रीराधा को आलिंगन करना चाहते हैं तो अचानक वहां जटिला आ जाती है। दोनों संकुचित होकर इधर-उधर हो जाते हैं। जटिला श्रीकृष्ण के प्रति कटाक्ष करती है। श्रीराधा का हाथ पकड़कर ललिता एवं कुन्दलता के साथ जटिला रंगमंच से चली जाती हैं। ११।

दूसरे अंक में-पहले वृन्दा मंच पर आकर प्रभात शोभा का वर्णन करती है। फिर प्रभातकालीन गोष्ठ शोभा का वर्णन पूर्वक पाली, श्यामला तथा विप्रलब्धा अवस्था प्राप्त पद्मा का वर्णन करती है। तदनन्तर पौर्णमासी कुछ चिन्तित होकर मंच पर आती है। वृन्दा उसकी चिन्ता का कारण पूछती है। पौर्णमासी कंस के द्वारा भेजे अरिष्टासुर, केशी के ब्रज में आकर श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा के अनुसन्धान करने का समाचार सुनाती है। श्रीराधा का तो विवाह हो चुका है-यह सुनकर कंस शंखचूड़ को गोकुल भेजता है श्रीराधा का अपहरण कर लाने के लिए।

इतने में कुन्दलता आकर पौर्णमासी को कहती है कि श्रीवृषभानुजी श्रीसूर्य के मित्र हैं और श्रीराधा भी सूर्य की नित्य आराधना करती है। अतः सूर्यदेव श्रीराधा की रक्षा के लिए उपस्थित हुए हैं। पौर्णमासी कहती है-वह सूर्य नहीं, कंस का भेजा हुआ शंखचूड़ है, जो कुबेर के कोष से रत्नश्रेष्ठ स्यमन्तक मणि चुराकर अपने मस्तक में छिपाए हुए है। उसी का तेज है। इधर श्रीराधा सूर्य-पूजा के लिए घर से निकल चुकी होती हैं। अतः पौर्णमासी कुन्दलता को यह कहकर भेजती है कि तुम श्रीकृष्ण को श्रीराधा के पास ले जाओ और मैं श्रीबलराम को वहां भेजती हूँ। ताकि शंखचूड़ श्रीराधा का अपहरण न कर सके। पौर्णमासी वृन्दा के साथ चली जाती है।

तदनन्तर रंगमंच पर श्रीराधा, कुन्दलता, ललिता और जटिला उपस्थित होती हैं। श्रीराधा सूर्य पूजा करती

हैं और पूजा कराते हैं ब्राह्मण-बालक के रूप में आकर श्रीकृष्ण। जटिला श्रीकृष्ण को नहीं पहचान पाती, परन्तु श्रीराधादि सब जान जाती हैं। मधुमंगल साथ आता है। जटिला के साथ श्रीकृष्ण का अति नर्म-वार्तालाप होता है। पूजा कराने के बाद जटिला मधुमंगल को साथ लेकर भोजन कराने और दक्षिणा देने के लिए घर चली जाती है। जटिला को वहाँ से भेजने के लिए भी गुरु गर्ग के आदेश का बहाना बनाया जाता है। तब उसके चले जाने पर श्रीश्रीराधा-कृष्ण का मिलन होता है। तदनन्तर वहाँ मुखरा के आने पर श्रीकृष्ण वहाँ से दूर चले जाते हैं। इतने में रत्नसिंहासन पर बैठी श्रीराधा को शंखचूड़ लेकर भाग जाता है। सखियों के शोर मचाने पर श्रीकृष्ण कुब्जों से निकलकर आते हैं और उसे मारकर उसकी स्यमन्तक मणि को मस्तक में से निकाल लेते हैं। इतने में श्रीबलराम भी वहाँ आ जाते हैं। श्रीकृष्ण वह मणि श्रीबलराम को दे देते हैं। श्रीकृष्ण के द्वारा शंखचूड़ का बंध जानकर मुखरा श्रीकृष्ण का निर्मल्लन पूर्वक आधार प्रकट करती है। उधर मधुमंगल आकर उस मणि को श्रीराधा को प्रदान करता है श्रीबलरामजी के आदेशानुसार। श्रीकृष्ण माता-पिता को शंखचूड़ बंध का संवाद सुनाने घर चले जाते हैं। इसके बाद रंगमंच से सब चले जाते हैं। ॥२॥

तीसरे अंक में-पौर्णमासी और वृन्दा मंच पर उपस्थित होती हैं। इतने में वृन्दा गोकुल में हो रहे अति कोलाहल को सुनकर उसका कारण पौर्णमासी से पृच्छती है। तब वह श्रीश्रीकृष्ण-बलराम को मथुरा ले जाने के लिए अक्रूर के आने का समाचार सुनाती है। यह वृत्तान्त सुनकर वृन्दा व्याकुल हो उठती है। तब ग्रन्थकार ने श्रीकृष्ण के भावी-विरह व्याकुलित ब्रजवासियों की जो अवस्था का वर्णन किया है, उसका वर्णन यहाँ लेखनी की सामर्थ्य से बाहर है। श्रीराधाजी की दिव्योन्माद अवस्था देखने का जिसमें साहस हो, वह इस तृतीय अंक को पढ़े। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर श्रीराधा एवं श्रीविशाखा यमुना-खेला तीर्थ कालियदह में उतरकर निमग्न हो जाती हैं। विशाखा श्रीराधा को साथ लेकर अपने पिता के घर-सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है। ललिता इस दुरूह दृश्य को देखकर गोवर्धन के शिखर से क्रुद पड़ती है। वृन्दा जब यमुना में क्रुदने लगती है तो आकाशवाणी होती है-वृन्दे ! ऐसा मत करो-श्रीकृष्ण पुनः ब्रज में आवेंगे-महान् उत्सव होगा। इधर चन्द्रावली कराला के घर में तड़पती रह जाती है। ॥३॥

चौथे अंक में-(यहाँ से मथुरा-लीला का वर्णन आरम्भ

होता है)-रंगमंच पर उद्धवजी का गार्गी के साथ कथनोपकथन होता है। गार्गी कहती है कि मैं रोजिणी के साथ श्रीश्रीराम-कृष्ण के उपनयन उत्सव में निमन्त्रित होकर यहाँ आयी हूँ। श्रीउद्धवजी उसे मल्लों सहित कंस-वध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं। गार्गी पौर्णमासी के सौभाग्य की प्रशंसा करती है कि उसने श्रीकृष्ण का संग त्याग न किया। यहाँ आकर उसने सब लीलाएँ देखीं। उसके प्रसंग से सांदीपनिजी जगद्गुरु श्रीकृष्ण के भी गुरु बने। विद्याध्ययन की दक्षिणा में यमपुरी से लाकर गुरुपुत्र मधुमंगल को भेंट किया। उसे श्रीकृष्ण ने विदूषक-सखा के रूप में ब्रज में ग्रहण किया।

बातों-बातों में श्रीउद्धवजी गार्गी को बताते हैं कि मैं चन्द्रावली को ब्रज से लेने गया था, परन्तु शिशुगाल के मुख से सुनकर उसका भाई रुक्मि मेरे जाने से पहले उसे कुण्डनपुर ले जा चुका था। चन्द्रावली का जो पतिमन्य गोवर्धनमल्ल था, वह तो शलमल्ल था जिसे श्रीकृष्ण ने कंस की सभा में मार दिया था। पद्मा जिसे नग्नजिती कहते हैं नग्नजित् राजा की कन्या थी, श्यामला मद्राजा की कन्या माद्री थी, भद्रा केकय राजा की कन्या लक्ष्मणा थी। शैव्या शैव्यराज की कन्या थी, जिसे मित्रविन्दा कहते थे। इनके पिताओं ने जब श्रीनारदजी के मुख से सुना कि उनकी कन्याएँ पृतना से छूटकर गोकुल में रह रही हैं, तो वे चारों राजा गोकुल आये और उनके पतिमन्य लोगों को जैसे-तैसे प्रसन्न कर अपनी-अपनी कन्याओं को अपने-अपने घर ले गये। कात्यायिनी व्रत-परायणा जो सोलह हजार एक सौ कन्याएँ थीं, वे कृष्णविरह में सन्तप्त होकर कामाक्षा देवी की अर्चना कर रही थीं। वहाँ नरकासुर आकर वरवश उन सबका अपहरण करके ले गया।

श्रीउद्धवजी कहते हैं-गार्गी ! श्रीकृष्ण इन सब बातों को जानते हुए भी कुछ अनुसन्धान नहीं कर पाये, क्योंकि वे तो श्रीराधा की दारुण-दशा देख-सुनकर उसी दिन से अत्यन्त दुखी हैं। गार्गी ! भगवती पौर्णमासी ने उनके उस दुःख को दूर करने का अब एक उपाय किया है। उसने संगीत विद्या के विधाता भरतमुनि से प्रार्थना कर उनसे एक अपूर्व नाटक तैयार कराया है। श्रीनारदजी ने उस नाटक को अपने शिष्य तुम्बुरु को दिया है। तुम्बुरु द्वारा शिक्षित गन्धर्वगण उस नाटक को दिखाकर श्रीकृष्ण को प्रसन्न करते हैं। उस अभिनय को देखने के लिए श्रीकृष्ण मधुमंगल के साथ पद्मरागमणि-रचित अष्टालिका पर विराजते हैं। इस प्रकार सब वृत्तान्त सुनाकर श्रीउद्धव एवं गार्गी मंच से चले जाते हैं।

अब यहां से गन्धर्वों द्वारा गोकुल-लीला का अभिनय प्रारम्भ होता है-सर्वप्रथम गन्धर्वों के साथ उद्धवजी, पौर्णमासी तथा मुखरा मंच पर आते हैं। उद्धवजी कहते हैं-हम नर्तक समाज को लेकर आये हैं, आप आज्ञा करें तो अभिनय आरम्भ किया जाये ? (गन्धर्व रूप श्रीकृष्ण) श्रीमाधव कहते हैं-“शीघ्र आरम्भ करो।” पहले सूत्रधार आकर नान्दीपाठ (मंगलाचरण) करता है। सूत्रधार नटी के साथ प्रबन्ध के सम्बन्ध में परिचय प्रदान करता है कि रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण के प्रिय गोकुलवासियों का सुलभ राधाभिसार नामक यह गुणशाली सन्दर्भ है। सूत्रधार तथा नटी के चले जाने पर गर्भांक के नायक श्रीमाधव प्रवेश करते हैं।

बसन्त ऋतु की शोभा देखकर श्रीमाधव राधा-विरह में व्याकुल हो उठते हैं। श्रीमाधव के वेणु बजाने पर ललिता एवं श्रीराधा मंच पर आती हैं। उनकी चरण-नूपुर ध्वनि सुनकर आनन्द पूर्वक श्रीमाधव श्रीराधा को माधवी-मण्डप में ले जाते हैं। उस समय अभिनय द्रष्टा श्रीकृष्ण उत्कण्ठित होकर श्रीराधा को आलिंगन करने के लिए उठ खड़े होते हैं, किन्तु उद्धवजी उन्हें यह कहकर रोकते हैं कि यह तो अभिनय हो रहा है। द्रष्टाओं में बैठी मुखरा भी-“अरी नातिनी राधे ! तुम जीवित हो ?”-ऐसा कहकर श्रीराधा के पास भागना चाहती है, परन्तु पौर्णमासी उसे पकड़कर बैठाती है-“यह नाटक हो रहा है, मुखरा।” श्रीराधा मुखरा एवं जटिला से भयभीत होकर ललिता के कहने पर कदम्ब वृक्षों से ढके मार्ग से यमुना की ओर जाती हैं। श्रीराधा का अनुसन्धान करते हुए जटिला आ जाती है। श्रीराधा-ललिता परस्पर एक स्वप्न की बात कर रही होती हैं कि वृन्दा श्रीमाधव को लेकर वहां आती है। श्रीमाधव श्रीराधा अभी एक दूसरे की किशोर अंग शोभा देख रहे होते हैं कि जटिला वहां आ जाती है एवं ललिता को फटकारने लगती है। तब वह सूर्य पूजा के लिए पुष्प चुनने का बहाना बनाकर जटिला को आश्वस्त करती है। परन्तु श्रीमाधव को देखकर अनेक अपवचन कहती है। उधर श्रीकृष्ण उद्धवजी से कहते हैं-सखे ! गोकुल की वृद्धाओं की यह कठोर वाणियां-‘अरे चोर ! अरे रति-लम्पट !’-मुझे ऋषियों के स्तुति-वाक्यों से भी अधिक आनन्दित करती हैं। जटिला वृन्दा को भी फटकार कर ललिता एवं श्रीराधा को अपने साथ लेकर चली जाती है। वृन्दा श्रीमाधव को प्रबोधन देकर चली जाती है।

श्रीमाधव दुःखित होकर रंगमंच पर भ्रमण कर रहे होते हैं तो वहां अभिमन्यु आ जाता है, किन्तु श्रीमाधव

अन्तर्धान हो जाते हैं। अभिमन्यु गौओं को खरीदने के लिए सोना लेने घर जाता है। इधर जटिला शुक-सारिका के संवाद में सुनती है कि श्रीमाधव अभिमन्यु का वेश धारण कर जटिला के घर जा रहा है। अभिमन्यु के घर जाने पर उसे श्रीमाधव जानकर जटिला खूब तो गालियां देती है, मारने दौड़ती है। ‘मेरी मां पागल हो गयी है’-ऐसा कहकर अभिमन्यु जाना चाहता है, परन्तु जटिला उसे पकड़कर भारुण्डा के पास ले जाती है। यह देखकर भारुण्डा हँसने लगती है। जटिला लज्जित हो छाती कूटने लगती है और भाग जाती है। फिर अभिमन्यु ललिता को भेजकर मां जटिला को घर बुलाता है। पिटारी में से सोना लेकर वह चला जाता है गोएँ खरीदने। इधर श्रीमाधव अभिमन्यु का वेश धारण कर ललिता के साथ श्रीराधा के पास जाते हैं- इतने में जटिला लौट आती है। श्रीराधा के साथ अभिमन्यु को देखकर वह अति प्रसन्न होती है। श्रीराधा श्रीमाधव रूप अभिमन्यु के साथ वन में जाने को तैयार नहीं होती, परन्तु जटिला शपथ देकर उसे अभिमन्यु वेशधारी श्रीमाधव के साथ भेजती है। श्रीमाधव, श्रीराधा एवं ललिता तीनों कुञ्ज में जाते हैं। इधर अट्टालिका पर द्रष्टा श्रीकृष्ण अपूर्व आनन्द लाभ करते हुए चन्द्रशालिका में चले जाते हैं। ॥४॥

पांचवें अंक में-पौर्णमासी मंच पर आती है। रुक्मिणी के विवाह उपलक्ष्य में भीष्मक तथा श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले एकत्रित राजाओं से परिवेष्टित विदर्भ नगरी की शोभा का वह वर्णन करती है। इतने में श्रीनारदजी मंच पर उपस्थित होते हैं। वे पौर्णमासी को कालयवन तथा श्रीमुचुकुन्द-चरित्र और जरासन्ध के बार-बार आक्रमण से बचने के लिए श्रीकृष्ण का द्वारका गमन प्रसंग सुनाते हैं। पौर्णमासी श्रीनारद को बताती हैं कि ब्रज की चन्द्रावली ही रुक्मिणी है और श्रीराधा ही सत्यभामा है। यह रहस्य जानकर श्रीनारद कहते हैं-अहो ! ये सब द्वारका की महिषियां और ब्रजरमणियां समान तत्त्व हैं, केवल देहमात्र से पृथक् हैं। बीच में योगमाया के द्वारा इनका अभिन्न रूप कल्पित हुआ है। ब्रज में तो वे सब रमणियां श्रीकृष्ण प्रेम में मूर्छित होकर अब भी विद्यमान हैं। योगमाया ने उस दारुण वियोग में श्रीकृष्ण का संग प्राप्त कराने के लिए उनमें ब्रजभाव आच्छादन कर दिया है और पुररमणियों का अभेद-अभिमान दीर्घस्वप्न की भांति वृद्ध कर दिया है। तब श्रीनारद और पौर्णमासी के संवाद में जिस प्रकार रुक्मिणी-विवाह का उपक्रम एवं समापन हुआ, वह विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। तदनन्तर नरवेशधारी श्रीकृष्ण अर्थात् श्रीमाधव और गरुड़ मंच पर आकर

चन्द्रावली को देखते हैं। श्रीमाधव एवं चन्द्रावली एक दूसरे को देखकर अति उल्लसित होते हैं। इतने में चन्द्रावली व्याकुल होकर बहिन राधे ! तुम कहां हो ? सखि पद्मे ! हे गोकुलेश्वरि ! तुम कहां हो ?-ऐसा पुकारने लगती है। श्रीमाधव उसको आश्वस्त करते हुए अब आलिंगन करना चाहते हैं तब चन्द्रावली (रुक्मिणी) की सखी माधवी श्रीमाधव को फटकार देती है-हमारी राजकुमारी श्रीरुक्मिणी का आलिंगन करने का साहस कैसे कर रहे हो आप ? चन्द्रावली आनन्द-मूर्छा में पृथ्वी पर गिर जाती है।

इधर भीष्मक राजा के साथ पौर्णमासी मंच पर उपस्थित होते हैं। पौर्णमासी चन्द्रावली (रुक्मिणी) को चेतन कराती है। श्रीभीष्मक राजा इस शर्त पर रुक्मिणी (चन्द्रावली) को श्रीकृष्ण के हाथ में समर्पित करते हैं कि मेरी कन्या से पूछे बिना आप और किसी कन्या का पाणिग्रहण न करोगे। श्रीकृष्ण को पौर्णमासी इशारा देती है। वह उस शर्त को स्वीकार करते हैं। तब श्रीकृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका चल देते हैं। यादव सेना के साथ श्रीबलदेवजी का आना तथा रुक्मि को बांधकर उसके मुण्डनादि का प्रसंग इस अंक में वर्णित है। ॥५॥

छठे अंक में-पहले रंगमंच पर श्रीउद्धव आते हैं। आकाशवाणी सुनकर उद्धवजी सुधर्मासभा में श्रीनारदजी से मिलने चल देते हैं। श्रीनारदजी मंच पर आकर ब्रजगोपियों की भाव-गरिमा का वर्णन करते हैं। उद्धवजी आकर नारद जी का अभिवादन करते हैं। श्रीनारदजी के उद्धवजी से अप्रसन्नता का कारण पूछने पर वे कहते हैं-हे देवर्षि ! मुझसे श्रीकृष्ण के प्रति अपराध बन गया है। इस प्रसंग में उद्धवजी सत्राजित और स्यमन्तिक मणि का वृत्तान्त बताते हैं। अपुत्रक सत्राजित ने वैभव एवं सुन्दर सन्तान की कामना से सूर्य की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया है। सूर्यदेव ने सत्राजित को स्यमन्तिक मणि और श्रीराधाजी को जो सूर्यदेव के पास थीं, उसका 'सत्या' नाम बताकर दे दिया है। सूर्यदेव ने सत्राजित से कहा है कि इस सत्या को श्रीनारद के आदेश से किसी यशवान श्रेष्ठ वर को समर्पण करना। इस मणि का नित्य पूजन करने पर यह प्रतिदिन आठ भार (बीस मन) सोना तुम्हें देती रहेगी।

उद्धवजी के पूछने पर श्रीनारदजी ने कहा-श्रीकृष्ण के मथुरा चले आने पर श्रीराधा प्राण त्याग के लिए जब यमुना पर गयी तो उसने स्यमन्तिक मणि (जो शंखचूड़ के मस्तक से निकली थी) की सूर्यदेव को पुष्पांजली देकर यमुना में छलांग लगा दी थी। तब सूर्यदेव की आज्ञा से

कालिन्दी ने जो विशाखा रूप में प्रसिद्ध थीं, मणि सहित श्रीराधा को सूर्यमण्डल में ले गयी थी श्रीविशाखा तथा श्रीराधा सूर्यमण्डल में थीं।

श्रीनारदजी ने आगे कहा-सूर्य पत्नी संज्ञा विशाखा सखी श्रीराधा पर अति स्नेह रखती थीं। श्रीराधा के हृदय में निरन्तर वृन्दावन की चिन्ता-दुःख को देखकर संज्ञा ने अपने पिता विश्वकर्मा से कहकर द्वारका में नववृन्दावन की अद्भुत रचना कर दी है ताकि सत्या (श्रीराधा) द्वारका में उसे देखकर अपना दुःख हलका कर सके। शनिदेव की जननी छायादेवी सवर्णा ने श्रीराधा को वहां यह भी बताया था कि राधे ! तुम्हारे प्राणवल्लभ यहां सूर्यमण्डल में विद्यमान हैं। तुम उनकी आराधना यहां भी तो कर सकती हो, किन्तु विशाखा ने कहा हे सवर्णे ! ब्रजगोपियों के प्रेम का रहस्य अति दुर्गम है। यदि श्रीकृष्ण भी दूसरे रूप में उनके सामने आये तो उस रूप की आराधना तो क्या गोपीजन उसे आंख उठाकर देखती भी नहीं हैं। सूर्यलोक से विदा करते समय सूर्यदेव ने श्रीराधा को आग्रह पूर्वक कहा था कि जब तक श्रीकृष्ण स्वयं स्यमन्तिक मणि को तुम्हारे मणिबन्ध में नहीं बांधें तब तक तुम अपना राधा नाम गुप्त रखना।

नव वृन्दावन के निर्माण के बाद विरह पीड़िता श्रीराधा की सेवा के लिए विश्वकर्मा की शिष्या नव-वृन्दा को नियुक्त कर दिया जाता है। सूर्यपत्नि ने नववृन्दा को बताया कि श्रीकृष्ण की जितनी ब्रजगोपियां वृन्दावन में बिहार करती थीं, वे सब द्वारका में उपस्थित हैं। उनमें यह श्रीराधा सर्वप्रधाना हैं। तुम द्वारका में जाकर उसकी मंगलदायिनी सेवा करो।

श्रीनारदजी ने कहा-उद्धवजी ! कात्यायिनी की आराधना करने वाली ब्रजगोपियों की विरह-दशा देखकर कामाक्षादेवी ने नरकासुर के द्वारा उनका अपहरण कराया गया है। वे सब सोलह हजार एक सौ आठ कन्याएँ मणि पर्वत की कन्दराओं में कृष्ण-प्राप्ति की आशा में प्राण रख रही हैं। इस प्रकार कहकर श्रीनारद सुधर्मा सभा में चले जाते हैं।

तदनन्तर रंगमंच पर सत्राजित की माता के साथ श्रीराधा प्रवेश करती हैं एवं अपने दुर्भाग्यों का वर्णन करती हैं। तब वह श्रीराधा को श्रीरुक्मिणी (चन्द्रावली) को समर्पण करने के लिए अन्तःपुर में जाती हैं। रुक्मिणी अपनी सखी माधवी से द्वारकानाथ का समाचार पूछती हैं कि वे स्यमन्तिक मणि की खोज में गये थे, अभी तक नहीं आये ? माधवी कहती है कि और किसी कार्यवश उन्हें विलम्ब हुआ दीखता है। रुक्मिणी (चन्द्रावली) सत्यभामा (श्रीराधा) के माधुर्य को देखकर तथा सत्यभामा

(श्रीराधा) रुक्मिणी (चन्द्रावली) के सौन्दर्य माधुर्य को देखकर ब्रजकिशोरी-भाव सौरभका अनुभव करती हैं। सत्राजित की माता ने कहा-मेरे पुत्र सत्राजित ने श्रीद्वारकानाथ के प्रति जो कलंक लगाया था-उस अपराध को मार्जन करने के लिए अपनी पुत्री सत्यभामा को उनके प्रति उपहार रूप में प्रदान किया है। आप इसे अपनी सखी रूप में स्वीकार करें-ऐसा कहकर वह सत्यभामा (श्रीराधा) को रुक्मिणी (चन्द्रावली) को सौंप देती है। रुक्मिणी अपनी सखी माधवी के कान में कहती है-माधवि ! इसका सौन्दर्य-माधुर्य अति अद्भुत है। द्वारकानाथ इसे देखकर अपने पन की रक्षा न कर पायेंगे, क्योंकि इसे देखकर मेरा ही मन आन्दोलित हो रहा है। यह अपने अंगों में श्रीकृष्ण-वियोगिनी रमणियों का साधर्म्य विस्तार कर रही है। क्षीणांगी होने से वह माधुर्य प्रकाशित नहीं हो पा रहा है। इसकी परीक्षा करें।

रुक्मिणी सत्यभामा के प्रति अपना स्नेह प्रकाशित करती है और कहती है तुम उदास मत होओ, मैं तुमको आर्यपुत्र द्वारकानाथ के हाथ में समर्पण करूँगी। सत्यभामा चौंककर प्रणाम पूर्वक कहती है- हे देवि ! जहां पुरुष नाम की गन्ध भी न पहुँचे, मुझे उस स्थान पर रखिये। तब रुक्मिणी माधवी को-‘इसे तुम नववृन्दावन में जाकर स्थान दो’-ऐसा कहकर चली जाती है। माधवी नववृन्दा के साथ श्रीराधा को लेकर नव वृन्दावन चली जाती है। नववृन्दा तो पहले जानती है कि रुक्मिणी चन्द्रावली है और सत्यभामा श्रीराधा है। रुक्मिणी (चन्द्रावली) श्रीसत्यभामा (श्रीराधा) को नववृन्दा के समर्पण करती है। वह श्रीराधा को वासन्त चतुर्शाला में जाने का परामर्श देती है और बकुला सखी को उसकी सेवा में नियुक्त करती है।

इधर माधवी रुक्मिणी को समझाती है कि इससे हमें कोई भय नहीं है क्योंकि यदुनन्दन श्रीरुक्मिणी को समझाती है कि इससे हमें कोई भय नहीं है क्योंकि यदुनन्दन श्रीद्वारकानाथ आपकी अनुमति के बिना तो किसी दूसरी कन्या का स्पर्श नहीं कर सकते, उन्होंने शपथ ली हुई है। इतने में पट के पीछे से आवाज आती है ‘श्रीमाधव पधार रहे हैं।’ माधवी रुक्मिणी के साथ वेशगृह में चली जाती है। अनन्तर श्रीकृष्ण मधुमंगल के साथ रंगमंच पर उपस्थित होते हैं। श्रीकृष्ण के हाथ में स्यमन्तक मणि को देखकर मधुमंगल उनसे पूछता है कि सूर्य को यह मणि कहां से मिली ? श्रीकृष्ण पूरा वृत्तान्त मधुमंगल को बताते हैं-

श्रीकृष्ण बोले, जब जाम्बवान से युद्ध हो चुका और

मुझे वह रामरूप में जान गया। मुझे एक रत्नखचित पलंग पर बैठाकर वह भीतर स्यमन्तक मणि लाने गया। मधुमंगल ! भीतर से एक वृद्धा एक कन्या को मणि सहित लेकर मेरे पास आकर कहने लगी-हे वत्स ! यह कन्या मणि के बिना जीवित न रह पायेगी। अतः आप मणि के साथ जाम्बवती को भी अंगीकार करो। उसने कहा इसने एक अति मनोहर श्रीश्रीराधा-माधव युगलमूर्ति स्थापन कर रखी है। यह उन युगल को परस्पर मिलन कराकर प्रणय आलाप कर रोती रहती है। हे वत्स ! पुरुष-प्रतिमा की अनुहार तो तुम जैसी है, न जाने वह नारी-प्रतिमा किस सुन्दरी की है। जाम्बवान बोला-हे देव ! सूर्यदेव की मुझ पर अतीव कृपा है। यह सुन्दरी जो वास्तव में ललिता है, आपके विरह में पर्वत गोवर्धन के शिखर से कूदकर प्राण विसर्जन करना चाहती थी। सूर्यदेव के आदेश से इसे गोद में लेकर मैं यहां ले आया था। परन्तु राजा भीष्मक के साथ आपकी प्रतिज्ञा के कारण इसे रैवत पर्वत की कन्दरा में मैंने रखा हुआ है। इस प्रकार मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण रहस्य-वार्तालाप करते हैं। और श्रीराधा के विरह में अति अधीर हो जाते हैं। ‘हे मधुमंगल ! स्यमन्तक मणि को तुम ले जाकर सत्राजित को दे देना’-ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अन्तःपुर में चले जाते हैं ॥६॥

सातवें अंक में-श्रीकृष्ण-विरहिणी सत्यभामा (श्रीराधा) नववृन्दावन में प्रवेश कर श्रीकृष्ण-स्मृति में अचेतन सी होने लगती हैं। बकुला समझाती है-हे देवि ! द्वारकानाथ ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही हैं तुम विश्वास करो। नववृन्दा भी यही बार-बार समझाती है, परन्तु श्रीराधा कहती है-‘हे सखियो ! मेरा चित्त उस मोरपुच्छ मुकुटधारी गुञ्जामाली, वंशीवदन के बिना अन्य किसी भी रूप को अंगीकार नहीं कर सकता। तुम उन्हें भले ही कठोर कहो, परन्तु मैं कोटिजन्म तक भी उनका प्रणयदास्य त्याग नहीं कर सकती।’ तब बकुला विश्वकर्मा की सहायता से एक इन्द्रनीलमणिमय गोविन्द मूर्ति तैयार कराके श्रीराधा को पूजा करने के लिए प्रस्तुत करती है। श्रीराधा उसका दर्शन करते ही विभ्रान्त हो मिलन के लिए उत्कण्ठित हो उठती है। नववृन्दा और बकुला श्रीराधा को स्नान कराने ले जाती हैं। इधर श्रीकृष्ण आकर मधुमंगल द्वारा उस प्रतिमा को हटाकर स्वयं वहां विराजमान हो जाते हैं। स्नान करने के बाद आकर श्रीराधा उन्हें देखकर और श्रीकृष्ण भी श्रीराधा को देखकर विस्मित और स्तम्भित हो जाते हैं। ठीक उसी समय रुक्मिणी (चन्द्रावली) वहां आ जाती है। श्रीराधा

निराशता में डूब जाती है। श्रीकृष्ण मधुमंगल के साथ वहां से खिसक जाते हैं अद्भुत वर्णन है श्रीकृष्ण की वृन्दावन-दर्शनोत्कण्ठा का। मधुमंगल के द्वारा वृन्दावन की शोभा का वर्णन किया गया है। ॥७॥

आठवें अंक में-पहले रुक्मिणी की श्रीद्वारकानाथ श्रीकृष्ण के साथ कहा-सुनी होती है नववृन्दावन में सत्यभामा (श्रीराधा) के मिलन-प्रसंग को लेकर। श्रीकृष्ण अन्तःपुर में रुक्मिणी (चन्द्रावली) को सन्तुष्ट कर उसे मनोवांछित वर मांगने को कहते हैं। रुक्मिणी का हृदयभाव जानकर माधवी एक सुरसौगन्धिक कमल उठा लाती है प्रांगण से, जो शुभ्र हंस की चोंच से गिरा था। रुक्मिणी ने वैसे ही कमल ले आने को श्रीकृष्ण से कहा। “खाण्डव वन में जाकर हम ऐसे कमलों को ले आते हैं”-ऐसा मधुमंगल के द्वारा माधवी और रुक्मिणी को श्रीकृष्ण ने कहला भेजा-

श्रीकृष्ण नववृन्दावन में सत्यभामा (श्रीराधा) के पास पहुँचते हैं। श्रीराधा अपनी सखि विशाखा के लिए व्याकुल होकर उसके बारे में श्रीकृष्ण से पूछती है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि अर्जुन के साथ खाण्डव वन में मैं सुरसौगन्धिक कमल लाने गया था। वहां मुझे एक वृद्धा ने एक तपस्विनी का परिचय दिया। मैं उसके पास गया, तो वह संभ्रमयुक्त होकर बोल उठी-“हा गोकुलेन्द्र नगरी के युवराज ! हा गोपीकुलहृदय-कमल भ्रमर ! हा राधिकाकुचकुरंग में कस्तूरिकामय अंगराग ! सचमुच आप वही हैं ? विस्मय पूर्वक पूछने पर वह बोली-हे नाथ ! मैं आपकी हतभागिनी विशाखा हूँ। उसने तुम्हारी मंगल-वार्ता भी पूछी। “अब क्या वहीं बैठी छोड़ आये हैं उसे ?”-श्रीराधाजी के पूछने पर श्रीकृष्ण कहते हैं-“नहीं नहीं, राधे ! उसे मैं द्वारका में ले आया हूँ-इत्यादि ऐसा अद्भुत प्रसंग वर्णित है।

श्रीकृष्ण सुरसौगन्धिक कमल मधुमंगल द्वारा माधवी को भिजवा देते हैं श्रीरुक्मिणी को देने के लिए। श्रीरुक्मिणी ने अपने हाथों से गुँथी सुरसौगन्धिक माला श्रीद्वारकानाथ के अन्तःपुर में आने पर उन्हें पहनाई यह कहकर कि यह कौस्तुभ की सहवासिनी हो। श्रीकृष्ण कहते हैं-प्रिये ! मेरा हृदय तो तुम्हारा मन्दिर है। रुक्मिणी (चन्द्रावली) लज्जा से झुक जाती है। इस प्रकार उसे प्रसन्न कर श्रीकृष्ण उससे एक तपस्विनी को सत्यलोक में (सत्यभामा जहां वास कर रही है अर्थात् नववृन्दावन में) जाने की अनुमति चाहते हैं और बेखटक नववृन्दावन चले जाते हैं।

इधर विश्वकर्मा दो प्रसाधन-पेटिकाएँ नववृन्दा को

भिजवाते हैं यह कहकर कि एक रुक्मिणी देवी के लिए है और दूसरी सत्यभामा के लिए। सत्यभामा सूर्यदेव के सम्बन्ध से विश्वकर्मा की नातिनी होती हैं। दोनों वस्त्र-भूषणों की पेटिकाओं को नववृन्दा रुक्मिणी के पास लाती है, जिन्हें माधवी ले लेती है। नववृन्दा ने कहा-यह दूसरी सत्यभामा के लिए है, इसे मुझे दे दो, मैं उसे दे दूँगी। किन्तु माधवी ने कहा-नहीं मैं ही उसे दे दूँगी। माधवी मन में सोचती है कि विश्वकर्मा ने अपनी नातिनी सत्यभामा के लिए अवश्य अच्छे सुन्दरतर शृंगार-प्रसाधन बनाये होंगे। अतः माधवी सत्यभामा वाली पेटिका रुक्मिणी को और रुक्मिणी वाली पेटिका सत्यभामा को भिजवा देती है-बदल देती है-बड़ी चतुर है।

तदनन्तर श्रीकृष्ण और नववृन्दा नववृन्दावन की शोभा वर्णन करते हुए श्रीराधा को विभूषित करने के लिए माधवी-मालती पुष्पों का चयन करने लगते हैं। सामने एक मणिमय दीवार में श्रीकृष्ण अपनी सौन्दर्यमयी मूर्ति का दर्शन करते हैं और विस्मित होकर कह उठते हैं-अहो ! ऐसा अदृष्टपूर्व चमत्कारी, मेरा महान् माधुर्यसार रूप ! इसे देखकर तो मैं लुब्धचित्त होकर इसे श्रीराधा की भांति उपभोग करना चाहता हूँ। ठीक इसी समय रुक्मिणी (चन्द्रावली) उपस्थित होती है। असूया प्रकट करती है। रुक्मिणी को माधवी ने सत्यभामा वाली पेटिका के शृंगार-प्रसाधन से विभूषित कर दिया था, जिससे वह ठीक श्रीराधा की सी लग रही थी। श्रीसत्यभामा को सुकण्ठी के हाथ दूसरी पेटिका भिजवा दी गयी थी। राधावेशधारिणी चन्द्रावली को श्रीराधा ही मानकर श्रीकृष्ण कोई भारी भूल न कर बैठें, नववृन्दा उन्हें एक पत्र पर श्लोक लिखकर सावधान कर देती है। उस समय श्रीकृष्ण भी चतुराई का प्रयोग करते हैं-“यह तो रुक्मिणी देवी नहीं यह तो कोई अन्य कुमारी है”-ऐसा कहकर दूर चले जाते हैं। सुरसौगन्धिक माला जो श्रीकृष्ण के कण्ठ में रुक्मिणी ने धारण करायी थी, वह सत्यभामा के गले में देखती है राधावेश धारिणी रुक्मिणी। तब श्रीकृष्ण अपना दोष ढकने के लिए कहते हैं-मैंने तो यमुना में प्रवाहित कर दी थी-यह इस सत्यभामा-विश्वकर्मा की नातिनी के हाथ कैसे पड़ गयी ?-मैं इस अपूर्व वृत्तान्त को स्वयं अन्तःपुर में जाकर देवी रुक्मिणी को सुनाता हूँ-ऐसा कहकर वे चले जाते हैं। ॥८॥

नौवें अंक में-पहले शरत् ऋतु एवं नववृन्दा के कथोपकथन द्वारा सोलह हजार एक सौ कुमारियों को श्रीकृष्ण के द्वारा नरकासुर का वध करके द्वारका में लाने का प्रसंग वर्णन है। उनके आने से पहले पद्मा, शैव्या,

भद्रा एवं श्यामला आदि को जिस प्रकार श्रीकृष्ण विवाह कर द्वारका में ले आते हैं-उस प्रसंग का वर्णन है।

तदनन्तर श्रीकृष्ण, श्रीराधा (जिसने रुक्मिणी की वेषभूषा धारण कर रखी थी) तथा मधुमंगल को नववृन्दा तथा सुकंठी अपने गुरु श्रीविश्वकर्मा द्वारा रचित श्रीकृष्ण की बाल्य-लीला से लेकर मधुरा-लीला पर्यन्त रचित चित्रावली को एक कन्दरा विशेष में दिखाती हैं, जिससे श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा ब्रजलीलानुभव कर उत्कण्ठित हो उठते हैं। लीला-स्मारक चित्रों का आनुक्रमिक वर्णन किया गया है। चित्रशाला को देखकर श्रीकृष्ण श्रीराधा सहित यमुनातट पर चले जाते हैं। इतने में माधवी के साथ रुक्मिणी प्रवेश करती है। श्रीकृष्ण-सत्यभामा को देखकर राधिका वेश धारिणी रुक्मिणी आमवृक्ष के पीछे छिप जाती है। फिर सामने आ जाती है श्रीकृष्ण के। और जान जाती है सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण मिलने को। श्रीसत्यभामा (रुक्मिणी वेशधारिणी) आमवृक्ष के मूल में छिप जाती हैं। श्रीकृष्ण कपटपूर्वक उसके पास जाते हैं उसे रुक्मिणी मूर्ति कहकर। नववृन्दा कहती है रुक्मिणी तो माधवी के साथ खड़ी हैं-यह मायामयी मूर्ति नहीं है सत्यभामा है। सत्यभामा नववृन्दा को लेकर वहां से चली जाती हैं। श्रीरुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण का परस्पर कथनोपकथन होता है। श्रीकृष्ण श्रीरुक्मिणी को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं, श्रीरुक्मिणी यह कहकर कि आपके संकोच को देखकर मुझे अति दुःख हो रहा है। आप निःसंकोच क्रीड़ा करो, मैं अन्तःपुर में जा रही हूँ। तब उसके चले जाने पर श्रीकृष्ण-श्रीराधादि भी सब प्रस्थान करते हैं। ॥६॥

दसवें अंक में-तुलसी और मालती प्रवेश करती हैं। तुलसी बताती है कि भगवती पौर्णमासी सकुटुम्ब श्रीनन्द महाराज को साथ लेकर द्वारका में आ गयी हैं। मालती कहती है मैं अभी यह आनन्दमय समाचार श्रीराधा (सत्यभामा) को जाकर सुनाती हूँ। तुलसी बताती है कि श्रीराधा श्रीरुक्मिणी के अन्तःपुर में अवरुद्ध होकर विराजमान है। श्रीकृष्ण भी आज राधा संग प्राप्त करने के लिए युक्ति सोचकर राजमहल में विराजमान हैं।

तदनन्तर श्रीकृष्ण अपने सखा मधुमंगल के साथ जिसके हाथ पर शुकपक्षी है-प्रवेश करते हैं मंच पर। इतने में नववृन्दा शुकपक्षी को लेने के बहाने वहां आती है। श्रीकृष्ण कहते हैं-नववृन्दे ! परिमलोज्ज्वल मनोहरांगी उस सत्यानाम्नी श्रीराधा के देखने के लिए मेरा मन व्याकुल हो रहा है। नववृन्दा बताती है-रुक्मिणी ने उसे शंकित होकर अपनी छाया की भाँति अपने पास अवरुद्ध

कर रखा है-उसका देखना-मिलना आपके लिए अब सम्भव नहीं है। इतने में सत्यभामा की सखी पिंगला स्यमन्तक मणि हाथ में ले आकर उपस्थित होती है। श्रीकृष्ण से कहती है-सत्राजित ने इस मणि को सत्यभामा को देने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। मणि को वह श्रीकृष्ण के हाथ में दे देती है।

सन्ध्या के समय श्रीकृष्ण सुन्दर रमणी का वेश धारण कर पिंगला और मधुमंगल को साथ लेकर अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं जब श्रीरुक्मिणी सत्यभामा को शुकपक्षी प्रदान कर रही होती हैं। रुक्मिणी अपनी दासी को शुकपक्षी को ले जाकर अनार फल खिलाने को भेजती हैं। मधुमंगल ने कहा-हे देवि ! श्रीसत्यभामा को यह मणि देने के लिए श्रीसत्राजित ने इस रमणी को आपके पास भेजा है। श्रीरुक्मिणी विस्मित हो उठती है कि यह उज्ज्वलांगी श्यामवर्णा सुन्दरी कौन है ? नववृन्दा उस रमणी को सत्यभामा की सखी-रथांगी बताती है। श्रीसत्यभामा (श्रीराधा) रमणी वेशधारी श्रीकृष्ण को पहचान जाती हैं। रुक्मिणी सत्यभामा को उस रमणी के साथ स्वर्ण मन्दिर में भेजती हैं। नेपथ्य में शुक पक्षी के वचन सुनकर रुक्मिणी जान जाती है कि रमणी वेशधारी श्रीकृष्ण हैं। वचन विद्या की विलक्षणता जानकर माधवी को लेकर रुक्मिणी स्वर्ण मन्दिर में जा पहुँचती है, जब श्रीकृष्ण श्रीसत्यभामा (श्रीराधा) के साथ विविध प्रेम आलाप कर रहे होते हैं। रुक्मिणी को आया देख सब इधर-उधर हो जाते हैं। वह सत्यभामा से उस स्यमन्तक मणि को देखने के लिए मांगती है। देखकर श्रीरुक्मिणी कहती है-सुना है कि यह मणि समुद्र-मंथन के समय निकली थी। फिर यह भी सुना है कि अमृत बाँटते समय आर्यपुत्र (श्रीकृष्ण) ने अपूर्व रमणी वेश-मोहिनी रूप भी धारण किया था। मन-मन में श्रीकृष्ण तथा और सब चकित हो उठते हैं कि रुक्मिणी देवी बिना प्रसंग आज रमणी-रूप की बात कैसे कह रही हैं लगता है-इसने पहचान लिया है।

रुक्मिणी ने कहा-सखि सत्यभामे ! ऐसा कोई उपाय है कि हम भी आर्यपुत्र का वह मोहिनी रूप दर्शन कर सकें ? श्रीकृष्ण कहते हैं-देवि ! तुम्हारी परीक्षा करने के लिए तो आज मैंने यह रमणी रूप धारण किया है। श्रीरुक्मिणी, 'हाय ! ये तो आर्यपुत्र हैं'-ऐसा कहकर लज्जित हो मस्तक झुका लेती हैं। फिर रुक्मिणी कहती है-हे देव ! मैंने आपके विलास सुखमें व्याघात कर महान् पाप किया है। अतः कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं गोष्ठराज के गोष्ठ में निवास कर आपको सुखी करूँ।

इतने में समाचार मिलता है कि गोष्ठपति श्रीनन्दराज, यशोदा एवं बन्धुगण श्रीकृष्ण को मिलने द्वारका आ गये हैं, वे सब रोहिणी के घर ठहरे हैं। सब वहां आनन्दपूर्वक जाकर यथायोग्य वन्दन-आलिंगन कर मिलते हैं। श्रीयशोदाजी एवं श्रीकृष्ण का वार्तालाप रोमांचित करने वाला है। श्रीनन्दराज एवं सखाओं को मिलने श्रीकृष्ण सुधर्मा सभा में जाते हैं। रुक्मिणी माता यशोदा से मिलती है और पौर्णमासी कहती है-गोष्ठेश्वरि ! यह आपकी चन्द्रावली है। मुखरा चन्द्रावली का आलिंगन करती है। स्वाभाविक था सबको श्रीराधा की याद आना। सब बिना श्रीराधा के अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। पद्मा-ललिता आकर परस्पर मिलती हैं एवं यशोदाजी से मिलती हैं। चन्द्रावली ललिता पद्मा को देखकर आश्चर्य में पड़ जाती है। एक दूसरे को मिलकर आनन्द उमड़ उठता है परन्तु एक-मात्र श्रीराधा का अभाव मर्मछेदन कर रहा होता है।

तब बकुला आकर कहती है सत्यभामा कालियहृद में प्रवेश करने जा रही है, रोकने पर भी नहीं रुक पा रही है। श्रीकृष्ण यह जानकर श्रीसत्या (श्रीराधा) का अनुसरण करते हैं। कहते हैं-हे कठोरे ! मेरे चिरविरही प्राणपक्षी की एकमात्र अवलम्ब ! तुम सर्प-विषाग्नि में अपना शरीर विक्षेप कर रही हो ? ऐसा कहकर श्रीकृष्ण भी कालियदह में कूदने का अभिनय करते हैं। इतने में नववृन्दा श्रीकृष्ण की कलाई में स्यमन्तक मणि बांधने लगती है-अमंगल दूर करने के लिए। श्रीकृष्ण पीछे से जाकर श्रीराधा का आलिंगन करते हैं। श्रीराधा मुड़कर देखती हैं और कहती हैं-हाय ! मुझ एक नगण्य व्यक्ति के लिए आप अपना त्रिभुवन सुखकारी शरीर कालियदह में पतित करना चाहते हैं ? श्रीकृष्ण मन्द मुसकराते हुए स्यमन्तक को सत्यभामा के हाथ में बाँध देते हैं। नववृन्दा आकर सबको स्पष्ट कहती है कि आप शोक का त्याग करें श्रीकृष्ण सत्यभामा को लाकर लौट रहे हैं।

इतने में पिंगला और सत्यभामा वहां प्रवेश करती हैं। श्रीसत्यभामा ललिता को देखते ही जोर से रो पड़ती हैं। कहने लगती है-भगवती पौर्णमासी ? आर्या मुखरा ?-ये सब यहां कैसे ? पौर्णमासी श्रीराधा को पहचान कर उच्च क्रन्दन करती है। मुखरा तो नातिनी श्रीराधा को देखकर

पागल हो उठती है। यशोदाजी भागकर श्रीराधा को गोद में उठा लेती हैं। रुक्मिणी तो कांपने लगती है-क्या ? यह मेरी बहिन राधा है ? रोते-रोते श्रीराधा के गले से लिपट जाती है।

श्रीराधा रुक्मिणी से पूछती है-मेरी बहिन चन्द्रावली सकुशल तो है ?

रुक्मिणी कहती है-बहिन ! दुर्जन हतभागिनी चन्द्रावली मैं ही तो हूँ। तब तो दोनों उच्चस्वर में क्रन्दन करने लगती हैं। आनन्दसागर में अश्रु-लहरियां तरंगित हो उठती हैं वहां। श्रीकृष्ण अपने को गोकुलवासी जानकर आनन्द मुग्ध हो जाते हैं, फिर विशाखा आकर सबको यथायोग्य मिलती है। चन्द्रावली सबके सामने श्रीराधा का पाणिग्रहण करने के लिए श्रीकृष्ण को आग्रह करती है। सबकी अनुमति से-“हे पुण्डरीकाक्ष ! यह मेरी बहिन राधा है। इसे आप ग्रहण करो, मुझसे भी अधिक इसका आदर करना”-ऐसा कहकर श्रीराधा को वह श्रीकृष्ण के हाथ में सौंप देती है।

इस मंगल महोत्सव में, सबके सब द्वारका परिकर एवं व्रज परिकर सम्मिलित होते हैं। श्रीकृष्ण का अभिषेक होता है। क्रमशः सब कुमारियों का विधिपूर्वक श्रीकृष्ण के साथ विवाह सम्पन्न होता है। श्रीराधाजी श्रीकृष्ण से गोकुल चलने की प्रार्थना करती हैं तो एकानंशा देवी कहती है-राधे ! आप सब गोकुल में ही वर्तमान हैं। मैंने समय व्यतीत करने के लिए इस लीला का विस्तार किया था। इसके बाद सब प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार दशम अंक समाप्त होता है। ॥१०॥

सुधी पाठकवृन्द जानते हैं कि श्रीविदग्धमाधव नाटक तथा श्रीललितमाधव नाटक मूल में संस्कृत और प्राकृत (स्त्रीलोक) भाषा में श्रीरूप गोस्वामी ने रचे हैं। यद्यपि आज के युग में संस्कृत; विशेषतः प्राकृत भाषा को जानने वाले विद्वान् अति अल्प-संख्यक हैं, किन्तु मूल को संरक्षित करने के उद्देश्य से प्रस्तुत संस्करण में पहले हिन्दी-अनुवाद और अन्त में संस्कृत मूल को भी प्रकाशित किया गया है। इससे हिन्दी भाषी और संस्कृत के विद्वान् सभी इसका आस्वादन कर सकेंगे।

त्रुटि-विच्युति के लिए क्षमा-याचनापूर्वक-

श्रीवृन्दावन

रक्षाबन्धन, दिनांक : २५ अगस्त, ६१

वैष्णवपदरजाकांक्षी-

श्रीश्यामदास

॥श्रीहरिः॥
॥श्रीश्रीकृष्णचैतन्य-नित्यानन्दी जयतः॥

श्रीरूपगोस्वामि-विरचित

श्रीललितमाधव नाटक

प्रथमांक

॥ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रायनमः ॥
सुररिपु सुदृशामुरोज-कौकान् मुखकमलानि च खेदयन्नखण्डः।
चिरमखिलसुहृच्चकोरनन्दी दिशतु मुकुन्दयशः शशीमुदं वः॥१॥

(धर्म-शास्त्रों की प्राचीन परम्परानुसार श्रीललितमाधव-नाटक के ग्रन्थकार श्रीकृष्णचैतन्यदेव प्रिय-पार्षद श्रीरूपगोस्वामी ग्रन्थ के आरम्भ में उनके प्रतिपाद्य विषय-इष्टदेव स्वयं भगवान् श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र का आशीर्वादात्मक मंगलाचरण करते हुए कहते हैं)-

भगवान् श्रीकृष्ण का यश पूर्णचन्द्र के समान है। वह (इस नाटक के द्रष्टा तथा ग्रन्थरूप में अध्ययन करने वाले आप सबको आनन्द प्रदान करे। (जैसे चन्द्र का प्रकाश चकवे और कमलों को मलीन कर देता है) उसी प्रकार श्रीकृष्ण का यशरूपचन्द्र कंसादि असुरों की स्त्रियों के स्तनरूप चकवों को तथा उनके मुखरूप कमलों को निषेज करने वाला है। और (जैसे चन्द्र चकोरों को सदा आनन्द प्रदान करता है) उसी प्रकार श्रीकृष्ण का यश रूपचन्द्र अपने समस्त चिर-सुहृद-नित्य व्रजपरिकरों का आनन्द विधान करने वाला है-वही श्रीकृष्ण यशरूपचन्द्र आप सबका सुख विधान करे॥१॥

(द्वितीय श्लोक में वस्तु-निर्देश एवं वन्दनात्मक मंगलाचरण का उल्लेख कर श्रीरूपगोस्वामी श्रीकृष्ण को एक स्निग्ध मेघ की उपमा देते हुए कहते हैं)-

हम श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं, जो एक श्याम-मेघ के समान हैं। मेघ जैसे अपनी जल धाराओं से गरमी-ताप से जलती हुई आठों दिशाओं को सिंचित कर शीतलता प्रदान करता है, (उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी विरहाग्नि से सन्तप्त स्थान-स्थान पर विचरने वाली श्रीराधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैब्या, श्यामला तथा भद्रा-(प्रमुख आठ नायिकाओं को आनन्द रस धारा में अभिषिक्त

करते हैं एवं शृंगाररस विशेष से उन्हें शीतलता प्रदान करने वाले हैं।) मेघ जैसे जलधारा से मनोहर लताओं में पत्रों कोपलों को विकसित कर उपवनों को शोभित करता है, (उसी प्रकार घनश्याम श्रीकृष्ण भी उपर्युक्त व्रज रमणियों को, उनके शरीर पर पत्रावली चन्दन-केशर के लेप की रचना कर सुशोभित करने वाले हैं।) मेघ जैसे अपने विशाल-विस्तृत वक्ष में सूर्य की अतुलनीय आभा को तथा चन्द्रमा की उज्ज्वल चांदनी को आवृत कर आकाश में भ्रमण करता है, (उसी प्रकार घनश्याम श्रीकृष्ण भी अतुलनीय कान्तिवाली वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी को तथा चन्द्रसे भी उज्ज्वल कान्तिवाली श्रीचन्द्रावली को अपने विशाल-परिपुष्ट वक्षस्थल में आवृत या धारण कर वृन्दावन-कुञ्जों में विहार करते हैं।- अतः हम घनश्याम रूप श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं॥२॥

(इस प्रकार मंगलाचरण या नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रंगमंच पर आकर कहता है)-

सूत्रधार-अधिक कहने का प्रयोजन नहीं, (चारों ओर देखकर) हे नटगण ! सुनो, निरन्तर श्रीवृन्दावन की निकुञ्ज वेदी में निवासरूप दीक्षा रस के मर्मज्ञ अर्थात् व्रजवास के दृढ़ व्रत की निष्ठा के मर्म को जानने वाले जो श्रीगोपीश्वर नाम से प्रसिद्ध हैं, वे ऊँची-ऊँची नालों वाले कमलों से मण्डित ब्रह्मकुण्ड की निकटवर्ती भूमि के अधीश्वर हैं। उन भगवान् चन्द्रशेखर महादेव के स्वप्न-आदेश रूप निर्देश को पाकर दीपावली-उत्सव के प्रारम्भ में श्रीगोवर्धन पूजा के लिए श्रीराधाकुण्ड के तटस्थित श्रीमाधवी-माधव मन्दिर की पूर्वदिशा में अनेक

वैष्णववृन्द एकत्रित हुए हैं। मैं अपने द्वारा रचित ललितमाधव नाटक के द्वारा उनकी सेवा करने के लिए उत्कण्ठित हो रहा हूँ॥१३॥

अतः पहले अपने अभीष्टदेव-श्रीकृष्णचैतन्यदेव के चरणकमलों की वन्दनापूर्वक प्रार्थना करता हूँ-

जिन्होंने पृथ्वीतल पर उदय होकर निजप्रेमसुधा (कृष्ण प्रेमभक्तिसुधा) को प्रचुर मात्रा में विकीर्ण किया है, जो 'द्विजकुलाधिराज' नाम से प्रसिद्ध हैं एवं जो अज्ञानरूप अन्धकार को दूर कर जगत् के मनको वशीभूत करने वाले हैं, वे श्रीशचीनन्दन नामक चन्द्र हमारा कल्याण विधान करें॥१४॥

इतने में एक आकाशवाणी होती है और सूत्रकार कान ऊपर उठाकर देखने लगता है-"अरे ! क्या कह रहे हो तुम ? इस प्रकार के महान कार्य करने का तुम क्यों साहस कर रहे हो ?"

सूत्रधार-वास्तव में यह मेरा दुःसाहस ही है। इसे मैं जानता हूँ। किन्तु मैं श्रीमहादेव की आज्ञा के पराधीन हूँ॥१५॥

कहां तो यह गुणवती वैष्णव-सभा, और कहां मूढ़ बुद्धि मैं ? फिर भी मैं गुरु की प्रबल आज्ञा के आधीन हो रहा हूँ। शरणागतों के आनन्ददाता, करुणा सागर उन कृपालु प्रभु की एकमात्र करुणा ही मुझ जैसे व्यक्ति का आज आश्रय या सम्बल है।

(इतना कहकर सूत्रकार सामने देखते हुए सभा को सम्बोधित करते हुए बोला)-हे हे ! श्रीकृष्णचरण कमलों के मधुपगण ! आप सब अपनी करुणा वितरण कीजिए। आप जैसे महत्, पुरुषों की कृपा का अवलम्बन लेकर मैं आज यहां इस महान् कार्य में निर्भय होकर प्रवृत्त हो रहा हूँ। आप जैसे शान्त (सांसारिक कामनाओं से रहित) भक्ति सम्पत्ति से सम्पन्न परम भागवतगण हर प्रकार से दोषों को भी सद्गुण रूपों में ग्रहण करते हैं। जैसे उष्णता-रहित कोमल किरण-ज्योति वाले तारे आकाश में उदित होकर रजनी को विभूषित कर देते हैं ॥१६॥

फिर सूत्रकार दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर रखकर बोला-सृष्टि के प्रारम्भ में इस जगत् में परमहंसों के द्वारा अनुष्ठित धर्म पद्धति के प्रचार के लिए श्रीसनक-सनन्दन, सनातन एवं सनतकुमार आविर्भूत हुए थे। इन चार सिद्ध पुरुषों में जो तीसरे सिद्ध पुरुष श्रीसनातन हैं, अब वे सम्पूर्ण भक्तिरस के तत्त्व को भक्तों में संचार करने के लिए अकेले ही अवतीर्ण हुए हैं। उन परिपूर्ण स्वरूप विश्व-गुरु श्रीसनातन-गोस्वामीजी को मैं सूत्रधार (रूप गोस्वामी) प्रणाम करता हूँ॥१७॥

अब मैं प्रशंसनीय संगीत विद्या में विद्याधरी के समान माननीया नट वृन्देश्वरी वृद्धा मुखरा को इस रंगमंच पर उपस्थित करने की इच्छा करता हूँ॥१८॥

(मुखरा नटी मंच पर उपस्थित होती है)

नटी-वत्स ! इस समय मैं रंगमंच का मंगल सम्पादक करने के लिए उत्साहित होकर भी अपने मन को अच्छी प्रकार निविष्ट नहीं कर पा रही हूँ॥१९॥

सूत्रधार-आर्ये ! ऐसा क्यों कह रही हो ? देखो तो शारदोत्सव उज्ज्वल काँति से सुशोभित हो रहा है, इधर वैष्णववृन्द की सभा देदीप्यमान हो रही है। यह गिरिराज गोवर्धन श्रीकृष्ण की निर्मल कीर्तिधारा का संचार कर रहा है। इस विषय में मैं अधिक क्या कह सकता हूँ कि मधुरमूर्ति श्रीमाधव स्वयं भी यहां विराजमान हैं। अतएव तुम तो ऐसा समझो कि तुम्हारी विशुद्ध-सौभाग्य राशि का परमोदय हुआ है॥१९०॥

नटी-वत्स ! किसी एक महानुभाव व्यक्ति की विपत्ति को लेकर ही मुझे यह घबराहट हो रही है। यह किसी साधारण लोक परम्परा को लेकर नहीं है॥१९१॥

सूत्रधार-आर्ये ! महानुभावों की विपत्तियां सर्वदा अस्थायी होती हैं-यही जगत् का नियम है॥१९२॥

क्योंकि भक्तजन यदि वन में जाते हैं, अथवा किसी भी दिशा में किंवा आकाश स्वर्ग या पाताल (नरक) में भी चले जाते हैं तो भी श्रीभगवान् उन भक्तों को अपने चरणों के पास अवश्य ले आते हैं। उनका वे कभी परित्याग नहीं करते। (अर्थात् किसी पूर्व कर्म फल के कारण भक्त वन में पशुत्व भी प्राप्त करें, या नर शरीर प्राप्त करें अथवा देवत्व को प्राप्त करें किंवा उन्हें रसातल में ही कभी जाना पड़े तो भी श्रीभगवान् अपने भक्तों को अपनी शरण प्रदान करते हैं, उनका परित्याग नहीं करते। लीलानुरोध से उनके लीला-परिकर भी किसी अवस्था को क्यों न प्राप्त करें, अन्त में वे श्रीभगवान् के पास ही आकर मिलित होते हैं)॥१९३॥

नटी-पुत्र ! तुम सत्य कह रहे हो, किन्तु स्नेह की ऐसी विवेक हरण करने वाली प्रवृत्ति है, जिसके कारण मैं मोहित हो रही हूँ॥१९४॥

सूत्रधार-हे आर्ये ! कहो तो आप किसके स्नेह-बन्धन में मोहित हो रही हो ?॥

नटी-वत्स ! नट-कुलनन्दनचन्द्र-श्रीकृष्ण के स्नेह में मेरी बुद्धि मोहित हो रही है॥१९५॥

सूत्रधार-आर्ये ! उसे कौन नहीं जानता ?-वह अनेकविध उत्तम नृत्यकला में सुशिक्षित है, गुणशाली है, नव किशोर है। युद्धक्षेत्र में शत्रु पर निश्चय ही विजय प्राप्त करने

वाला है। फिर समस्त कलाओं का पारदर्शी है॥१६॥

नटी-वत्स ! विधाता के अनुग्रह से मुझ वृद्धा को एक नातिनी (दोहत्री) प्राप्त हुई है, जिसका नाम तारा (श्रीराधा) है। उस असाधारण कन्या को उस कलानिधि (श्रीकृष्णचन्द्र) के हाथ सौंपने के लिए मेरा दृढ़ संकल्प हो रहा है॥१७॥

सूत्रधार-आर्ये ! इन दोनों वर-कन्या का मिलन अत्यन्त कठिन है। परन्तु विधाता इन दोनों का मिलन बलपूर्वक करा ही रहा है, क्योंकि उसे डर है कि यदि वह इनका मिलन नहीं कराता तो लोग उसे धिक्कार करेंगे-“ऐसी जोड़ी का मिलन विधाता न करा सका।” फिर उसे अपनी प्रशंसा प्राप्त करने का लोभ भी है, क्योंकि उनके मिलन में सब जगत् विधाता की प्रशंसा करेगा॥१८॥

नटी-परन्तु इस देश का अधिकारी किरात राजा (व्याध की भांति क्रूर) कंस उस कन्यारत्न को प्राप्त करना चाहता है। वह इसलिए नृत्य-नाटक दिखाने के बहाने कलानिधि (श्रीकृष्ण) को पराभूत करने के लिए अपनी राजधानी में बुला रहा है॥१९॥

सूत्रधार-आर्ये ! मैं ज्योतिष विद्या का जानकार हूँ। अतः वर्तमान लग्नानुसार जो होगा, उसे मैं आपको यथार्थ रूप में बताये देता हूँ। (क्षणकाल चिन्ता करके हर्ष पूर्वक सूत्रधार बोला)-आर्ये ! आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। वह कलानिधि रंग भूमि में नृत्य करते हुए उस किरातराजा कंस को मार डालेगा और यथा समय शुभक्षण में उस तारा (श्रीराधा) का पाणिग्रहण करेगा॥२०॥

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है)-

हाय ! कंसराजा के भय से श्रीराधा-माधव के पाणिग्रहण को स्पष्ट रूप में कहने में असमर्थ होकर “कलानिधि रंगभूमि में नृत्य करते हुए किरातराजा को मार डालेगा”-छल पूर्वक इस बात को कहने वाली वह धन्यात्मा कौन है ? वह तो मुझ चिन्तातुर को आश्वस्त ही कर रही है॥

सूत्रधार-(पर्दे की ओर देखकर) आर्ये ! देखो, देखो, मुनिराज सान्दीपनि की माता जो वीणावादन रसिक देवर्षि श्रीनारदजी की शिष्या है एवं जगत् में साध्वी नाम से सुप्रसिद्धा है, वह काशपुष्पो की भांति सफेद केशोंवाली परमधन्या पौर्णमासी गर्ग-कन्या नान्दीमुखी के साथ-कुछ आलाप करती हुई घूमती-घामती रंग भूमि की तरफ आ रही है॥२१॥

अतः हे आर्ये ! हम सब शीघ्र ही परवर्ती अभिनय के उपयुक्त वेश-भूषा धारण करने के लिए चलें। (सूत्रधार और नटी-दोनों मंच से चले जाते हैं। यहां तक प्रस्तावना या आमुख का वर्णन किया गया है)॥२२॥

(श्रीपौर्णमासी प्रवेश करती है)

पौर्णमासी-अहो ! “श्रीराधा-माधव के पाणिग्रहण की कथा” ? वत्से गार्गी ! सुनो तो-श्रीकृष्ण की दृष्टि-कटाक्ष रूप तरंगों से चंचल होकर सूर्यकन्या यमुना गम्भीर स्वरूपा श्रीराधा के मन्द हास्यमय चन्द्रिकारूप गंगा-प्रवाह में मिल रही है। दिव्य त्रिवेणी धारा के पावन तीर्थ में अमृत रस का पान कर हम हृदय की प्रसन्नता रूप तुषार-शीतलजल धारा में सरावोर हो रही हैं। उससे हमारे तीव्र ताप दूर हो गये हैं, मानो अब हम सातों लोकों का अतिक्रमण कर सबसे ऊँचे लोक में विराजमान हो रही हैं। (तात्पर्य यह है कि श्याम वर्ण चंचल श्रीकृष्ण और गम्भीरोज्ज्वल कांति श्रीराधा जब परस्पर मिलित होंगे तो उस दिव्य युग्म-मिलित रूप रसामृत का हम पान कर हृदय के तीव्र तापों से मुक्त हो जायेंगी। मानो सर्वलोकों से ऊर्ध्वतम अप्रकट श्रीगोलोकधाम में विराजमान हो जायेंगी-यहां श्रीयुगल मिलन की भावी छटा का आस्वादन करके पौर्णमासी अपने को कृतार्थ मानने लगी है)॥२३॥

गार्गी-आर्ये ! पहले तो आपने अभिमन्यु के साथ श्रीराधा का विवाह रचाया है, अब कैसे पुनः उसका पाणिग्रहण श्रीकृष्ण के साथ चाह रही हो ?॥२४॥

पौर्णमासी-वत्से ! अभिमन्यु के साथ श्रीराधा का विवाह तो माया-विवर्त है। अर्थात् एक भ्रान्ति मात्र है, जैसे सीपी में चांदी का भ्रम होता है, वैसे (मेरी) योगमाया द्वारा उन दोनों के विवाह का भ्रम पैदा कर दिया गया था। भला, विधाता के वरदान रूप अमृत से पुष्ट, विन्ध्याचल के तपस्या-रूप कुसुमों से गुथी हुई, श्रीमाधव-हृदय में स्निग्धता सम्पादन करने वाली माधुरी मकरन्द स्वरूपिणी वैजयन्ती माला के समान उस श्रीराधा का पाणिग्रहण करने में दूसरा कौन व्यक्ति समर्थ हो सकता है ? (उसका पाणिग्रहण तो श्रीकृष्ण के साथ पूर्व निश्चित है)॥२५॥

गार्गी-विन्ध्याचल को विधाता से कैसा वरदान-अमृत प्राप्त हुआ था ?॥२६॥

पौर्णमासी-विधाता ने विन्ध्य पर्वत को यह वरदान दिया था कि हे विन्ध्य ! तुम जैसा चाहते हो, तुम्हें सर्वोत्तमा दो कन्याएँ प्राप्त होंगी। और तुम्हारा जामाता त्रिभुवन को अपने गुणों से विस्मित कर देने वाला होगा। वह श्रीशिव को भी पराजित करने वाला होगा॥२७॥

गार्गी-पुत्र का वर त्यागकर विन्ध्य ने कन्या प्राप्त करने की अभिलाषा की-भला ऐसा क्यों ?॥२८॥

पौर्णमासी-देखो, पार्वती का पिता पर्वतराज हिमालय श्रीशिव जैसे जामाता को पाकर गर्व से फूल उठा था,

उसके सौभाग्यों की स्पर्द्धा से विन्ध्य पर्वत ने भी कन्या-प्राप्ति का वरदान माँगा, ताकि वह शिव को पराजित करने वाले जामाता को पाकर हिमालय से अधिक सौभाग्यशाली हो सके ॥२६॥

गार्गी-बड़ा आश्चर्य है ! यह विन्ध्याचल अपने गोत्र (पर्वत जाति) के उत्कर्ष को कभी सहन नहीं कर पाता। पहले भी इसने सुमेरु पर्वत को नीचा दिखाने के लिए अपने आकार को बढ़ाना चाहा था, परन्तु अगत्य ऋषि के सम्मान को रखने के लिए वह बढ़ नहीं पाया था ॥३०॥

पौर्णमासी-हां, गार्गी ! मनस्वियों का कुछ स्वभाव होता है, (गुणीजन अपने से अधिक किसी का गुणोत्कर्ष सहन नहीं कर सकते) ॥

गार्गी-हे आर्ये ! विन्ध्याचल से राधा को यहां गोकुल फिर कौन ले आया ?

पौर्णमासी-बाल-भक्षिणी पूतना ले आयी थी ॥३१॥

गार्गी-(भयभीत होती हुई) आर्ये ! पूतना तो बालकों को खा जाती थी। उसके मुंह से यह कल्याणी श्रीराधा बच गयी बड़े सौभाग्य की बात है ॥

पौर्णमासी-पुत्रि ! लोकोत्तर कुमारों को तो मार डालने के लिए, और कुमारियों का अपहरण कर लाने के लिए कंस ने पूतना को भेजा था ॥३२॥

गार्गी-हे देवि ! इन दोनों अमंगलकारी कामों में कंस की प्रवृत्ति क्यों हो उठी थी ? ॥

पौर्णमासी-पुत्रि ! देवकी की कन्या (योगमाया) के वचन सुनकर।

गार्गी-क्या वचन कहे थे उसने ? ॥३३॥

पौर्णमासी-गार्गी ! उस (योगमाया) ने कहा था-अरे कंस ! तू पूर्वजन्म में कालनेमि था। युद्ध क्षेत्र में तीव्र चक्र से जिन्होंने तुम्हारा मस्तक काट डाला था, और जिनके चरणकमलों की देवतागण वन्दना करते हैं, वे जगत् के मूलाधार आज चन्द्रोदय (आधीरात के) समय अपने प्रियजनों का आनन्द विधान करने के लिए आनन्दामृतसिन्धु से आविर्भूत हो चुके हैं ॥३४॥

उस योगमायादेवी ने और यह भी कहा था-अरे कंस ! मुझसे भी अति उत्तम रूप-माधुर्य शालिनी आठ महाशक्तियां (श्रीराधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैब्या, श्यामला तथा भद्रा) कल अथवा परसों पृथ्वीतल पर प्रकट होंगी। उनमें दो बहनें (राधा और चन्द्रावली) तो असंख्य गुणों की निधान-स्वरूपिणी हैं तथा अत्यन्त मनोहर होंगी। उनके साथ जो व्यक्ति विवाह करेगा, वह

राजेन्द्र बनेगा। वह युद्ध में महादेव को भी पराजित कर देने वाला बलशाली होगा ॥३५॥

गार्गी-देवि ! दूसरी बहन चन्द्रावली का क्या वृत्तान्त है ?

पौर्णमासी-गार्गी ! विन्ध्याचल ने अपने पुरोहित से राक्षस-नाशक मन्त्र जाप कराया था, जिससे पूतना भयभीत होकर वहां से जल्दी भाग उठी थी। उस समय उसके हाथ से बड़ी बहन चन्द्रावली छूटकर विदर्भ देश की एक नदीधारा में गिर पड़ी थी ॥३६॥

गार्गी-आर्ये ! मेरे पिता श्रीगर्गमुनि तो सर्वज्ञ हैं, फिर वे ऐसा क्यों कहते हैं कि श्रीराधा दुर्वासा मुनि के वरदान से वृषभानुजी की औरस कन्या है ? ॥३७॥

पौर्णमासी-गार्गी ! वास्तव में ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर हरिमाया ने चन्द्रभानु की पत्नि के गर्भ से चन्द्रावली को और वृषभानु की पत्नि के गर्भ से राधा का आकर्षण कर-इन दोनों को विन्ध्याचल की पत्नि के गर्भ में स्थापन कर दिया था ॥३८॥

गार्गी-महा आश्चर्य है ! तो क्या चन्द्रभानु और वृषभानु दोनों को इन कन्याओं के आकर्षण का रहस्य मालूम पड़ गया था ? ॥३९॥

पौर्णमासी-हां, हां, क्यों नहीं ? दुर्वासा मुनि अपने उपकार को जताये बिना भला कैसे रह सकते थे ?

गार्गी-आर्ये ! आपने इस सम्बन्ध में यह सब कैसे जान लिया ?

पौर्णमासी-गुरुवर श्रीनारदजी की कृपा और उपदेश से। इसीलिए तो मैं श्रीराधा के प्रति अनुरक्त हो रही हूँ ॥४०॥

गार्गी-आपने केवल श्रीराधा को ही उस पूतना राक्षसी के चंगुल से जीवित प्राप्त किया ?

पौर्णमासी-केवल श्रीराधा को नहीं, और भी पांच कन्याएँ मुझे मिलीं ॥४०॥

‘वे कौन-कौन सी ?’-गार्गी ने पूछा।

पौर्णमासी-वे हैं-ललित चन्द्रवदनी श्रीराधा की सखी ललिता, चन्द्रावली की सुन्दर सहचरी पद्मा, मंगलचरित्रा भद्रा, कल्याण कारिणी शैब्या और श्यामकान्ति युक्ता श्यामा-ये पांचों।

गार्गी-इन्हें विभिन्न गोपियों के हाथों में किसने सौंपा ? ॥४१॥

पौर्णमासी-“मैंने ही इन पांचों कन्याओं को गुप्त रूप से गोपरमणियों में बांट दिया था। एकान्त में यशोदा की धात्री मुखरा को यह कहकर मैंने श्रीराधा को उसे दे दिया कि यह महागुण शालिनी श्रीराधा तुम्हारे जमाई

वृषभानु की कन्या है, तुम इसे आनन्द पूर्वक ग्रहण करो” ॥४२॥

गार्गी-तो मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीराधा की दूसरी सखी विशाखा गोकुल में उत्पन्न हुई है ?

पौर्णमासी-नहीं, नहीं, यह विशाखा तो यमुना जल में बहती हुई जा रही थी, इसे जटिला ने प्राप्त किया।

गार्गी-नदी प्रवाह में बहती हुई विन्ध्याचल की बड़ी कन्या चन्द्रावली को किसने पाया ?

पौर्णमासी-उसे विदर्भराज भीष्मक ने प्राप्त किया।

गार्गी-अहो ! दोनों बहनों को एक दूसरे से विच्छेदकर देने वाली भवितव्यता की यह कैसी निष्ठुरता ? ॥४३॥

पौर्णमासी-पुत्रि ! अब फिर जो दोनों बहनों का मिलन हुआ है, उसमें विधाता की करुणा का भी तो विचार करो।

गार्गी-वह कैसे ?

पौर्णमासी-वह ऐसे कि कराला की नातिनी वह चन्द्रावली जब पांच वर्ष की हुई तो विन्ध्यवासिनी देवी के आदेश से गोवर्धन और विन्ध्यपर्वत की गुफाओं में विचरने वाला जाम्बवान उसे कुण्डल नगर से ले आया।

गार्गी-मन-मन में कहने लगी-मैंने अपने पिताजी से सुना था कि चन्द्रभानु आदि की कन्याएं भीष्मकादि की कन्याओं से तत्त्वतः अभिन्न हैं, केवल उनके शरीर अलग-अलग हैं। अतः इनके शरीरों की पृथक्ता निश्चय ही मामा के द्वारा भ्रांति उत्पादन मात्र है। जो कुछ भी हो फिर जान लूंगी। अब उस रहस्य के उद्घाटन करने का कोई प्रयोजन भी तो नहीं है। गार्गी ने फिर स्पष्ट कहा-निश्चय ही चन्द्रावली आदि के साथ गोवर्धन आदि गोपों का विवाह माया द्वारा ही रचा गया है ॥४४॥

पौर्णमासी-गार्गी ! ऐसा ही है। अपने को पति मानने वाले गोपों की उन कुमारियों में जो पत्नि-भावना है, वह केवल ममता मात्र ही है। क्योंकि उन कुमारियों को आँखों से देखना तक भी उनके लिए अति असम्भव है।

गार्गी-तब तो उन आठों कुमारियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है।

पौर्णमासी-केवल उन आठों कुमारियों की क्या बात कह रही हो, इस गोकुल में किस मृगनयनी रमणी का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग नहीं है ? ॥४५॥

गार्गी-आर्ये ! सत्य कहती हो आप, क्योंकि अब सोलह हजार एक सौ कन्याएं चन्द्रावली आदि पांच कन्याओं के साथ मिलकर चण्डिका-कात्यायनी का पूजन अर्पण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करती हैं-हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरि ! हे देवि !

श्रीनन्द गोपराज के पुत्र को हम सबका पति कीजिए, हम सब आपको प्रणाम करती हैं।

पौर्णमासी-पुत्रि ! गर्गाचार्य ने कहा था कि कामरूप में प्रकाशित कामाख्या देवी उन कुमारियों से सम्यक् पूजित होकर उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करेगी। गर्ग मुनि के इन वचनों के अनुसार, हे गुणवति ! ब्रज की समस्त मृगनयनी कुमारियाँ उस कात्यायनी देवी की उपासना करती हैं ॥४६॥

गार्गी-फिर सूर्य आराधना में श्रीराधा को किसने नियुक्त किया है ?

पौर्णमासी-तुम्हारे ही पिता गर्गाचार्य ने।

गार्गी-आर्ये ! मैंने पिताजी के मुख से यह भी सुना है कि इन समस्त कन्याओं के साथ विवाहित होने वाले पतियों का संगम उनमें विच्छेद को पैदा करने वाला होगा।

पौर्णमासी-पुत्रि ! तुमने ठीक कहा है। इसीलिए ही मैंने किशोरी मुकुटमणि उन श्रीराधा और चन्द्रावली को उनसे बचाये रखने के लिए अभिमन्यु की माता जटिला और गोवर्धन की माता भारुण्डा को आग्रह पूर्वक नियुक्त कर रखा है ॥४७॥

गार्गी-आर्ये ! उन दोनों बहनों (श्रीराधा और चन्द्रावली) को एक ही स्थान पर सम्मिलित क्यों नहीं कर देती हो ?

पौर्णमासी-दुष्ट कंस के सदा जहां-तहां घूमते रहने वाले गुप्तचरों की सन्देह शंका से।

गार्गी-और भी जानता है कोई इस अद्भुत वृत्तान्त को ?

पौर्णमासी-नहीं, नहीं और कोई नहीं जानता। हां मेरे बताने से केवल कृष्ण-बलराम की माताएं यशोदा और रोहिणी जानती हैं ॥४८॥

(पर्दे के पीछे से सखियों के आपस में बोलने की आवाज आती है)-

“हे पद्मे ! तुम शय्या से उठो। हे भद्रे ! तुम मोरपुच्छ से मुकुट बनाना बन्द करो। श्यामे ! तुम माला निर्माण करना त्यागो। हे ललिते ! तुम केसर-चूर्ण मत पीसो। हे विशाखे ! तुम सारिका को पाठ पढ़ाना बन्द करो। और हे शैब्ये ! तुम वेणी संवारना छोड़ो, देखो तो गौओं के खुरों से उड़ती सुगन्धित धूलि पूर्व दिशा में छा गयी है ॥

पौर्णमासी-गार्गी ! देखो, देखो, धूलि का अन्धकार जो छाया जा रहा है यह श्रीकृष्ण के आगमन को बता रहा है। ब्रजसुन्दरियों की अलौकिक उपासना-पद्धति को सर्वदर्शी श्रुतियां भी नहीं जान पाती हैं ॥४९॥

गार्गी-निपुण, उत्तम वंशोत्पन्न वंशी की ध्वनि की, जो लज्जा का अपहरण कर श्रीराधा को घर से वन में खींच रही है, उसकी जय हो, क्योंकि वह निसृष्टार्था-दूती (प्रेमी एवं प्रेमास्पद को परस्पर मिलाने के लिए नियुक्त दूती) है न॥५०॥

(पर्दे के पीछे से ऐसी आवाज आती है)-हे धन्ये ! तुम बायें नेत्र में बिना काजल लगाये मत भागो, हे पद्मे ! तुम चरण में भुजा के भूषण अंगद को पहनकर मत जाओ। हे सारंगि ! तुम एक ही चरण में नूपुर ध्वनि करती जाओगी क्या ?-ऐसा मत करो। हे पालि ! तुम्हारी मेखला गिर पड़ी है। उसे छोड़कर मत जाओ। हे लवंगि ! तुम कपोल पर ही बेंदी लगाकर भाग रही हो ? अरी कमले ! नेत्र में महावर लगाकर मत जा। इस प्रकार चञ्चल चित्त होकर तुम सब मत भागो, अभी तो मुरली-ध्वनि बड़ी दूर से आ रही है॥५१॥

गार्गी-अहो ! देखो तो, नीलाम्बर कान्तिधारी, शुभ्रवर्ण मधुर ज्योत्स्ना से युक्त, गोपरूप नक्षत्रावली से परिवेष्टित माधुर चन्द्रमा उदित हो आया है। अर्थात् नीलाम्बरधारी माधुरचन्द्र श्रीबलराम शुभ्रवर्ण मनोहर धेनुओं से और गोपबालकों से परिवेष्टित होकर शोभित हो रहे हैं॥५२॥

पौर्णमासी-हाथ में सुन्दर सीधी लकुटि को लिए हुए, कटि देश को रेश्मी पीताम्बर से शोभित करते हुए एवं सर्वत्र नीलाङ्गकान्ति को बिखेरते हुए नील कमलों का तिरस्कार कर गोपरमणियों की प्रेमलक्ष्मी के विवर्त स्वरूप अथवा उनके प्रेम दुग्ध का विवर्तया घी स्वरूप श्रीकृष्ण विहार कर रहे हैं ! गार्गी ! चलो न हम दोनों अब यशोदा के पास चलें॥५३॥

(यह कहकर दोनों वहां से चली जाती हैं)

यह प्रस्तुत नाटक का अंकमुख है-अर्थात् यहां समस्त दृश्यों का सार प्रदर्शित किया गया है॥५४॥

(इसके बाद सखाओं के साथ श्रीकृष्ण मंच पर प्रवेश करते हैं)-

श्रीकृष्ण-सखे मधुमंगल ! देख, देख, गौएँ अब और तृण-गुच्छ नहीं खा रही हैं और निरन्तर 'हम्बा-हम्बा' शब्द करती हुई थकी सी लग रही हैं। इन सबके नेत्र भी चञ्चल हो उठे हैं, ये सुवलित कण्ठी गौएँ गोकुल की ओर चलने के लिए उत्कण्ठित हो रही हैं॥५५॥

मधुमंगल-सखे ! सौभाग्यवश ये सब स्नेह-वत्सला गौएँ वन में भ्रमण करते-करते थके हुए मुझ ब्राह्मण पर करुणा वरसा रही हैं॥५६॥

श्रीबलराम-देखो, देखो, ये गौएँ आगे की ओर वेग से तीन-चार कदम चलकर गर्दन को पीछे घुमा लेती हैं और

श्रीकृष्ण को देखने लगती हैं, क्योंकि इन्हें बकारि श्रीकृष्ण में अपने बछड़ों से भी अधिक तीव्र प्रेमानुबन्धन व्याकुलित कर रहा है॥५७॥

श्रीकृष्ण-(पश्चिम दिशा की ओर देखकर) समय के क्षय होने से शक्तिहीन होकर सूर्य आश्रय रहित हो गया है, इसलिए आकाश में चलने में असमर्थ हो गया है। मन्द पड़ गयी किरणों के द्वारा मानो शिथिल हाथों से भाण्डीर वट की शाखाओं का सहारा लेकर अस्ताचल की चोटी पर गिरा पड़ा जा रहा है॥५८॥

श्रीबलराम-देखो, देखो, हम सब ब्रज के निकट आ गये हैं। चारों ओर पर्वत की शिखरों के समान ऊँचे-ऊँचे उपलों (गोबरों) के स्तूप दीखने लगे हैं और उपलों के चूर्ण से परिपूर्ण स्थल भी दीख रहे हैं। चलो अब हम सब यमुना में स्नान कर भारी परिश्रम को दूर करें॥५९॥

(ऐसा कहकर श्रीकृष्ण सखाओं के साथ वहां से चले जाते हैं)

श्रीकृष्ण-हे सखे मधुमंगल ! देखो तो, नवीन चन्द्रकान्तमणि द्रवित होकर जिसको पाद्य (चरण धोने के लिए जल) प्रदान कर रही है, सागर उच्छलित होकर रत्नों के साथ तरल तरंगों के द्वारा जिसको मनोहर अर्घ्य दान कर रहा है और दिशाएं रूपी वधूगण समुल्लसित होकर नक्षत्रों के वितरण के द्वारा जिसको पुष्पांजलि अर्पित कर रही हैं, वह चन्द्रमा मदनानन्द रस लहरियों से पुलकित होकर उदय हो रहा है॥६०॥

मधुमंगल-प्रिय सखे ! इस तुच्छ एवं कलंकित चन्द्रमा की क्या आवश्यकता है ? देखो, लतामण्डल के पीछे सोलह कलापूर्ण निष्कलंक हजारों चन्द्र प्रकाशित हो रहे हैं॥६१॥

श्रीकृष्ण-(लतामण्डल की ओर देखकर) बटु ! तू ठीक कह रहा है। अनेक विषयों में समता रहने पर भी निश्चय ही एक बात में चन्द्रमा पराजित हो रहा है, यह चन्द्र और इन ब्रजरमणियों के मुख चन्द्र दोनों ही नवीन घनीभूत सुधा से परिपूर्ण हैं। देखने में दोनों सबको सुन्दर लगते हैं। दोनों अपनी कान्ति से कमलों को फीका कर देते हैं। दोनों सुन्दर, शुभ्रवर्ण और समस्त कलाओं से पूर्ण हैं, परन्तु यह कुरंगधर (कालिमायुक्त) चन्द्रमा ब्रजरमणियों के सुरंगधर (सुन्दर गौरवर्ण धारी) मुखचन्द्र के आगे पराजित हो रहा है॥६३॥

मधुमंगल-सखे ! तुम बार-बार कानों को ऊँचा उठा रहे हो, लगता है कदम्ब कुञ्ज की दक्षिण दिशा में कोई रमणी आकर्षण-मन्त्र पाठ कर रही है॥६४॥

श्रीकृष्ण-वह विश्वमोहिनी शैब्या की क्षुद्र वेणु है,

उसके वाद्य-विलास के प्रारम्भ होने से मेरी वेणु स्तम्भित हो रही है॥६५॥

(यह कहकर कुछ आगे जाकर उत्कण्ठित होकर फिर कहते हैं)-नवीन वल्लरी के समान गोपबालिका भद्रा और उसकी रंगवल्ली वीणा-ये दोनों मेरे धैर्य का हरण कर रहे हैं। दोनों का स्तनमण्डल तुम्बीफल के सदृश है। दोनों ही प्रवाल की शोभा को धारण करने वाली हैं। (शैब्या के अधर और कर-पदतलों की शोभा प्रवाल के लाल वर्ण जैसी है और वीणा में जुड़ा तुम्बीफल भी लालवर्ण का है)। दोनों ही कल-भाषण में मधुरध्वनि करने में कुशल हैं॥६६॥

मधुमंगल-कृष्ण ! आश्चर्य है ! यमुना में कोई एक कच्छवी (अर्थात् वीणा) कुन-कुन शब्द कर रही है॥६७॥

श्रीकृष्ण-(हंसते हुए) यह तो श्यामला की मनहारिणी श्रेष्ठ वीणा काम केलि नाटक के नान्दी पाठ (मंगलाचरण) के द्वारा बार-बार शब्द-भ्रम की शोभा धारण कर रही है। उससे मेरा मन आनन्दित हो रहा है॥६८॥

(ऐसा कहकर घूमते हुए हर्ष पूर्वक फिर कहते हैं)-देखो, पास ही पद्मा की कलाई के बलय (कंगन) की सुमधुर झंकार मेरे आनन्द की वृद्धि कर रही है, (चारों ओर देखकर) सखे मधुमंगल ! आज अभी तक यहां चन्द्रावली का परिमल प्राप्त क्यों नहीं हो रहा है ? चलो, बायीं ओर कराला के गृह-आंगन की वाटिका में चलते हैं॥६९॥

(ऐसा कहकर घूम जाते हैं)

मधुमंगल-(सामने देखकर) कृष्ण ! यह तो श्रीउपनन्द के पुत्र समुद्र की बधू कुन्दलता इधर आ रही है। (कुन्दलता प्रवेश करती है)।

कुन्दलता-कृष्ण ! यह अशोक असमय में प्रफुल्लित हो रहा है-इसे देखकर आप प्रशंसा क्यों नहीं कर रहे हैं ?॥७०॥

श्रीकृष्ण-(अशोक वृक्ष को देखकर मन ही मन) यह निश्चय ही चन्द्रावली की चरण-चातुरी की चमत्कारिता है (अर्थात् असमय में अशोक में पुष्पोद्गम हो उठना चन्द्रावली के पदाघात का परिणाम है)। (उत्कण्ठा सहित अभिनन्दन करके) श्रीकृष्ण बोले-इस मनोहर अशोक वन से आने वाली चन्द्रावली के स्वर्णनूपुरों की ध्वनि सुन्दर हंसों के कूजन को भी पराजित कर मन्त्र की भांति मेरे कानों को आनन्दित कर रही है॥७१॥

कुन्दलता-हे सुन्दर ! भारुण्डा ने चन्द्रावली को भीतर कमरे में रोक रखा था। फिर भी मैं उसे अपनी चतुर-चेष्टा से बाहर ले आयी हूँ।

श्रीकृष्ण-भारुण्डा ने बिना कारण ऐसा कठोर व्यवहार

करना क्यों आरम्भ कर दिया है ?

कुन्दलता-केवल भारुण्डा ही नहीं, बल्कि जटिला आदि समस्त वृद्धाओं ने भी ऐसा व्यवहार कर रखा है॥७३॥

(इतने में पद्मा के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली-सखि पद्मे ! वह दुर्जनी वृद्धा (भारुण्डा) मेरी तर्जना करे, कोई अपवाद रूपी राहु मेरे कुलयश रूपीचन्द्र को ग्रास करे तो करने दो, किन्तु मेरे नेत्र-मधुकर मुरारि (श्रीकृष्ण) के मुख कमल के दर्शन रूप मकरन्द पान करने का लोभ त्याग करने में असमर्थ हैं॥७४॥

श्रीकृष्ण-(चन्द्रावली के निकट आकर आनन्द पूर्वक)-हे रमणि ! तुम्हारे मुख की भ्रुकुटि-कटाक्ष लीला से पराजित होकर उज्ज्वल चन्द्रमा ने आकाश में जाकर शरण ली है। वहां भी अधीर होने के कारण तुम्हारे विजयी मुख की सेवा के लिये वह दन्त-पंक्ति के रूप में आकर प्रकट हुआ है। इसलिए तुम्हारा नाम चन्द्रावली प्रसिद्ध हुआ है॥७५॥

कुन्दलता-हे कृष्ण ! तुम्हारे वक्षस्थल की विशाल माला की मुक्तामणि में मेरी देवरानी चन्द्रावली प्रतिबिम्बित हो रही है। इसलिए वह गर्वीली होकर तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर रही है।

श्रीकृष्ण-(मन्द मुसकराते हुए) कुन्दलतिके ! तुम्हारी देवरानी कैसे लगी चन्द्रावली ?॥७६॥

कुन्दलता-हे गोकुल-युवराज ! गोवर्धन मल्ल तो इसका झूठा पति है, और आप हमारे सच्चे देवर हैं॥७७॥

चन्द्रावली-(आंखों के इशारे से मना करती हुई) धृष्टे ! कुन्दलता ही भ्रमर को आकर्षण करने वाली होती है॥७८॥

कुन्दलता-हे देवरजी ! यह निकुञ्ज-गृहिणी कहती है कि यह वृन्दावन-भ्रमर (श्रीकृष्ण) रसिक नहीं है, क्योंकि यह प्रफुल्ल पद्मालि (पद्मा की सखी चन्द्रावली) का मधुरस पान नहीं करता है॥७९॥

पद्मा-अरी, निराधार भ्रम-शंका करने वाली कुन्दलते ! ठहर, ठहर, वन-संचारी (वृन्दावन में विचरण करने वाले) भ्रमर (श्रीकृष्ण) को विशाखा सहचरी (शाखा-रहित झिंटी पुष्प) श्रीराधा ही सुलभ होती है। अमृत (जल) में उत्पन्न होने वाली पद्मालि (कमल श्रेणी अथवा पद्मा की सखी) चन्द्रावली कभी सुलभ नहीं हो सकती। (अर्थात् श्रीकृष्ण को विशाखा की सखी श्रीराधा तो सुलभ है, किन्तु मेरी सहचरी चन्द्रावली उनके लिए दुर्लभ है)॥८०॥

कुन्दलता-हे चन्द्रावलि ! तुम्हारी अभिलाषा को मैं जानती हूँ, वृथा लज्जा क्यों कर रही हो ? तुम अपने पीनोन्नत स्तनबन्धु हारके द्वारा श्रीहरि का वक्षस्थल अलंकृत

करो ॥८१॥

चन्द्रावली (असूया पूर्वक) कुन्दलतिके ! तुम ही अपने कण्ठ के हार द्वारा हरि को अलंकृत करो ना ?

कुन्दलता-माधव ! चन्द्रावली की कर्णलता को गुच्छ से शोभित करो-उसके कर्णभूषण के साथ अपना कर्ण भूषण संलग्न करो।

चन्द्रावली-सखि ! प्रियजन को देखने के लिए अति उत्कण्ठित ब्रजेन्द्रनन्दन के मार्ग में तुम रुकावट मत बनो ॥८२॥

कुन्दलता-हे सखि ! तुमसे अधिक प्रिय उनको और कौन है ?

पद्मा-हे राधा-सखि कुन्दलता ! चुप रहो तुम ॥८३॥

श्रीकृष्ण-हे कमलनयनि ! तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे हृदय को कभी बाधा स्पर्श नहीं करती, श्रीराधा ही हृदय पर आक्रमण कर अवस्थान करती है। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण शंकित हो उठते हैं कि मैंने क्या कह दिया ? क्योंकि वह राधा के स्थान पर बाधा और बाधाके स्थान पर राधा कह गये थे। अर्थात् कहना तो यह था कि तुम्हारी अनुपस्थिति में भी राधा मेरे हृदय को स्पर्श नहीं करती, वरन् बाधा ही मेरे हृदय को आक्रमण करती रहती है ॥८४॥

पद्मा-महापुरुष कभी झूठ नहीं बोलते हैं। (पर्दे के पीछे से आवाज आती है)-हे कुन्दलते ! क्या तुम वास्तव में यह नहीं जानती हो कि गोवर्धनमल्ल गोवर्धन पर्वत के समान कठोर है ? ॥८५॥

कुन्दलता-हाय ! हाय !! रणचण्डि भारुण्डा क्रोध से उग्रमूर्ति धारण कर रही है।

चन्द्रावली-(भयभीत होकर) सखि पद्मे ! वृद्धा (भारुण्डा) व्याघ्र की भांति गर्जना कर रही है, चलो चलें यहां से।

(चन्द्रावली पद्मा के साथ चली जाती है)

कुन्दलता-मैं भी गोकुलेश्वरी यशोदा के पास जा रही हूँ ॥८६॥

(ऐसा कहकर वह भी चली जाती है)

श्रीकृष्ण-(आगे जाकर उत्कण्ठा पूर्वक) अहो ! काम-क्रीड़ा के अभ्यास से स्वच्छन्द विशाखा की कटिदेश से गिरती हुई मेखला की सुन्दर ध्वनि आज कामदेव के धनुष की बार-बार टंकार की भांति मेरे मन में भ्रांतिमय भय उत्पन्न कर रही है। (बायीं ओर देखकर) हे सखे ! कुन्दलता सत्य कह रही है, क्योंकि आज श्रीराधा का माधुर्य अनुभूत नहीं हो रहा है। मैं तो माता-यशोदा के पास जाता हूँ। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण चले जाते हैं) ॥८७॥

पौर्णमासी, गार्गी, रोहिणी आदि के साथ यशोदाजी प्रवेश करती हैं।

यशोदा-हाय ! सखि रोहिणि ! न जाने लाला अब तक क्यों नहीं आया ? ॥८८॥

(कुन्दलता आती है)

कुन्दलता-(हंसते मुखसे) माता ! चिन्ता मत करो। वह (श्रीकृष्ण) सुविमानों में चढ़ी आकाश में विचरण करने वाली सुर-रमणियों के हास्यरूप पुष्प वर्षण से आराधित होने के कारण देर कर रहा है। (पक्षान्तर में-विमाना लम्बिनी अर्थात् मान रहिता, अम्बरचारिणी अर्थात् सुन्दर वसन-भूषणों से भूषित, वृन्दारक-रमणियों अर्थात् मनोहर रमणियों की हास्य रूपी पुष्प वर्षा से आराधित हो रहे हैं-अतः उन्हें आने में देर हो रही है) ॥८९॥

रोहिणी-मैंने भी एक दिन देखा कि राधा तथा चन्द्रावली-इन दोनों कुमारियों की सुन्दरता को देखकर सुररमणियां या अप्सराएं भी मलिन मुख हो गयी थीं ॥९०॥

यशोदा-हे भगवति ! नवमालिका चन्द्रावली और माधवी राधा, ये दोनों अपने गुण सौरभ्य से मेरी समस्त आशाओं को परिपूर्ण करती हैं, तो भी इनमें छोटी जो राधा है, वह अपने सौन्दर्य से मेरे नेत्र-भ्रमरों को कृष्ण की भांति विशेष आनन्द प्रदान करती है ॥९१॥

पौर्णमासी-गोकुलेश्वरि ! सब गोकुलवासियों का यही अभिमत है।

गार्गी-कुन्दलते ! तुम प्रतिदिन यशोदाजी के घर श्रीराधा को क्यों ले जाती हो ? ॥९२॥

यशोदा-भगवति ! दुर्वासा मुनि ने श्रीराधा को वर दिया था कि तुम जो व्यंजन बनाओगी, वह अमृत तुल्य होगा। उसका जो भोजन करेगा, वह दीर्घायु होगा ! इसलिए मैं ही राधा को अपने घर बुलवाती हूँ।

पौर्णमासी-गोकुलेश्वरि ! श्रीकृष्ण की शंका कर जटिला तो दुखित होती है ॥९३॥

यशोदा-(हंसते हुए) दुग्ध मुख (स्तनपायी) बालक में भला शंका का अवकाश कहाँ है ?

कुन्दलता-(धीरे से) रानी यशोदा का पुत्र सचमुच अभी दुग्ध मुख है, क्योंकि उसने गोवर्धन पर्वत को खेलने की गेंद ही बना लिया था।

पौर्णमासी-(सामने देखकर हर्ष पूर्वक) अहो ! सामने देखो, व्रजराज गृहिणी (यशोदा) रूप खान से समुत्पन्न कृष्णरूप नीलमणि ब्रह्माण्ड-मण्डल के मुकुट में जड़ित होने की योग्यता प्रकाश कर शोभित हो रही है-(अर्थात् श्रीकृष्ण आ रहे हैं)।

(श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-मैया ! तुम अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को पोंछो, मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ ॥६४॥

रोहिणी-(दीपावली से निर्मञ्छन करके) हे वत्स ! तुम्हारी माता ने गौओं के आने के मार्ग में नेत्र बिछाकर जैसे-तैसे अत्यन्त दीर्घ दिन के अन्तिम दो प्रहर काटे हैं। तुम इस स्नेह-वत्सला माता की गोदी में आकर इसे आनन्द रस से अभिसिंचित करो। तुम ही एकमात्र इसके प्राण स्वरूप हो ॥६५॥

श्रीकृष्ण-(यशोदा की गोद में मस्तक रखकर) मैया ! मुझे मणि जटित अलंकार दो न। (ऐसा कहकर बाल्यभाव प्रकाशित करने लगते हैं)।

पौर्णमासी-हे कृष्ण ! गौओं के खुरों से उड़ती हुई धूलि के कणों से तुम्हारी गैरिकादि धातुओं से विरचित तिलकावली ढक रही है। इसलिए तुम्हारी माता यशोदा अपने स्तन कलशों से क्षुरित स्नेह मधुर परम पवित्र दुग्धधारा से उसे धोकर तुम्हारा नव अभिषेक कर रही है ॥

कुन्दलता-(परिहास पूर्वक) कृष्ण ! महारानी यशोदा का तुम स्तनामृत पान करो, क्योंकि तुम कुञ्ज भवन में बहु-केलि-प्रसंग पाकर (अनेक वधुओं के साथ केलि करके) अत्यन्त थक कर आये हो ॥६६॥

यशोदा-पुत्रि ! तुम क्यों हंसी कर रही हो ? अभी इसकी कौमार अवस्था नहीं आयी, फिर स्तनपान करने में क्या दोष है ?

कुन्दलता-भगवति ! महारानी ! तुम सत्य कह रही हो, यह आज भी बालामण्डल (बालक समूह-पक्षान्तर रमणि समूह) के साथ महारास क्रीड़ा करके आया है।

यशोदा-हे भगवति ! महारास किसे कहते हैं ? (श्रीकृष्ण लज्जापूर्वक झुकुटी टेढ़ीकर कुन्दलता को देखने लगते हैं)।

पौर्णमासी-(मन्द मुसकराते हुए) गोपेश्वरि ! वह एक प्रकार की नृत्यलीला है।

कुन्दलता-(श्रीकृष्ण के कान में) तृष्णातुर चकोरी पिंजड़े में बन्द होकर बहुत काल से सन्तप्त हो रही है। अतः हे तारापति ! (राधानाथ !) शीघ्र अशोक कुञ्ज में किरणों (चरणों) को प्रसारित करो। श्रीकृष्ण नेत्र-संकेत से स्वीकृति दिखाते हैं ॥६७॥ (पर्दे के पीछे से आवाज आती है)-हे वत्स ! तुम्हारा मुखचन्द्र देखे बिना हमारा हृदय अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है। अतः तुम शीघ्र आकर आलिंगन रूप शीतल चन्दन-लेप प्रदान करो।

श्रीकृष्ण-सामने मेरे कल्याण-अभिलाषी पिता श्रीब्रजराज

विद्यमान हैं। मैं चलकर उन्हें आनन्दित करूँ-(ऐसा कहकर यशोदादि के द्वारा आवृत होकर श्रीकृष्ण चले जाते हैं) ॥६८॥

कुन्दलता-(भ्रमण करती हुई) कैसा सौभाग्य है ? ललिता श्रीराधा को वकुल-वन में ला रही है। (इतने में ललिता के साथ श्रीराधा वकुल वन में प्रवेश करती हैं)।

श्रीराधा-अरी ललिते ! आज की इस रात्रि की प्रशंसा करो। जिसमें तुम सबकी कोई एक सुखाकांक्षा अंकुरित हो रही है ॥६९॥

ललिता-राधे ! रञ्जन करने के कारण ही रात्रि का एक नाम 'रजनी' है।

कुन्दलता-(आगे आकर) ललिते ! आज रजनी के प्रारम्भ में तुम सबने मन्द-हास्ययुक्त कटाक्ष-कुवल्लो से श्रीकृष्ण की अर्चना नहीं की है।

श्रीराधा-(रोमांचित होकर) वह कृष्ण कौन हैं ? जिसका नाम मेरे कानों का अतिथि बनकर उन्मत्तता उत्पन्न कर रहा है ? ॥७०॥

कुन्दलता-सखि ! अलौकिक वस्तु का यह स्वभाव है कि उसका सर्वदा उपभोग करने पर भी ऐसा अनुभव होता है कि पहले इसका कभी भोग नहीं किया।

ललिता-कुन्दलते ! केवल लोकोत्तर वस्तु का ऐसा स्वभाव नहीं है, जिसका जिस भी वस्तु में गाढ़ानुराग होता है, उसके लिये वही नव नवायमान होकर प्रतीत होता है ॥७१॥

श्रीराधा-ललिते ! मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर अन्य बात क्यों चला रही हो ?

ललिता-हे सखि ! नव जलधर समूह के अहंकार को विनिन्दित करने वाली देह-कांति वाला कोई व्रजेन्द्रकुल नन्दन नवयुवक शोभित हो रहा है। उसकी वंशी ध्वनि स्थिरचित पतिव्रता रमणियों की नीविवन्ध-ग्रन्थि को मोचन करने में विजयी है ॥७२॥

श्रीराधा-(अश्रुपूर्ण नेत्रों से) कुन्दलते ! जो मेरे कानों का अतिथि हुआ है, वह क्या क्षणकाल के लिए भी मेरे नेत्रों का पथिक नहीं हो सकता ? ॥७३॥

कुन्दलता-हे तृष्णाकुले ! कल ही तो सन्ध्या समय विशाखा ने तुम्हारे साथ उसका मिलन कराया था।

श्रीराधा-सखि ! सुन्दर बात का स्मरण कराया है तूने। एक बार प्रिय सखी के द्वारा बिजली की कौंध की भांति गोकुल युवराज का दर्शन मैंने किया था, जिससे मुझ हतभागिनी के नेत्र चमत्कृत हो उठे थे ॥७४॥

(इतने में श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-गौरैया-पक्षियों की मधुर कलध्वनि को कलंकित

करने वाले ललिता के सुन्दर कंकणों की झंकार कानों में आ रही है। वह मेरे चित्त में वेतसी-निकुञ्ज के संगम रस का सञ्चार कर रही है। (फिर कानों को ऊँचा उठाते हुए पुलकित होकर) यह तो श्रीराधा की किंकिणि झंकृति है, जो मेरे हृदय में प्रवेश कर नाना शिकार उत्पन्न कर रही है। वह आकाश में माधुर्य लहरियों से युद्ध मत्तता से उत्पन्न सरस सारसों के शब्दों को भी स्तम्भित कर रही है ॥१०५॥

श्रीराधा-(चमत्कृत होकर) अहो ! यह अपूर्व कौन विश्वकर्मा है जो मरकत मणि की श्यामल-शोभा के द्वारा गोष्ठ-भवन को परिपूर्ण कर रहा है ? एक ही साथ दीर्घ कटाक्ष-छटा रूप छेनी के द्वारा सैंकड़ों रमणियों के कुल धर्म रूप पाषाण को भेदन कर रहा है ? ॥१०६॥

ललिता-यही तो तुम्हारे प्राणनाथ हैं।

श्रीराधा-(उन्माद पूर्वक) हे कृशोदरि ! क्या यही गोप रमणि-कुमुदनियों के चन्द्रमा हैं ? गोकुल में शोभित युवराज्य-उत्सव क्या यही हैं ? क्या यही मेरे मनरूपी सारिका के विनोदकारी बसन्त हैं ? जो मेरे नेत्रों को अमृत लहरियों से सिंचित कर रहे हैं ॥१०७॥

श्रीकृष्ण-(आश्चर्य पूर्वक) यह कौन सी चमत्कार विद्या है जो बार-बार रस लहरियों से मेरे हृदय की तृष्णा को विस्तारित कर रही है ? ठीक, जान लिया मैंने यह तो विस्तारित अपांगलीला माधुर्य-परिवाहिनी कोई अनिर्वचनीय कल्याण-वापी है ॥१०८॥

(पुनः लक्ष्य करके) हां, सत्य है, क्योंकि इसमें रोमावली रूप शैवाल मञ्जरी शोभित हो रही है और युगल स्तनरूप चकवे एक साथ विचरण कर रहे हैं। इसमें दो कर-कमल, दो चरण-कमल, और एक मुख कमल-ये पाँच कमल दो भुजारूप मृणालों में विराजमान हैं। अति चंचल नेत्ररूप युगल मीन इसमें क्रीड़ा कर रहे हैं। आज ब्रज में परमपवित्र अनुराग-जल से परिपूर्ण यह राधारूप

वापी शोभित हो रही है ॥१०९॥

श्रीराधा-न जाने क्यों मेरा मस्तक घूम रहा है ? अपने-हाथों का सहारा दे इसे।

ललिता-शान्त रहो और धैर्य धारण करो तुम राधे ! (ऐसा कहकर श्रीराधा का हाथ अपने स्कन्ध पर धारण करती है) ॥११०॥

श्रीकृष्ण-(कुछ निकट आकर) हे राधे ! तुम्हारे कान्तिपूर्ण मुखचन्द्र को देखकर चन्द्रमा लज्जित हो गया है। वह मानो तुम्हारे मुख की शोभा को प्राप्त करने के लिए क्षीण होता हुआ गंगा की तरंगों में स्नान कर महादेव की जटाओं में अवस्थित होकर तपस्या कर रहा है ॥१११॥

(ऐसा कहकर आगे बढ़ने लगते हैं)

श्रीराधा-(नेत्र-संकेत से श्रीकृष्ण को दिखाकर) ललिते ! तुम मेरी रक्षा करो।

श्रीकृष्ण-? हे प्रिये ! तुम्हारे अत्यन्त कञ्जलांजित नेत्र-कटाक्षों के द्वारा यह कृष्ण वशीभूत हो रहा है, नेत्र-मीलन से वह म्लानता को और नेत्रोन्मीलन से प्रफुल्लता को प्राप्त कर रहा है।

श्रीराधा-(गद्गद स्वर से) कुन्दलते ! इस सुन्दर-शिरोमणि को तुम निवारण करो, क्योंकि मैं मन्द भागिनी गुरुजन के पराधीन हूँ ॥११२॥

(जटिला प्रवेश करती है)

जटिला-अरे महामोहना ! तुमने समस्त गोकुल-वालाओं को धर्मपथ से भ्रष्ट कर दिया है। मेरे पुत्र के पुण्य-प्रताप से केवल एक मेरी वधू (राधा) बची थी। अब गोकुल में सती नाम लेने को एक को तो तुम छोड़ दो। (ऐसा कहकर जटिला ललिता और कुन्दलता के साथ श्रीराधा को लेकर चल देती है) ॥११३॥

श्रीकृष्ण-अहो ! प्रिया तो चली गयी है, अब मैं भी गौओं को एकत्र करने के लिए जाता हूँ ॥११४॥

(सब वहां से चले जाते हैं)

इस प्रकार “सायं-उत्सव” नामक प्रथम अंक समाप्त हुआ ॥११॥

दूसरा अंक

(अब वृन्दा आकाश मण्डल को देखती हुई प्रवेश करती है)-

वृन्दा-अहो ! स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आज दैव योग से रात्रि के बीतने का समय हो गया है, क्योंकि निशापति चन्द्रमा अपनी कान्ति को छुपाकर वारुणी मदिरा पानकर (पश्चिम दिशा का सहारा ले) नीचे गिरा

जा रहा है। गुरु वृहस्पति लघुता प्राप्त कर अत्यन्त निस्तेज हो गये हैं। समस्त नक्षत्र परिवार भी क्षीण होकर तिरोहित होते जा रहे हैं ॥११॥

(घूमकर) अहो ! रात्रि के अन्त में दधि मंथन विनोद से उत्पन्न गागरियों का यह अति गम्भीर शब्द आज स्वर्गपुरी के प्रकोष्ठों का अतिक्रमण कर देवताओं को

समुद्र-मन्थन उत्सव का स्मरण करा रहा है ॥२॥

(सामने देखकर) अहो ! देखो, यह मालती दधि-मन्थन कर रही है। बार-बार मन्थन डोरी का आकर्षण और विकर्षण करने से इसके दोनों हाथ क्रमशः संकुचित और प्रसारित हो रहे हैं। इसके कंकणों के शब्द के साथ गागरियों का गम्भीर शब्द भी मिलित हो रहा है। चारों ओर उछलते हुए दधि-फेन राशि के बिन्दुओं से घर का आंगन चित्र-विचित्रित हो रहा है ॥३॥

पार्श्व (बगल) में देखकर मन्द मुसकराते हुए-अहो ! देखो, अन्धकार-पुञ्ज-विस्तार के हट जाने पर अति दुखिता यह पाली अपने मुखको ढककर भयभीत होकर कुञ्ज से गोष्ठ को जा रही है। शीघ्रता से जाने में इसका मस्तक तिरछा लटक रहा है, खुली हुई वेणी इसके कन्धों पर पड़ी हुई है। नीचे मस्तक कर धीरे-धीरे चरण रखते हुए और चारों ओर नेत्रों को घुमाते हुए जो जा रही है, इससे यह अपने रात्रि-विलास को व्यक्त कर रही है ॥

(फिर दूसरी ओर देखकर, आश्चर्य पूर्वक) अहो ! यह श्यामला गोकुल की ओर जा रही है। श्रीकृष्ण के नाभिकमल के चिर साथी पीताम्बर को यह अपनी कमर से लपेटे हुए है। उनके वक्षस्थल के श्रीवत्सचिह्न के साथी परमप्रिय मनोहर हार को भी धारण कर रही है। श्रीकृष्ण के मकराकृति कुण्डल इसने अपने कानों में पहन रखे हैं। इसके कपोलों पर श्रीहरिकी हस्त-रचित पत्रावली भी शोभित हो रही है ॥४॥

(दूसरी ओर देखकर खेद पूर्वक) अहो ! यह पद्मा विप्रलब्धा (हताश) होकर अपने घर लौट रही है। हाय ! इसकी कबरी शिथिल नहीं हुई है। इसकी विम्बाधर-लाली भी विकृत नहीं हुई है। मस्तक की पत्रावली रचना विन्दुमात्र भी नहीं मिटी है। इसके मुख की कान्ति विषाद पूर्ण हो रही है ॥५॥

(पर्दे के अन्दर से पद्मा सखी की आवाज आती है) हे कृष्ण ! आज जब मल्लिका-कुसुमावली प्रस्फुरित हो रही थी, तब मेरी सखी चन्द्रावली केलि-कुञ्ज में प्रफुल्लित हो उठी थी। परन्तु जब शेफालिका (हारसिंगार) के फूल गिरने लगे तब तो मेरी सुकुमार अंगी सखी पृथ्वी पर गिर पड़ी। जब प्रभात के समय कुमुदावली मुंदने लगी, तब युवति ने हताश होकर अपने नेत्र मूंद लिए। इससे अधिक और मैं क्या कहूँ ? प्रणाम के छल से तुम अब और उपहास मत करो ॥६॥

वृन्दा-निश्चय ही पद्मा सखी का पद्मनाभ श्रीकृष्ण के प्रति यह तिरस्कार युक्त वाक्य है।

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है) हाय ! मैंने ज्वलन्त

अंगारों के समान चिन्ता से हृदय में सन्तप्त होकर पृथ्वी पर ही जागते-जागते जैसे-कैसे रात्रि बितायी है।

वृन्दा-आश्चर्य ! भगवती पौर्णमासी सामने आ रही है।

पौर्णमासी-(प्रवेश पूर्वक) अहो ! वन देवी वृन्दा सामने उपस्थित है, इसके पास चलूँ ॥

वृन्दा-(प्रणाम करके) भगवति ! आपकी चिन्ता का अब क्या कारण है ?

पौर्णमासी-पुत्रि ! मथुरा नगर से आये हुए मन्त्रि-चूड़ामणि उद्धव ने हमसे जो कहा है, उसे तुम सुनो- ॥७॥

उसने कहा है-भोजकुल के कलंक दुष्ट राजा कंस ने अरिष्ट और केशी नाम के दोनों दैत्यों को सादर बुलवाकर इस प्रकार आदेश दिया है-हे सखाओ ! कुमारियों का अपहरण करने वाली पूतना नन्द के गोकुल में किसी एक दिव्य बालक के द्वारा मार दी गयी है-ऐसी किंवदन्ती फैली हुई है। उस दिव्य बालक कृष्ण की परम-आत्यन्तिकी सम्पत्ति का मूल कारण और मेरी आत्यन्तिकी विपत्ति की मूल कारण स्वरूपा है वह कुमारिका राधा, जो उसी गोकुल में निवास कर रही है-ऐसा मैं समझता हूँ। इसलिए अब गोकुल को वृन्दावन नाम से पुकारा जा रहा है। तुम जाकर दोनों यत्नपूर्वक इसका सब रहस्य पता करो ॥८॥

वृन्दा-फिर क्या हुआ ?

पौर्णमासी-फिर केशी दैत्य के द्वारा उस कंस ने श्रीराधा-माधव का अद्भुत प्रभाव सुना है। केशी के विश्वास भरे यथार्थ निवेदन को सुनकर वह कंस स्वयं श्रीराधा को आग्रह पूर्वक अपहरण कर ले जाने के लिए उद्यत हो उठा।

वृन्दा-(भीत होकर) फिर अब ?

पौर्णमासी-इधर फिर अरिष्टासुर ने कंस को श्रीराधा के विवाह हो जाने का प्रवाद निवेदन किया। तब कंस ने अपने सर्वोत्तम सुहृत् शंखचूड़ नाम के दुष्ट यक्ष को कुमारी श्रीराधा के हरण के लिए नियुक्त किया है।

वृन्दा-भगवति ! आपकी चिन्ता ठीक है। यदि वह दुष्ट श्रीराधा पर आक्रमण करता है, तो त्रिलोकी इस दुःख से सन्तप्त हो उठेगी ॥९॥

क्योंकि श्रीराधा अपने अनन्त गुण परिमल से समस्त दिशाओं को आनन्दित कर सर्वोपरि शोभा को प्राप्त कर रही है। सब ही कुमारियां यदि दुष्टजनों के संस्पर्श से तप्त होती हैं, तो किसका मन दुःखी न होगा ? अधिक क्या कहूँ मैं ? चित्रा नाम्नी तारा दुष्टजन शनि के द्वारा

आक्रान्त होकर सारे जगत् के लिए दुःखदायिनी हो जाती है—(चेतना की रक्षा करने वाली चिन्ता ही तो श्रीराधा है) ॥१०॥

(भयभीत होकर प्रवेश करती हुई)

कुन्दलता-भगवति ! आश्चर्य है आश्चर्य है।

पौर्णमासी-क्या आश्चर्य ?

कुन्दलता-मैंने देखा कि गोवर्धनमल्ल के गृहप्रान्त में सूर्यदेव उदय हो रहा है ॥११॥

वृन्दा-(आनन्दपूर्वक) भगवति ! चिन्ता मत करो, श्रीराधा की दीर्घकालीन आराधना से प्रसन्न होकर और अपने मित्र श्रीवृषभानु के प्रति अनुराग रखने से सूर्यदेव श्रीराधा की रक्षा के लिए आये हैं।

पौर्णमासी-वह सूर्य नहीं है, परन्तु कंस का भेजा हुआ यक्ष ही होगा।

कुन्दलता-नेत्रों में चौंधा डालने वाली किरणों के कारण वह देखा भी नहीं जा रहा है, अतः यक्ष की सम्भावना नहीं लगती ॥१२॥

पौर्णमासी-वह किरण मण्डल सांक्रामिक (प्रतिबिम्ब) है, वह स्वाभाविक नहीं।

कुन्दलता-कहां से किसलिए प्रतिबिम्बित हो रहा है ?

पौर्णमासी-अपनी चूड़ामणि के कारण !

वृन्दा-यक्ष को यह महारत्न कहां से प्राप्त हो गया ? ॥१३॥

पौर्णमासी-कुबेर के महाकोण-मण्डल के रक्षकों का अध्यक्ष है वह। उसने रत्नों के आधार रूप प्राण-धारक उस मणि का अपहरण कर लिया है।

वृन्दा-आर्ये ! आज रविवार है, श्रीराधा पूजा के लिए सूर्यमण्डल में अवश्य जायेगी। आप जाकर उसे रोको, मत जाय वहां ॥

कुन्दलता-वृन्दे ! वह तो बहुत देर पहले ही घर से वहां चली गयी है।

पौर्णमासी-कुन्दलते ! तब तो तुम शीघ्र ही किसी प्रकार श्रीकृष्ण के पास श्रीराधा को ले जाओ और मैं श्रीबलदेव को लाने के लिए जा रही हूँ ॥१४॥

(ऐसा कहकर पौर्णमासी वृन्दा के साथ बाहर चली जाती है)—यह विष्क्रम्भक है अर्थात् भावी दृष्य की सूचना है।

कुन्दलता (लौटकर) अहो ! जटिला, ललिता और विशाखादि के द्वारा परिवेष्टित होकर श्रीराधा इधर ही आ रही है ॥

(श्रीराधा यथा निर्देश प्रवेश करती हैं)

श्रीराधा-(मन ही मन) अरे हृदय ! तुम उत्कण्ठा से

अब तपायमान मत होओ। यहां तुम्हारे लिए प्रिय दर्शन (श्रीकृष्ण-दर्शन) नितान्त दुर्घट है ॥१५॥

कुन्दलता-राधे ! मंगलमय समय में तुम आयी हो।

जटिला-(क्रोधपूर्वक) चपले ! 'राधे-राधे'—ऐसा स्पष्ट मत बोल। ऐसा सुनकर कृष्ण यहां आ जायगा।

ललिता-(मुसकराते हुए) आर्ये ! तुम ठीक कह रही हो।

जटिला-ललिते ! सूर्यमण्डल लेपने के लिए मैं पहले जाती हूँ। (ऐसा कहकर जटिला चली जाती है) ॥१६॥

श्रीराधा-कुन्दलते ! तुम सबके पक्ष में दुर्लभ-दर्शन तुम्हारे देवर (श्रीकृष्ण) अब कहां हैं ?

कुन्दलता-अरी लोलुपे ! तुम तो दिन-रात उसके साथ क्रीड़ा करती रहती हो, फिर भी तुम इस प्रकार उत्कण्ठित क्यों हो रही हो ? ॥१७॥

श्रीराधा-सखि ! इस प्रकार के उपहास से क्या लाभ होगा ? तुम सब धन्या हो, क्योंकि निरन्तर अबाधरूप से नेत्र-पुटों से बार-बार वह आश्चर्य-अमृत राशि पान करती रहती हो। मैंने तो लेशमात्र भी कोई पुष्प नहीं किया, क्योंकि उनकी कथा का श्रवण मात्र भी मेरे लिए दुर्लभ हो रहा है।

कुन्दलता-हे राधे ! अमृत सागर में गोता लगाने वाले व्यक्तियों का व्यवहार इसी प्रकार तृष्णा युक्त हुआ करता है ॥१८॥

श्रीराधा-अरी ! परदुखानभिज्ञ (पराये दुःख को न जानने वाली) ! यह बात सत्य बता, जिस मुहूर्त में मुझे स्वप्न में भी उनका दर्शन प्राप्त होगा, वह पवित्र मुहूर्त कभी आयेगा ? अथवा दुर्लभ वस्तु की लालसा से क्या लाभ ? हे कुन्दलते ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, अनुकम्पा कर, अनुकम्पा कर। आज जिसके द्वारा उस श्यामला कौमुदी का तुमने पान किया है, उस पावन अपने वाम नेत्र का प्रान्त भाग मुझ क्षीण मन्दभागिनी दुखिया की ओर क्षणकाल के लिए अर्पण कर ॥१९॥

कुन्दलता-(असूयापूर्वक देखकर) तुम्हारी जैसी परपुरुष अभिलाषिणी नारी के साथ वाणी से भी आलाप करने का प्रयोजन नहीं। (ऐसा कहकर वह जटिला के पास दौड़कर जाती है) हे आर्ये ! तुमने सूर्य पूजा करने वाले ब्राह्मण को क्यों नहीं दूँडा है ?

जटिला-पुत्रि ! सत्य कहती हो, तुम मेरे प्रति प्रसन्न होकर एक विचक्षण ब्राह्मण को ले आओ।

कुन्दलता-जैसी आपकी आज्ञा। (ऐसा कहकर चली जाती है) ॥२०॥

ललिता-सखि राधे ! देखो, आर्या ने मण्डप का लेपन

कर दिया है। भगवान् सूर्यदेव की वंदना करो।

श्रीराधा-(सूर्य को प्रणाम करते हुए) देव ! अभीष्ट का दर्शन कराओ॥२१॥

(तदनन्तर मधुमंगल और कुन्दलता के साथ ब्राह्मण वेशधारी श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(सामने श्रीराधा को देखकर हाथ की ओट करते हुए)-मेरे मन रूप करीन्द्र के विहार के लिए जो सुरधुनी स्वरूपा है, मेरे नयन रूपी चकोरों के लिए जो शारदीय-विमल-चन्द्रप्रभा के समान है और मेरे वक्षस्थल रूप आकाश-मण्डल में जो अलंकार रूप मनोहर तारावली सदृश है, वह राधिका आज मैंने उत्कृष्ट मनोरथों से प्राप्त की है॥२२॥

श्रीराधा-(दूरसे श्रीकृष्ण को देखकर सखियों को कहती हैं)-हे सहचरि ! मदमत्त हाथी की भांति विभ्रमयुक्त, मेघकान्ति युक्त यह निर्भीक युवक कौन है ? ब्रजभूमि में कहां से आया है यह ? हाय ! यह चञ्चल नेत्र-कटाक्ष रूप तस्करों के द्वारा मेरे चित्त रूप कोषागार से मेरे धैर्यरूप धन का हरण कर रहा है। (फिर देखकर) हाय ! धिक्कार, धिक्कार, यह कैसा प्रमाद ? कैसा प्रमाद ? ललिते ! देखो, देखो। इस ब्रह्मचारी को देखकर मेरा आहत हृदय विमुग्ध हो रहा है। अतः मेरे लिए अग्नि प्रवेश ही इस महापाप का प्रायश्चित्त है॥२३॥

ललिता-सखि ! सत्य कह रही हो। शरीर का वर्ण एक सा होने के कारण समानता का भ्रम हो रहा है-(इसके शरीर का रंग श्रीकृष्ण के वर्ण के समान श्याम है न)।

श्रीराधा-(फिर देखकर) हे सहचरि ! निश्चय ही यह ब्राह्मण वेशधारी श्रीकृष्ण हैं, नहीं तो मेरी अन्तरात्मा द्रवीभूत क्यों हो रही है ? देखो, चन्द्रकान्त मणि की वेदी चन्द्रमा की किरण के बिना कभी स्वेद जल प्रसारित नहीं करती॥

विशाखा-सखि ! अति मधुर, यह सत्य ही श्रीकृष्ण हैं।

कुन्दलता-आर्ये ! शास्त्रदर्शी इस ब्राह्मण का दर्शन करो॥२४॥

मधुमंगल-जटिले ! सूर्य पूजा करने में मैं चतुर विद्वान हूँ। पहले तो लड्डू लाओ।

जटिला-अरे चञ्चल ब्राह्मण ! तुम हो कृष्ण के सखा। अतः तुम यहां से दूर चले जाओ। यह सौम्य श्यामवर्ण ब्राह्मण मेरी वधू को सूर्य-पूजा करायेगा॥२५॥

श्रीकृष्ण-हाय ! वृद्ध गोपिके ! राजपुर के विख्यात गोपराज के दुष्ट-स्वभाव असदाचारी पुत्र कृष्ण का यह

सखा है ब्राह्मण-बालक ? फिर तो इसे यहां से शीघ्र बाहर निकालो।

जटिला-आर्य ! आप शीघ्र सूर्यदेव की पूजा कराओ। श्रीकृष्ण-(भ्रुकुटि कटाक्ष से श्रीराधा का मानो आलिंगन कर) हे कल्याणि ! तुम्हारा क्या नाम है ?

जटिला-(विप्रवेशधारी श्रीकृष्ण के कान में) ऐसा मत पूछो।

श्रीकृष्ण-(आश्चर्य पूर्वक) अहो ! यह वही पुण्यवती है, जिसके पतिव्रत की कथा सुनी जाती है ?

जटिला-मेरी वधू ने ही एकमात्र गोकुल में ऐसी कीर्ति सुरक्षित की हुई है॥२६॥

श्रीकृष्ण-पातिव्रते ! ताम्र पुटी (ताम्बे की छोटी करछी) तुम ग्रहण करो। मैं मन्त्र पाठ करता हूँ॥

(श्रीराधा काँपते हुए वैसा करने लगती है)

श्रीकृष्ण-हे राधे ! एकान्त में तुम्हारी विरह राशि का भोगकारी मेरा दुःख तुम्हारे अधर का दर्शन करने से बढ़ गया है। अतः हे चञ्चलाक्षि कठिन हृदये ! क्षणमात्र कुटिल कटाक्षों का मुझे दर्शन कराओ "ॐ सवित्रे नमः"-सूर्यदेव को नमस्कार करो (पक्षान्तर में-हे राधे ! तुम्हारे कटाक्ष लवरूप सवित्र को मेरा नमस्कार है)।

जटिला-कुन्दलते ! यह ब्राह्मण-बालक कैसा मन्त्र-पाठ कर रहा है-ऐसा तो कभी नहीं सुना है मैंने ?

मधुमंगल-(जोर से हँसते हुए) हे वृद्धे ! तुम हो एक मूर्ख ग्वालिनी, केवल गाय भगाने वाले "री-री" शब्द को ही जानती हो। हमारे वेद मन्त्र को तुम क्या समझो ? सुनो, यह जो पाठ किया है, यह कौसुमेषवी शाखा के तीसरे वर्ग की ललना-शुभकरी ऋचा है।

(श्लेषार्थ-कौसुमेषवी अर्थात् कन्दर्प का कुसुमवाण। तृतीयवर्ग-धर्म-अर्थ काम में तीसरा अर्थात् जो काम है। वह ललना-शुभकरी है-रमणियों के लिए मंगलकारी है-कन्दर्प का कामवाण रमणियों के लिए शुभकारी है)॥२७॥

(सभी हँसने लगते हैं)

जटिला-(लज्जित होकर)-जो भी हो तुम अच्छी प्रकार से पूजा कराओ, जिससे मेरे पुत्र (अभिमन्यु) को कोटि गोएँ प्राप्त हों॥

श्रीकृष्ण-हे धन्ये ! प्रतिमा की पूजा तो हो गयी है। अब तुम श्रद्धापूर्वक गगन प्रकाशक पद्म बन्धु सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करो। (पक्षान्तर में-पीतवस्त्रधारी जीवन सखा मेरी अत्यन्त उदारता से प्रीतिपूर्वक पूजा करो)॥२८॥

(श्रीराधा सम्भ्रम का अभिनय करती हैं)॥२९॥

कुन्दलता-अब सूर्यदेव कन्याराशि का उपभोग कर रहे

हैं। अतः तुम प्रसफुटित कमल पुष्प के द्वारा मित्र सूर्य को अर्घ्य प्रदान करो। (पक्षान्तर में-कन्या-समूह के भोगकारी सम्मुख में उपस्थित सखा को हास्यरूप कमल के द्वारा मनोहर अर्घ्य प्रदान करो।

(श्रीराधा नेत्र-प्रान्त से श्रीकृष्ण को देखने लगती हैं)
श्रीकृष्ण-हे कल्याणि ! सूर्यदेव की यह पूजा सुन्दर विधिपूर्वक समाप्त हो गयी है। अब तुम रक्तवर्ण पुष्पांजली के द्वारा इष्टदेव को आनन्दित करो।

(श्रीराधा बन्धुक-पुष्पांजली देती हैं)
मधुमंगल-जटिले ! सुन्दर मीठे पक्वान्न की दक्षिणा दो, हम यह बात सरलता से कह रहे हैं।॥३०॥

श्रीकृष्ण-अरे पेटुक वाचाल ब्राह्मण-बालक ! ठहर जा। गोकुल वासियों की मित्रता प्राप्त करना ही मेरी दक्षिणा है।

जटिला-(हंसते हुए) ओ वटुराज ! मेरे घर पर चल, वहाँ तुम्हें मैं मनभाता भोजन कराकर मणिमय अंगूठी दान करूँगी।

मधुमंगल-(आनन्द पूर्वक) आर्ये ! ब्राह्मण को जब भोजन देने की तुम्हारी इच्छा हुई है, तब तो तुम सात पुत्रों वाली होवोगी।

श्रीकृष्ण-वृद्धे ! तुम इस ब्राह्मण-बालक को भोजन कराओ। मैं अब पौर्णमासी के पास जाकर गुरुदेव गर्गजी के आदेश को सुनाता हूँ।॥३१॥

कुन्दलता-कैसा आदेश ?
श्रीकृष्ण-उन्होंने माता पौर्णमासी को कहला भेजा है कि आपकी प्रेमपात्रा वृषभानुनन्दिनी पर महान विपत्ति आने की आशंका है। अतः उसको तुम कल्पतरु के समीप ले जाकर रक्षोघ्न-मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित कर दो।

कुन्दलता-(दुःख प्रकाशित करती हुई जटिला के कान में कहती है)-हे आर्ये ! सौभाग्यवश कल्पवृक्ष सामने विद्यमान है। अतः तुम जाकर भगवती पौर्णमासी को यहाँ भेजो। इस ब्राह्मण-बालक को भी ले जाकर भोजन कराओ। हम इस गर्ग शिष्य को कुछ समय के लिए यहाँ रोकती हैं।॥३२॥

(जटिला मधुमंगल को लेकर चली जाती है)
कुन्दलता-(हँसती हुई) राधे ! पारितोषक तो दो मुझे, मैंने तुम्हारे दुर्लभ मनोरथ की पूर्ति कर दी है।॥३३॥
श्रीराधा-(कुटिल कटाक्षपात करते हुए) कुन्दलते ! मेरा क्या मनोरथ ?

कुन्दलता-सखि ! भौंह टेढ़ी मत करो, मैं तो तुम्हारी सूर्याराधना की बात कह रही हूँ।

श्रीकृष्ण-कुन्दलते ! पद्मिनी-पति सूर्य की (पक्षान्तर में पद्मिनी नारी पति अर्थात् मेरी) पूजा तो समाप्त हो चुकी, अब मेरी दक्षिणा दिलवाओ।॥३४॥

कुन्दलता-राधे ! रवि-कार्याभिज्ञ (रतिकार्याभिज्ञ) आचार्य की तुम दक्षिणा द्वारा प्रीति सम्पादन करो (दक्षिणा होकर अनुराग द्वारा उसे प्रसन्न करो)।

विशाखा-(मन्द-मुसकराते हुए) कुन्दलते ! तुम दक्षिणा दान में पण्डित हो, अतः तुम ही दक्षिणा दो, क्योंकि यज्ञ में विशेष रूप से निपुण अपने देवर को पुरोहित बनाकर लायी हो। (श्रीराधा वामा नायिका है और कुन्दलता दक्षिणा नायिका है)।॥३५॥

ललिता-विशाखे ! आकृति से ज्ञात होता है-निश्चय ही पूजा कराने वाली कुन्दलता ने आचार्य की दक्षिणा दे दी है।

श्रीकृष्ण-ललिते ! यह मेरी भरजायी है, मेरी पूजनीया है, मैंने इसका आचार्यत्व नहीं किया है।॥३६॥

श्रीराधा-सखि ललिते ! तुमने तो सुन्दर रूप से पूजा पूर्ण करायी है। अब और अधिक विलम्ब क्यों कर रही हो ?

श्रीकृष्ण-श्रीराधा के क्रमशः विस्तारित कला विलास की अतिशयता कन्दर्प-बोधन को सुदृढ़ कर रहा है। वह राधिका संग क्षणदापति चन्द्र की भांति मेरी दृष्टि को आनन्दित कर रहा है।॥३७॥

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है)
हे पुण्डरीकाक्ष ! वियोग के कारण तुम्हारा मार्ग दुर्लभ हो रहा है।

श्रीकृष्ण-(दुःखपूर्वक उच्च स्वर में) अरे ! क्या दुर्लभ हो रहा है ?

(पर्दे के पीछे से)-यत्नपूर्वक ढूँढने पर भी गोपों को गौएँ नहीं मिल रही हैं।॥३८॥

श्रीकृष्ण-ललिते ! गौओं का अनुसन्धान कर एवं स्वयं वेश भूषा ठीक करके जब तक मैं नहीं लौट आता हूँ, तब तक प्रियतमा-राधा को रत्न सिंहासन पर बैठाओ। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण चले जाते हैं)।

ललिता-सखि ! आगे चरण बढ़ाओ।

श्रीराधा-ललिते ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, मैं तो अत्यन्त भयभीत हो रही हूँ। सखि ! सन्ध्या तो प्रायः बीत गयी है। गुरुजन मेरे चरित्र के विषय में आशंका करते हैं। मेरे विषय में अपवाद बहुत प्रचारित हो रहा है। मैं हूँ अत्यन्त सरला कुलवती। समस्त गोपिकाओं में सुहृत् तुम्हारे वयस्य अत्यन्त चंचल हैं। अतः मैं विनम्रता पूर्वक कहती हूँ कि मुझे तुम किसी निर्जन स्थान पर मत ले चलो।॥३९॥

कुन्दलता-राधे ! तुम्हारे अखण्डित पतिव्रत की बात मैं जानती हूँ, तुम अपने मुख से कुछ मत कहो।

विशाखा-(असूया पूर्वक) कुन्दलते ! तुम जैसी ऐसी और कौन रमणि है, जिसे तीनों सन्ध्याओं में वंशी आकर्षित करती हो ? ॥१४०॥

कुन्दलता-(परिहास पूर्वक हँसते हुए)-मैं उदार-चित्त से तुम्हें आशीर्वाद करती हूँ कि तुम गोपियों में अखण्डित पतिव्रता की भांति अवस्थान करो, जिससे समस्त माधुरी सारभूत वंशीध्वनि को सुनकर तुम्हारा मन धैर्य का त्याग न करे। (तब कल्पवृक्ष की ओर जाती है) ॥१४१॥

श्रीकृष्ण-(प्रवेश करते हैं) अहो ! मृगनयनी श्रीराधा ने कुटिल नेत्र-कटाक्ष-भणिंमारूप वीनस्वर का अधिक विस्तार कर मेरे चित्त मृग को बांध लिया है ॥१४२॥

श्रीराधा-(कान में) हे कुन्दलते ! इस गुञ्जामाला का सौभाग्य तो देखो। अरी गुञ्जामाला ! जगत् जानता है कि तेरे अंग बड़े कठोर हैं एवं तुम निरस हो। तुम्हारे बीच में आर-पार छिद्र है (जिसमें सुत्र पिरोया हुआ है), तेरे मुँह पर कालिमा है (गुञ्जा का मुँह काले रंग का होता है) फिर भी तुम अति गर्व पूर्वक श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर विहार करती हो। अहो ! प्रेम प्रेमपात्र व्यक्ति के किन-किन दोषों को आवृत नहीं कर देता ? ॥१४३॥

कुन्दलता-(धीमीस्वर में) राधे ! तुम्हारे कठोर उरोजमणि के द्वारा आक्रान्त होने पर यह तुच्छ गुञ्जामाला फिर कैसे टिक सकती है ? ॥१४४॥

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है)

अहो ! दनुज दमन श्रीकृष्ण के वक्ष रूप आकाश में अलौकिक राधानाम्नी मनोहर तारा (अनुराधा) जय प्राप्त कर रही है, जो अपनी कान्ति के द्वारा सत्ताईस लड़े मुक्ताहार को पराजित कर रही है। और तमनाशक चन्द्र-सूर्य को भी एक साथ निराकृत कर रही है ॥१४५॥

कुन्दलता-(पर्दे के पीछे झाँककर) वृन्दे ! तुम चन्द्र-सूर्य दोनों के निराकृत करने की बात कह रही हो, लगता है उस तारा (राधा) के माहात्म्य को तुम नहीं जानती हो। क्योंकि लाख सूर्यों को पराभूत काली कारी चन्द्रावली नाथ (श्रीकृष्ण) के ऊपर इसका पराक्रम स्पष्ट दीख रहा है ॥१४६॥

ललिता-विशाखा-कुटिल चरित्रे ! वृथा हास्य कर प्रियसखी-श्रीराधा को क्यों लज्जित करती हो ?

कुन्दलता-राधे ! लज्जा त्यागकर कुञ्जगृह में प्रवेश करो, तुम्हारा मंगल हो। अनंग समर में तुम्हारी जय हो एवं प्रातःकाल श्रीकृष्ण के सामने समस्त सहचरियां तुम्हारी विजय-कीर्ति गाथा का गान करें ॥१४७॥

श्रीकृष्ण-(मन्द मुसकराते हुए) अहो ! इस जगत् में शीतलता के आधार स्वरूप जितने मधुररस हैं, वे सब पान करने पर तृप्ति व्यक्ति की आन्तरिक तृष्णा को बुझा देते हैं, परन्तु श्रीराधा के वदनचन्द्र की कान्ति सुधाधारा बार-बार पान करने पर भी तृष्णा को अत्यन्त बढ़ाती ही जाती है ॥१४८॥

श्रीराधा-(कान-कान में) हे चञ्चलाक्षि ! मेरे मन में तब तक गुरुजनों का आन्तरिक भय रहता है और कुल मर्यादा का उदय रहता है, जब तक कमलनयन श्रीकृष्ण का डोलायाम मकरकुण्डलों से शोभित प्रफुल्लित कपोल युक्त मुखकमल मेरे नयन गोचर नहीं होता ॥१४९॥

कुन्दलता-हे सुन्दर ! इस रत्नसिंहासन पर राधिका को बैठाओ।

(श्रीकृष्ण ऐसा करने लगते हैं)

ललिता-सखीवृन्द सब तर्क करेंगी, अतः शंख निर्मित चूड़ियों का शब्द मत होने दो ॥१५०॥

(शंखचूड़ प्रवेश करता है लताओं की ओट में छिपकर)

शंखचूड़-गोवर्धन मल्लके द्वारा बताये लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह वही कुमारी रत्नसिंहासन पर विराजमान है। अतः अवसर पाकर मैं अपना कार्य पूरा करूँगा।

(लताओं में ही छिपा रहता है)

श्रीकृष्ण-प्रिये ! क्षणकाल के लिए मेरे वक्ष रूप इन्द्रनीलमणि पीठ को अलंकृत करो।

श्रीराधा-गोकुल युवराज ! आपके समान श्रेष्ठ पुरुषों के लिए कुलरमणियों का धर्मनाश करना उचित नहीं है ॥१५१॥

(पर्दे के पीछे से आवाज आती है) हा ! नातिनि राधे ! बहुत देर से तुम कहां चली गयी हो ?

श्रीकृष्ण-कुन्दलते ! यह मुखरा क्यों विलाप कर रही है ?

कुन्दलता-(हंसकर) हे मोहन ! जहां तुम्हारे समान निकुञ्ज नागर लीला-कटाक्ष लहरी का विस्तार करता है, वहां वृद्धाओं के विलाप का अभाव रह सकता है क्या ?

(मुखरा प्रवेश करती है। सामने श्रीराधा-माधव को देखकर मन-मन में कहती है)-

हा दुर्देव ! इस कृष्णरूप चन्दन वृक्ष को त्यागकर इस कल्पलता (राधा) का अरंड वृक्ष के साथ क्यों मेल कर दिया है ? (स्पष्ट कहती है) हे पुत्रि ! क्यों इस लम्पट-चूड़ामणि की लीला-कुरंगी बन रही हो ? ॥१५२॥

ललिता-(मिथ्या भाव में) आर्ये इस श्रीकृष्ण ने हम सबकी विडम्बना कर रखी है।

मुखरा-अरे नारि-चोर ! ठहर जा, ठहर।

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) यह वृद्धा तो अत्यन्त कठोर स्वभाव की है, छिप जाऊँ मैं यहाँ। (श्रीकृष्ण छिप जाते हैं)

मुखरा-(क्रोधपूर्वक) ललिते ! इस धूर्त को पकड़ ले। ललिता-हाँ ! अब क्यों भाग रहे हो ?

मुखरा-(सामने वाली कुञ्ज में भागती और तर्जना करती हुई)-भाग्यवश आज तुम मुझे मिले हो। अरे ! कुरंगावली भुजंग ! (कोटर के साँप ! पक्षान्तर में-कुञ्जावलियों के कामुक !) आज मिले तुम मुझे।

श्रीकृष्ण-हाय ! इस गाढ़ अन्धकार में इस अन्धी वृद्धा ने मुझे कैसे देख लिया ?

(मुखरा मस्तक झुकाकर बार-बार देखने लगती है)

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) निश्चय ही इस वृद्धा की दृष्टि आकाश-कुसुम की भांति है-अर्थात् अवास्तव है-इसे कुछ देखता नहीं है।

मुखरा-ओ ! माँ ! यहाँ तो महान अन्धकार है। (श्रीकृष्ण मन्द मुसकराने लगते हैं)॥५४॥

मुखरा-(दूसरी ओर जाकर) हाँ, अब तुमको पकड़ लूंगी। (शंखचूड़ को कृष्ण मानकर भयपूर्वक) रे धूर्त ! तुमने वराह नृसिंहादि अनेक अवतार धारण किये हैं-यह बात पौर्णमासी सत्य कहती है। अब तुम सूर्य के समान उज्ज्वल रूप दिखाकर मुझे डराकर भाग रहे हो॥५५॥

शंखचूड़-सौभाग्यवश विक्रममूर्ति इस चक्र-बालक श्रीकृष्ण को मैं नहीं दीखा हूँ। (ऐसा कहकर आगे बढ़ता है। उसे आता देखकर सब कहती हैं-आर्ये ! रक्षा करो, हमारी रक्षा करो।

मुखरा-(क्रोधपूर्वक) अरे श्यामल ! ऐसा काम करना तुम्हें उचित नहीं है॥५६॥

ललिता-हे बुद्धिहीन ! ऐसे कठोर व्यक्ति (शंखचूड़) को तुम श्रीकृष्ण समझ रही हो ?

शंखचूड़-अपने श्रेष्ठ बन्धु कंसराजा का मनोरथ सफल करने के लिए मैं इस पद्मिनी कुमारी (राधा) को सिंहासन सहित मस्तक पर उठाकर ले जाऊँगा। (ऐसा कहकर वह सिंहासन सहित श्रीराधा को उठाकर कुञ्ज से बाहर चला जाता है)।

सब सुध-बुध खोकर कहती हैं-हा कृष्ण ! कहां हो तुम अब ?॥५७॥

श्रीकृष्ण-(कुञ्ज से बाहर आकर विषाद पूर्वक)-हे सुन्दरि ! आज मैं असंख्य अभिलाषाओं से व्यग्र होकर तुम्हें इस शरद पूर्णिमा की परिमल से पूर्ण वृन्दावन की कुञ्जों में लाया था, परन्तु हाय ! प्रतिकूल विधाता शंखचूड़ का कपट आकार धारण कर कैसा साहस कर

तुम्हें यहाँ से ले गया? -(ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक श्रीकृष्ण हुंकार करते हुए घूमने लगते हैं) आर्ये ! भय मत करो, मैं तुम्हारे पास हूँ॥

मुखरा-(अश्रु प्रवाहित करते हुए) हे चन्द्र मुख ! तुम तो विजयलक्ष्मी के द्वारा स्वयं वरण किए गये हो।

श्रीकृष्ण-(विक्रम प्रकाशक शब्दों के साथ) रे, रे दुष्ट ! श्रीराधा के अपराधी तुम दुराचारी को जब तक मैं दण्ड नहीं देता, तब तक मुझे भारी दुःख रहेगा। सर्व प्रकार से धर्मनाशिनी मृत्युरूपा काल रात्रि तुम्हारी ओर भागी आ रही है, अब मैं क्या कर सकता हूँ॥५८॥

कुन्दलता-ललिते ! देखो-देखो, शंखचूड़ हताश होकर श्रीराधा को त्यागकर श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने का प्रयास कर रहा है।

(पर्दे में से आवाज आती है)-कहां तो अति विशाल तालवृक्ष की तरह उन्नत भुजाओं वाला एवं पर्वत की भांति विस्तृत वक्षस्थल युक्त यह अधम यक्ष, और कहां बाल-तमाल की भांति कोमल एवं कामदेव की भांति सुकुमार सुन्दरकान्ति यह बालक कृष्ण ! हाय ! इस बालक का और कोई यहाँ सहायक भी तो नहीं है। गोष्ठेश्वरि यशोदे ! मैं नहीं जानती कि तुम्हारी तपस्या का आज क्या परिणाम होगा ?-(यह सुनकर सब अचेत हो जाती हैं)॥६०॥

(पर्दे के बाहर पौर्णमासी आती है)

पौर्णमासी-पुत्रि ललिते ! दुखी मत होवो, इस दुष्ट खल रूप स्फुलिंग (चिंगारी) का विनाश होने को है। (पर्दे के पीछे से)-मोरपुच्छ चूड़ाधारी श्रीकृष्ण ने अपनी भुजादण्ड के बल से शत्रु के विकट शरीर को मर्दन कर डाला है तथा गर्वपूर्वक वन मण्डल में क्रीड़ा करते-करते उन्होंने अपने दन्तांकुर से उस कुटिलाकृति एवं भयंकर मस्तक वाले शंखचूड़ के मुकुट से स्वर्ण की प्रचण्ड-सूर्य किरण के समान उज्ज्वल रत्न को दण्ड रूप से आकर्षण कर लिया है॥६१॥

पौर्णमासी-सौभाग्यवश रत्न का आकर्षण करने के छल से श्रीकृष्ण ने उसके प्राणों का भी आकर्षण कर लिया है। अतः आज वृन्दावन के शृगालों का पारण-उत्सव सम्पन्न होगा-उसके शरीर को शृगाल भोजन करेंगे। (पुनः उधर हर्ष पूर्वक देखते हुए) देखो, देखो, वह यक्ष रक्षामणि रहित होकर काल के गाल में जा गिरा है॥६२॥

(फिर पर्दे में)-कमलनयन श्रीकृष्ण ने क्रीड़ा करते-करते मुष्टि-प्रहार से पापात्मा इस यक्ष को प्राण दण्ड दिया है और शान्ति प्रदान कर दी है॥६३॥

पौर्णमासी-(सामने देखते हुए आनन्द पूर्वक) अहो !

युद्ध में विकट आक्रमण का उद्यम करते हुए शत्रु को मारने में क्रोधावेश के कारण श्रीमधुसूदन की सुन्दर चूड़ा (कलंगी) भूमि पर गिर गयी है। वह अब स्वर्गवासी देवताओं द्वारा पुष्प वर्षा करने पर अभिसिंचित होकर हमारे नेत्रों को आनन्दित कर रही है॥६४॥

विशाखा-हे भगवति ! प्रातः स्मरणीय श्रीबलदेव को आगे करके सब सखा उपस्थित हो रहे हैं।

पौर्णमासी-अहो देखो ! पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उस मनोहर श्रेष्ठ मणि को श्रीबलराम को अर्पण कर रहे हैं॥

ललिता-देखो, सखाओं को विदा करके श्रीकृष्ण अकेले ही श्रीराधा के पीछे आ रहे हैं॥६५॥

पौर्णमासी-देखो, देखो, भयभीत श्रीराधिका से छुपकर मोरपुच्छ के मनोहर चूड़ाधारी श्रीकृष्ण हम सबके निकट आ रहे हैं। स्वेदकर्णों से उनका मुखमण्डल शोभित हो रहा है॥६६॥

(यथा निर्दिष्ट श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-अपने नेत्रों से कलिन्द पुत्री यमुना के कमलों को निन्दित करने वाली श्रीराधा मुझे देखकर-‘हे गोविन्द ! हे गोकुलेन्द्रनन्दन ! मेरी आज शीघ्र रक्षा करो’-इस

प्रकार आर्तस्वर करने लगी। मैं उस अधीर नयना श्रीराधा को कभी विस्मरण नहीं करूँगा।

पौर्णमासी-(आगे आकर) हे यशोदानन्दन ! तुमने आज हमारे चिन्ता-पर्वत को उखाड़ डाला है।-(ऐसा कहकर उसने श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण को आलिंगन कराया)॥६७॥

मुखरा-(दोनों हाथों से सादर श्रीकृष्ण का मुख पोंछकर) हे वीर ! तुम्हारी आराधिता राधिका आज भाग्यवश तुम्हारे द्वारा बचा ली गयी है। (मधुमंगल प्रवेश करता है)

मधुमंगल-प्रिय सखा कृष्ण ! श्रीबलराम ने इस श्रेष्ठमणि को श्रीराधा के लिए प्रदान किया है।

श्रीकृष्ण-मणियों में यह श्रेष्ठ है और कौस्तुभ के समान है। इसलिए यह है भी श्रीराधा के कंठभूषण योग्य।

ललिता-जैसी आपकी आज्ञा।

श्रीकृष्ण-आओ अब सब चलें, उस दुष्ट पर विजय की बात सुनाकर पिता-माता को आनन्दित करें। (सब चले जाते हैं)॥६८॥

इस प्रकार शंखचूड़ वध-नामक दूसरा अंक समाप्त हुआ॥२॥

तीसरा अंक

(वृन्दा के साथ आलाप करती हुई पौर्णमासी प्रवेश करती है)

पौर्णमासी-हाय ! रात्रि का अन्तिम मुहूर्त क्यों शेष हो गया ? देखो तो, सूर्यरूप शरभ (आठ पैरों वाला एक जन्तु विशेष जो सिंह को मार डालता है) के प्रकाश से उदयाचल को दूर से समुज्ज्वल देखकर चन्दन के पिण्ड के समान पीला पड़कर चन्द्ररूप सिंह भयभीत होकर अस्ताचल में प्रवेश कर रहा है॥१॥

वृन्दा-भगवति ! महासमुद्र मन्थन के समान गम्भीर कोलाहल सुन भयभीत होकर मैं आ रही हूँ, कहिए तो क्या बात है वह ?

पौर्णमासी-पुत्रि वृन्दे ! वह वृत्तान्त तुम्हारे कानों में नहीं पड़ा है क्या ?

वृन्दा-भगवति ! क्या वृत्तान्त है वह, बताओ तो।

पौर्णमासी-वृषासुर के वध को जानकर क्रोधित हुए पवन तुल्य केशीदानव के आने पर उसे भी श्रीकृष्ण ने अपूर्व पराक्रम से मार डाला था। अब कंस का आदेश

पाकर गान्धिनी पुत्र अक्रूर रथ पर चढ़कर गोष्ठ में आया है और नन्दभवन पहुँच चुका है। वह राजदूत सूर्य के उदय होते ही प्रातःकाल श्रीबलदेव के साथ श्रीकृष्ण को मथुरा ले जायेगा॥

वृन्दा-(क्षणकाल चुप रहकर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए व्याकुल होकर) हाय ! यदि अक्रूर श्रीकृष्ण को मथुरा ले जायेगा तो मैं किसके लिए वन में नवीन कुञ्ज की रचना करूँगी ? किसलिए उसमें सुशोभित पुष्पशय्या बनाऊँगी ? और फिर असमय में (ऋतु न होने पर भी) सुगन्धि संचार कर लताओं को प्रफुल्लित कराने की क्या आवश्यकता होगी ?॥२॥

पौर्णमासी-(दुःखी होकर) हा देव ! तुझे धिक्कार है। प्रभात होने के भय से उच्चस्वर से रोते-रोते और बार-बार अक्रूर पर क्रुद्ध होकर व्रजगोपियों के उत्सुक नयनों के जागते-जागते यह रात्रि क्षणकाल के समान बीत गयी है॥३॥

वृन्दा-(रोते हुए) हाय ! हाय ! यह अक्रूर रूप

मन्दराचल सुविस्तृत गोकुल रूप सागर को विशोभित कर भ्रान्त होकर श्रीकृष्ण रूप चन्द्रमा का हरण करने आया है ? हमें विरह-वेदना रूप कालकूट विष को दे रहा है ॥१४॥

पौर्णमासी-पुत्रि ! आओ, यहां से श्रीनन्दराज के नगर-द्वार पर चलें। (ऐसा कहकर घूमती हुई सामने देखती है और नेत्रों में अश्रुभर कर कहती है)-अहो ! यह तो नन्दपत्नि यशोदा विरह व्याकुल हो रही है। श्रीकृष्ण की यात्रा के लिए उत्कण्ठित होकर कोई मंगलाचरण नहीं कर रही है। उसकी बुद्धि भ्रमित हो रही है। वात्सल्य अनुरूप कोई मार्ग के लिए पाथेय या उपहार भी नहीं दे रही है। वह नेत्र जल से भूमि को पंकिल कर श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हुए निरन्तर रो रही है ॥१५॥

वृन्दा-भगवति ! क्या आपने शैव्या सखी की जल्पना सुनी है ?

पौर्णमासी-पुत्रि वह कैसी ?

वृन्दा-हे विमुग्धे ! लगता है कि आपने अभी तक घोष-पल्ली की (गोष्ठ की) करुणरसपूर्ण उस उच्च विलाप-ध्वनि को नहीं सुना है। क्योंकि अब तक आपने अपने मन को दधिमन्थन में दे रखा है। हे भगवति ! कंस राजा का पापी दूत श्रीकृष्ण के कान में कुछ कह रहा है और उनको मथुरा चलने के लिए व्याकुल कर रहा है ॥१६॥

पौर्णमासी-वत्से ! तुम तो शैव्या के विमोह के कारण व्याकुल हो रही हो, परन्तु श्यामला के विलाप की बात तुमने कुछ नहीं सुनी है।

वृन्दा-आप ठीक कह रही हो, उसे भी सुनाओ।

पौर्णमासी-(वह कह रही है)-हे हृदय ! जब तक सूर्य विम्व उदयाचल से उदित नहीं होता, जब तक अक्रूर रथ में चढ़कर यात्रा मंगल पाठ नहीं करता और जब तक रथ के घोड़े तेज गति से पृथ्वी को विदीर्ण कर तुम्हें फफोलों में नहीं बदल देते, उससे पहले ही तुम फट जाओ ॥१७॥

वृन्दा-भद्रा किस प्रकार विलाप कर रही है, आओ उसे भी सुनें। (पर्दे के पीछे से आवाज आती है; भद्रा कह रही है)-हे प्राणपक्षि ! तुम्हारे प्राणनाथ रथ पालकी में चढ़ रहे हैं। हाय ! तो भी तुम इस मरणशील शरीर रूपी घोंसले का परित्याग नहीं कर रहे हो ? ॥१८॥

पौर्णमासी-(बायीं ओर देखकर) हे पुत्रि ! कृष्ण की मध्याह्न समय की पुष्पमाला को रचने वाली चन्द्रावली के हृदय में त्रिशूल मारने वाली पद्मा के वचन भी सुनो ॥१९॥

(पर्दे में से पद्मा की आवाज आती है)-हे चंचले चन्द्रावलि ! तुम्हारे प्रिय सहचर चक्रपाणि श्रीकृष्ण सामने

रथ पर चढ़े बैठे हैं। हाय ! तुम अब तक पुष्पमाला गूँथने में व्यस्त हो रही हो ? हे बंधिरे ! गोपों और गौओं की विलाप ध्वनि अभी तुम्हारे कानरन्ध्रों में प्रविष्ट नहीं हुई है क्या ?

पौर्णमासी-(उद्वेग के साथ) अहो ! पद्मा के ये अप्रिय वचन सुनकर एकदम चन्द्रावली के हाथ से आधी गुथी हुई माला गिर गयी है। हाय ! हाय ! चन्द्रावली तन्द्रा में मूर्च्छित हो गयी है ॥१९०॥

वृन्दा-देखो, देखो चेतना रहित चन्द्रावली को रथ के आगे डालकर पद्मा विलाप कर रही है-(पर्दे के अन्दर से पद्मा की आवाज सुनायी देती है) हे हताशे ! एकबार क्षणभर के लिए नेत्रों को खोलो। हाय ! हाय !! निष्ठुर गान्धिनी पुत्र अक्रूर घोड़ों को शीघ्रता से चला रहा है ॥१९१॥

पौर्णमासी-(दायीं ओर देखकर) हा धिक्कार ! देखो तो, विशाखा आदि सखियां श्रीराधिका को श्रीकृष्ण के मथुरा जाने की बात बताने को किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हो रही हैं, फिर बिना बोले रह भी नहीं पा रही हैं। परन्तु वे सब अत्यन्त जड़ावस्था-स्तब्धता को प्राप्त कर अधीर होकर परस्पर कानों में कुछ कह रही हैं ॥१९२॥

पौर्णमासी-(खेदपूर्वक) हे वराक्षि, राधे ! पलक पड़ने के विघ्न के द्वारा एकबार मात्र जिनके दर्शन सुख में बाधा आने पर तुम निमेष रहित मछलियों की प्रशंसा करती रहती हो, हे राधे ! आज वही श्रीकृष्ण मथुरा जा रहे हैं। उनके प्रेम से घायल हृदय वाली अब तुम्हारी क्या दशा होगी, इसे हम नहीं जान सकतीं ॥१९३॥

वृन्दा-देखो, देखो, हठात् चारों ओर से कोलाहल सुनकर श्रीराधा हरिणी की तरह चंचल नेत्रा होकर राजमार्ग पर बाहर निकल आयी है।

पौर्णमासी-हाय ! बड़ा कष्ट है ! आज श्रीराधा दिव्योन्मादमयी प्रेम-विवश दशा को प्राप्त हो रही है। क्योंकि परस्पर सम्बन्ध रहित ऊट-पटांग बातें उच्चारण कर रही है। (पर्दे में से श्रीराधा की यह ध्वनि सुनायी देती है)-हे सखि ! बान्धवों के साथ रथ पर श्रीब्रजेन्द्रनन्दन को देखकर मेरा शरीर गिरा पड़ा जा रहा है। पृथ्वी क्यों घूम रही है ? और सामने वाले कदम्ब नाच क्यों रहे हैं ? ॥१९४॥

पौर्णमासी-सुनो, ललिता क्या कह रही है ? (पर्दे में से उसकी आवाज आती है)-हे सखि राधे ! दुःखी मत होओ। यहां से (विरह) पर्वत का लांघना आरम्भ हो रहा है।

पौर्णमासी-श्रीराधिका के वचन सुनो-(पर्दे के पीछे से

श्रीराधा की आवाज आती है-हे सहचरि ! मैं अब सब जान गयी हूँ, तुम अपनी चतुराई से उसे छिपाने में कैसे समर्थ हो सकती हो ? हे निष्ठुर ! चुप रहो। भविष्य में कृष्ण-विरह का क्लेश नहीं होगा। हमारे प्राण क्या बार-बार निर्लज्ज होकर कष्ट में रहे आवें ?-हम जीवित ही नहीं रहेंगी विरह कैसा ? ॥१५॥

वृन्दा-भगवति ! विशाखा भी कुछ बोलना चाहती है। (पर्दे के पीछे से विशाखा की आवाज आती है)-हे सखि ! प्रियतम श्रीकृष्ण कंस को मारकर रात्रि में तुमसे मिलेंगे। अतः तुम इस विस्मय भरी तन्द्रा का त्याग करो। तुम तो क्षमावती रमणियों में शिरोमणि स्वरूप हो ॥१६॥

पौर्णमासी-सुनो, श्रीराधा कह रही है ? (पर्दे में से) हे हताशे विशाखे ! उनके गुण कीर्तनकर सूखे मुँह से आश्वासन मत दो। देखो, यह रथका चक्र अति कठिन पृथ्वी की कूख को विदीर्ण कर रहा है ॥१७॥

पौर्णमासी-अहो ! कमलनयन श्रीकृष्ण की मथुरा यात्रा से मन में भयभीत होकर यह चकोर नयनी श्रीराधा मूर्च्छित हुई जा रही है।

वृन्दा-हाय ! यह श्रीराधा तो कभी चीत्कार करती हुई रथ के आगे-पड़ी जा रही है, कभी अश्रुपूर्ण नेत्रों से श्रीकृष्ण के मुख को देख रही है। कभी दांतों में तृण दबाकर श्रीबलराम के आगे पतित हो रही है। इस प्रकार यह श्रीराधा किसको दुःख सागर में नहीं धकेल रही है ?-सबको दुखित कर रही है ॥१८॥

पौर्णमासी-(नेत्रों में अश्रुभर कर) हाय हाय ! जिसने अपनी प्रिय सखियों के सामने लज्जा के कारण कंस-शत्रु श्रीकृष्ण के अधरों से निकली सौरभ की ओर भी नहीं देखा, आज वही श्रीराधा गुरुजनों के सामने लज्जा परित्याग कर इस दशा को प्राप्त हो रही है ! मेरा चित्त अतिशय दुखी हो रहा है ॥१९॥

पौर्णमासी ने देखा कि श्रीराधा के दुखित मलिन मुख को देखकर रथ पर बैठे श्रीमुरारि के मुखकमल से लगातार अश्रुरूप मकरन्द प्रवाहित हो रहा है ॥२०॥

वृन्दा-भगवति ! इन व्रजकुमारियों के प्राण निश्चय ही प्राणेश्वर श्रीकृष्ण के साथ चले जायेंगे-ये जीवित न रह सकेंगी।

पौर्णमासी- पुत्रि ! श्रीकृष्ण के सन्देशवाहक इस दूत को देख, जो व्रजकुमारियों के कान-कान में कुछ कह रहा है कि "हे श्रेष्ठ भाववतियो ! आप सब इन दुःखपूर्ण कुछ रात्रियों को किसी तरह बिताओ, शीघ्र ही फिर मेरे साथ आप सबका मंगलमय मिलन होगा।" इस प्रकार अघासुर-विजयी श्रीकृष्ण ने दीर्घ आशा-पाशों से कमलनयनी

रमणियों के प्राणरूप मृगों को बांध लिया है ॥२१॥

वृन्दा-(दुःखपूर्वक) हाय ! कमलनयन श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर मधुकरगण अब मधुपान नहीं कर रहे हैं, न ही मोर ताण्डव नृत्य के द्वारा अब वन को अलंकृत कर रहे हैं। चक्रवाक भी अब अपनी पत्नियों के साथ नहीं मिल रहे हैं ॥२२॥

पौर्णमासी-(रथ के पहियों के चिह्नों का अनुसरण कर दुःखपूर्वक)-हाय ! श्रीराधा दीनता भरे वाक्यों से व्याकुल होकर रो रही है। उनसे वह सारे जगत् को आश्रय रहित शोकसागर में निक्षेप कर रही है ! हाय ! पृथ्वी शोकभार से रथ के पहियों से बनी रेखा के व्यपदेश से मानों बहुत दूर तक विदीर्ण हो रही है ॥२३॥

वृन्दा-हा कष्ट ! हा कष्ट ! श्रीकृष्ण के विरह-रोग के कारण बार-बार अधीर होकर धीरा श्रीराधा कभी सामने चल देती है, कभी चित्र की भांति निस्तब्ध रुक जाती है। कभी उन्मत्त व्यक्ति की भांति हँस रही है, तो कभी जोर से रोने लगती है। कभी प्रलाप करती है तो कभी मौन साध लेती है ॥२४॥

(पर्दे के भीतर से श्रीराधाजी के वचन सुनायी देते हैं)-हे सखि ! वे नन्दकुलचन्द्र कहां हैं ? मोरचन्द्रिकाधारी वे कहां गये हैं ? गम्भीर मुरली बजैया कहां ? इन्द्रनीलमणि कान्तिधारी कहां हैं ? कहां गये हैं रासरस में ताण्डव नृत्य करने वाले ? हे सखि ! मेरे जीवन की रक्षा-औषध कहां है ? वे सुहृत् परमनिधि कहां है ? हाय ! विधाता ! तुमको धिक्कार है ॥२५॥

पौर्णमासी-हाय ! महा कष्ट है। सामने दुर्निवार मूर्तिमान करुणा राशि आ रही है, चलो यहां से शीघ्र।

वृन्दा-भगवति ! मुखरा को यहां बुलाना चाहती हूँ। (ऐसा कहकर दोनों वहां से चली जाती हैं)।

(दूसरा दृश्य आरम्भ होता है)-तदनन्तर सखियों के द्वारा आश्वासन पाकर श्रीराधा प्रवेश करती हैं-

श्रीराधा-(क्रन्दन करती हुई)-हे सुमुखि ! मैंने तो प्राण भर कर यथेच्छ रूप से कर्ण पुटी से प्रियतम के परिहास वचनों का पान नहीं किया ! निशंक होकर उनकी मुखकमल कान्ति का दर्शन भी नहीं किया। श्रीकृष्ण के विशाल वक्षस्थल का आलिंगन भी कभी प्राप्त न कर पायी-बस यह समस्त चिन्ता करते-करते मेरा मर्मस्थल (हृदय) विदीर्ण हुआ जा रहा है ॥२६॥

विशाखा हे सखि ! श्रीकृष्ण के शीघ्र वापिस लौट आने के संवाद को जानकर भी तुम क्यों इस पीड़ाग्नि की ज्वाला में अपने को डालकर हम सखियों के प्राणों को उपलों की अग्नि में जलाती हो ?

श्रीराधा-श्रीकृष्ण का चित्त ब्रजवासी तथा मथुरावासी दोनों के प्रति करुणा-तरंगों से परिपूर्ण है। इसलिए गोपरमणियों के पक्ष में उनके दर्शन की सम्भावना हो सकती है, परन्तु मेरी मर्मग्रन्थि को छेदन करने वाली मेरी वैरिणी क्रूर विरह-वेदना उस प्रकार के सौभाग्योत्सव की प्रतीक्षा नहीं कर सकती-अर्थात् इस प्रबल विरह में उनके लौटने तक मेरा जीवन नहीं रह सकता। ॥२७॥

(ऐसा कहते हुए श्रीराधाजी अत्यन्त आर्तभाव प्रकट करती हैं)

हे सखि ! गोकुलपति के वियोग से उत्पन्न ज्वर बलवान होकर मेरे मर्मों को भेद रहा है। मिट्टी की कुशली में जो ताप सोने को गला-पिघला देता है, उससे भी कहीं अधिक उत्ताप देने वाला है यह विरह-ताप। विष समूह से भी अधिक क्षोभ जनक या मारक है यह, वज्र से भी अधिक दुःसहनीय है और हृदय में चुभे त्रिशूल से भी अधिक दुःखदायी है। हाय ! यह तो वृद्धि प्राप्त विशूचिका रोग से भी अधिक भयानक है। ॥२८॥

(ऐसा कहकर श्रीराधाजी ज़ोर से रोने लगती हैं पर्दे के अन्दर से आवाज आती है)-आज कोटि-कोटि प्राणों से भी प्रियतम श्रीकृष्ण के दूर चले जाने पर श्रीराधा का मर्मस्थल दुःसहनीय शोक-अस्त्र से घायल हो गया है। अतः हे आर्य-चरिते मुखरे ! मत रोको उसे, मत रोको उसे, उस क्षीणांगि श्रीराधा को थोड़ी देर पृथ्वी पर पड़ी रहकर आर्तस्वर में मन भर कर रोने दो। ॥२९॥

ललिता-(पर्दे की ओर देखकर मन-मन में)-वृन्दे ! श्रीराधा को रोने से निवारण करने वाली मथुरा को ऐसा करने से रोक कर तुमने उत्तम काम किया है।

श्रीराधा-(चक्रवाकी को देखकर अभ्यर्थना करते हुए)-हे चक्रवाकि ! तुम पूर्व दिशा से आयी हो ? श्रीकृष्ण निश्चय तुम्हें रास्ते में मिले होंगे, उनका संवाद मुझे कहो। मार्ग में वह थक गये होंगे, उनकी उस रथयात्रा के श्रम को किसने निवारण किया है ? और किसने उनकी वेश-भूषा को फिर संवार कर विन्यस्त किया है ? ॥३०॥

ललिता-प्रिय सखि ! कदम्ब की शाखा पर बैठे इस वायसराज (कौए) को तो देखो, जो विरहिणियों की मण्डली में से निकलकर मथुरा यात्रा के लिए उत्कण्ठित हो रहा है।

श्रीराधा-(प्रशंसा पूर्वक)-हे भ्राता वायस कुल-चूड़ामणि तुम गोकुल से जा रहे हो, वहां मथुरा जाकर वन्दना करके वृन्दावन नाथ की यह संवाद कहना-हे नागरचन्द्र ! आपकी विरहाग्नि मेरे अंक रूप भवन में प्राणपशु को जलाने के लिए आनन्द पूर्वक प्रज्वलित हो रही है। अतः

आप उसके मिलने की आशा रूप अर्गल-बन्धन को तोड़ डालो-अर्थात् उसके मिलने की आशा का परित्याग कर दो आप। ॥३१॥

(बायीं ओर बैठी सारिका को देखकर) हे सखि सारिके ! तुम श्रीकृष्ण की भेजी दूती हो, मैंने नहीं समझा था। स्पष्ट कहो तो, क्या श्रीकृष्ण उस तुच्छ शत्रु का संहार करके बान्धवों से घिरे हुए खड़े हैं और पश्चिम-वृन्दावन की तरफ मुख करके “रथ रथ” ऐसा कह रहे हैं ?-वृन्दावन आने के लिए रथ मंगा रहे हैं क्या ? ॥३२॥

(ऐसा कहकर श्रीराधा भयभीत होकर रोने लगती हैं)-हाय ! अब गुरुजन क्या कहेंगे ? अब वह वंशी ध्वनि अमृत कहां है ? अब तो वह शोकहारिणी बोलिन नहीं सुन पा रही हूँ। वह परिहासमयी छटा अब कहां है ? क्षणकाल के लिए धैर्य धारण करूँ भी तो वह कैसे ? हाय ! मेरे प्राणनाथ कहां हैं ? मुझे धिक्कार है जो अब तक मैं श्रीकृष्ण को नहीं देख पा रही हूँ। हे हतभाग्य प्राण ! शीघ्र मेरा कण्ठदेश परित्याग करो। ॥३३॥

विशाखा-(कान में) ललिते ! शीघ्र ऐसा कोई उपाय करो, जिससे प्रिय सखी श्रीराधा की प्राणघातक वेदना क्षणकाल के लिए तो उपशम हो जाये।

ललिता-(श्रीराधा के पास आकर) हे कमलनयनि ! हम सबको यह आशंका हो रही है कि वे कौतुकी श्रीहरि अक्रूर के आगमन की माया फैलाकर हम सबसे परिहास कर रहे हैं। क्योंकि वे तो कभी वृन्दावन-कुञ्जों का परित्याग करने में समर्थ नहीं हो पाते। अतः हे सखि ! चलो उन्हें कुञ्जों में दूण्डें, वे वहां अवश्य मिल जाएंगे। ॥३४॥

विशाखा-वास्तव में तुम विचक्षणा हो, तुम्हारा कहना ठीक है।

श्रीराधा-सखियो ! यह बात भी कोई असम्भव नहीं, चलो सब मिलकर उन्हें दूण्डें।

(कुछ समय भ्रमण करने के बाद सामने हरिणियों को देख कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहती हैं)-

हाय ! हाय ! हे हरिणियो ! बार-बार वंशी ध्वनि सुनने से तुम्हारे मुख में से जो अर्द्ध-चर्वित तुण्ण्रास गिरता जा रहा है, तो क्या तुम सबने श्रीहरि को अपने नेत्रपथ का पथिक बनाया है ?-उन्हें देखा है क्या ? ॥३५॥

(आगे चलकर अट्टहास करते हुए) अरी मयूर ! तुम कुटिलता छोड़कर शीघ्र बताओ, मोरपुच्छ धारी श्रीहरि अब किस कुञ्ज में छिपे हुए हैं ? तुम्हारे लिए तो उनकी मुरली ध्वनि नवीन मेघ की ध्वनि से कोटि गुणा अधिक

प्रिय है ॥३६॥

विशाखा-(ग्रीवा उठाकर देखते हुए)-यह तो प्रिय सखी श्रीराधा के कुञ्जनिकटवर्ती कुण्ड की गुञ्जावली दीख रही है।

श्रीराधा-(सम्भ्रम पूर्वक आघ्राण कर काँपते हुए) हे गुञ्जावलि ! तुम मणिराज कौस्तुभ के प्रकाश से उज्ज्वल होकर असुर-विनाशक श्रीकृष्ण के वक्ष में विराजमान होती हो। हाय ! अब तुम व्याकुल होकर कुञ्ज मार्ग में लोट रही हो ॥३७॥

ललिता-सखि ! खोज के अभिनिवेश से हम सब ग्राम का मार्ग भूलकर सखीस्थलि ग्राम में कैसे आ पहुँची हैं ?

श्रीराधा-“हा प्रिय सखी चन्द्रावलि” (अति उत्सुका होकर) विशाखे ! जिसने ब्रजराजनन्दन के साथ स्वामी की तरह आचरण किया है, मैं उस चन्द्रावली को मिलना चाहती हूँ जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा।

विशाखा-वह तो कराला के भवन में आबद्ध होकर दुर्बल हो रही है।

श्रीराधा-तब चलो इस गिरीन्द्र गोवर्धन का स्तवन करें। (ऐसा कहकर घूम जाती हैं) विशाखे ! क्यों अब मेरी प्रतारणा-वंचना करती हो ? सामने देखो, देवी चन्द्रावली विराजमान है। (आगे बढ़कर गद्गद् कण्ठ से)-हे सखि ! लता कुञ्ज-कुसुमों से विभूषित हो रहा है, जहाँ मधुपान में उन्मत्त होकर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। उसमें मुसकराते हुए शंकायुक्त व्यक्ति की भाँति नेत्रों से कटाक्ष करते हुए विराजमान, हाथों में मुरली लिए, मस्तक पर मयूर पुच्छ का चूड़ा धारण किये हुए उस स्वच्छन्दचारी ब्रजराजनन्दन को क्या तुमने कहीं देखा है ?

(पर्वत कन्दरा में अपनी प्रति ध्वनि को सुनकर दुःख पूर्वक)-देखो वह प्रतिध्वनि भी रोते हुए हमसे पूछ रही है। (ऐसा कहकर निकट जाती हैं मोहित होकर) हे सुन्दरि ! श्रीकृष्ण की मनोहर भुजाओं के आलिंगन से तुम्हारा अंग मंगलमय हो रहा है। आज इस हत-भागिनी राधा ने सौभाग्य वश तुम्हारा दर्शन किया है। अतः हे चन्द्रावलि ! तुम्हारी भुजाएँ कंसारि श्रीकृष्ण के कानों में शोभित कुसुमों की सौरभ से सुवासित हो रही हैं। उस पुष्ट भुजाओं के द्वारा शीघ्र मेरे कण्ठ को आलिंगन कर मुझे तृप्त करो ॥३८-३९॥

(ऐसा कहकर श्रीराधाजी उसे आलिंगन करने जाती हैं)

ललिता-अरी राधे ! यह चन्द्रावली नहीं है। यह तो स्फटिक शिला में तुम्हारा अपना ही प्रतिबिम्ब है।

श्रीराधा-(निर्धारण करके) सत्य कहा है ललिते !

तुमने। (ऐसा कहकर उल्लासपूर्वक हँसकर) हे ललिते ! भाग्यवश मेरे शरीर का पात नहीं हुआ। देखो, देखो, (अंगुली से दिखाती हुई) सामने दूर मोर पुच्छ मुकुटधारी श्रीकृष्ण गौरांगी रमणियों के द्वारा आलिंगन होकर क्रीड़ा कर रहे हैं। (असूया पूर्वक ऐसा कहकर पुनः सावधान होकर खेद पूर्वक)-

हे सखि ! यह कान्त नहीं हैं। परन्तु इन्द्रधनुष के द्वारा वेष्टित और विद्युत् रेखा से मनोहर स्निग्ध नव जलधर ही पर्वत का आलम्बन कर रहा है। (ऐसा कहकर श्रीराधा मूर्च्छित हो जाती हैं) ॥४०॥

ललिता-विशाखा-सखि ! धैर्य धारण करो। धैर्य अवलम्बन करो।

श्रीराधा-(आश्वस्त होकर आदर पूर्वक) हे गिरीन्द्र ! तुम अतिशय प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण की सेवा करने में सर्वश्रेष्ठ हो। ऐसा अनुमान किया जाता है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे अंक में निवास करते हैं। (दैन्य का विस्तार करते हुए) आप दया करके शीघ्र ही दुर्गम गुहाद्वार को खोल दो एवं श्रीदामोदर का मुझे दर्शन कराकर मेरी इस दुरन्त दैन्य तरंग का दमन करें ॥४१॥

(ध्यान से देखकर) हाय ! यह तो झंकार शब्द पूर्ण जल-निर्झरों के रूप में अजस्र अश्रुधारा प्रवाहित किये जा रहा है, कुछ बोलता नहीं ॥४२॥

(कुछ आगे चलकर) हे चंचलाक्षि ! यह तो वही मकरन्द पूर्ण कदम्ब वृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर श्रीश्यामसुन्दर ने मोरपुच्छ की शलाका से मेरे केशकलापों में चूड़ा बनाया था ॥४३॥

(दायीं ओर देखकर रोते हुए)-यह तो वही गोवर्धन की गुहा है, जिसके द्वार पर श्रीकृष्ण ने विचित्र मल्लिका पुष्पों की विस्तीर्ण शय्या की रचना की थी। यह शय्या चारों ओर होने वाले विलास का स्मरण करा रही है। उसका स्मरण करके भी अब तक यह तुच्छ प्राण कण्ठ में चल रहा है, धिक्कार है इसे ॥४४॥

(फिर व्याकुलता प्रकाशित करते हुए)-हाय ! सखि ! मैंने सब कुञ्जे देख डाली हैं, वृन्दावन के सब स्थानों पर दूण्डा है, अति घनी भाण्डीरवट की सारी भूमि देखी और इस गोवर्धन पर्वत का अंग-अंग खोजा, परन्तु ललिते ! कहीं भी तुम्हारे बन्धु की गन्धलेश भी मुझे प्राप्त नहीं हुई ॥४५॥

ललिता-कुञ्ज में छिप-छिपजाने वाले श्रीमाधव को तुमने कई बार पहले खोजकर बाहर नहीं किया है क्या ? अतः निराश मत होवो।

श्रीराधा-(थोड़ा आगे चलकर सम्भ्रमपूर्वक)-ललिते !

ठीक कहा है तुमने। देखो, सामने अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण रथ पर बैठे हैं। मैं अभी उनको कण्ठ से पकड़कर रथ से नीचे उतारती हूँ। (ऐसा कहकर उधर बढ़कर दुःखपूर्वक)-हाय ! यह तो सामने सोने की कान्ति से भूषित पर्वत शृंग है, रथ नहीं है। यह नीलवर्ण वाला तो तमाल वृक्ष है, गोपियों के रतिगुरु श्रीकृष्ण नहीं हैं। अरे ! यह जो बलवान् शार्दूल (सिंह) है, कंसदूत अक्रूर नहीं है। हे सखि ! विधाता के प्रतिकूल होने पर सब कुछ दूसरा रूप धारण कर लेता है ॥४६॥

(ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं)

विशाखा-ललिते ! मैं कमलदलों को शीघ्र लाती हूँ, तब तक तुम श्रीराधा को अपने पटांचल से हवा करो। (इतना कहकर भागकर चली जाती है)।

(पर्दे में से आवाज आती है) श्रीराधा के उत्कट विरह एवं अत्यधिक दीनता को देखकर मानसी गंगा सूख गयी है, अहो ! जिसकी चौटी पर के दूर्वा को सूर्य रथ के घोड़े भोजन करते थे (इतना ऊँचा था) आज वह गोवर्धन संकुचित होकर केवल सौ हाथ भर ऊँचा रह गया है ॥४७॥

श्रीराधा-(चेतनता प्राप्त कर किन्तु अपने को ललिता समझकर प्रेममयी ईर्ष्या के साथ बोली)-सखि राधे ! अलीक मान-दुर्लीला का त्याग करो।

ललिता-(लम्बी सांस छोड़ी मस्तक झुका लिया)

श्रीराधा-सखि राधे ! तुम्हारे चरणों की आहट सुनकर श्रीकृष्ण केलि निकुञ्ज में प्रवेश कर रहे हैं (ऐसा कहकर श्रीराधा ललिता के चरणों पर गिरने लगी) सखि ! यह मुकुन्द कुन्द पुष्पों से उज्ज्वल कुञ्ज में जा रहे हैं। लतावली मानो हँसती-हँसती मधुकर गुञ्जन के द्वारा शीघ्रता कर रही है। अतः हे उन्मत्ते ! चरण-पतिता इस सहचरी को व्यथित मत करो। यह दुर्लभ श्रेष्ठ अवसर तुम्हारी मुग्धता के कारण विफल हो गया है ॥४८॥

ललिता-हाय ! मैं मन्दभागिनी दैव के द्वारा मारी गयी हूँ। (ऐसा कह कर फुत्कार कर रोदन करने लगती है)

विशाखा-(निकट आकर आदर के साथ) ललिते ! क्या करती हो ? धैर्य धारण करो।

श्रीराधा-(विस्मय के साथ) सखि ! क्या तुम ललिता हो ?

ललिता-(गद्गद् होकर) हाँ, मैं ललिता हूँ।

श्रीराधा-अहो ! सत्य कहती हो, तो क्या मैं राधा हूँ ?-(चारों ओर देखकर) निश्चय हम सब वनमाला के पुष्पों के चयनार्थ यहाँ आयी हैं। श्रीकृष्ण के कर्णभूषणार्थ मल्लिका स्तवक का चयन करें ॥

(ऐसा कहकर पुष्पोद्यान में प्रवेश कर आतंक पूर्वक) अहो ! आश्चर्य, मल्लिकापुष्पों की कलिकाएँ क्यों खलित हो रही हैं ? पद्म समूह के कोरक क्यों चारों ओर टूट रहे हैं ? जातीपुष्पों के मुकुल क्यों श्यामकान्ति धारण कर रहे हैं ? हाय ! श्रीहरि के वृन्दावन में अतिशीघ्र इस प्रकार की दुर्गति क्यों उपस्थित हो गई है ? ॥४९॥

दोनों-निश्चय यह वनस्थली महादावानल की ज्वाला से दग्ध हो रही है।

श्रीराधा-ललिते ! नहीं जानती हो-किस कारण आज मेरा चित्त तीक्ष्ण दावानल क्रीड़ा के द्वारा परिव्याप्त हो रहा है ? अतः जिन्होंने दृष्टिमात्र से प्रचण्ड दावानल मण्डल का मंथन किया है, अपने उस वयस्य का अनुसरण करें।

ललिता-प्रियसखि ! चलो ऐसा ही करें।

(तीनों परिभ्रमण करती हैं)

श्रीराधा-(सहर्ष) गोपेन्द्रनन्दन अत्यन्त दूर नहीं हैं। क्योंकि गोमण्डली दीख रही है। (ऐसा कहकर परिक्रमण कर उद्वेग के साथ)

हरि हरि ! श्रीहरि की यह धेनुश्रेणी अश्रुपूर्ण लोचन होकर तृण भोजन नहीं कर रही है, मुख के निकट वत्सगण उपस्थित होने पर भी उद्धूर्णा प्राप्त होने के कारण उनका लेहन नहीं कर रही हैं। केवल हम्बारवों से चारों दिशाओं का भेदन कर रही हैं, वे सब मार्ग में क्षीण होकर गिरी जा रही हैं ॥५०॥

(पर्दे में-कंसराजा के वक्ष में रोषपूर्वक कृष्णसर्प दंशन करें, जिसने गोष्ठ-तड़ाग के जीवन रूप श्रीहरि का अपहरण किया है हाय, धिक्कार। यह आभीर-मीन भूमितल में लुण्ठित हो रही है। आन्तरिक कष्ट के कारण श्वासतरंग शिथिल होकर वह शेषदशा को प्राप्त कर रही है। हाय ! अब इसकी रक्षा कौन करेगा) ॥५१॥

श्रीराधा-काँपती हुई घूर्णित होकर मूर्च्छित हो जाती हैं।

ललिता-सखि ! धैर्य धारण करो, धैर्यधारण करो।

श्रीराधा-(नेत्र खोलकर आकाश को देखती हुई) हे देव दिवाकर ! राधिका प्रलाप कर रही है उसके अभीष्ट का साधन करो।

विशाखा-(सम्भ्रम के साथ) सहस्र रश्मि भानु के द्वारा मंगल विधान हो रहा है।

श्रीराधा-(अनसुनी की तरह) हाय ! हाय ! हे सखि ! सर्व प्रकार से मधुसूदन की मधुरिमा से परिपूर्ण पदचिह्नों के द्वारा यमुनाकूल की यह तटभूमि जगत् की दृष्टि को

हरण करने वाली ऐसी एक विलक्षण दशा को प्राप्त हो रही है। यह मेरे नयनों की पथवर्ती होकर इन्द्रिय-वृत्तियों को विवश कर रही है॥५२॥

ललिता-सखि ! आओ इस पुलिन में सूर्य की आराधना कर अभीष्ट की प्रार्थना करें।

श्रीराधा-(पुलिन में लोटकर) हे कमलनयन ! जिस पुलिन में तुमने हम सब गोप-बालाओं के साथ प्रणयपूर्ण सन्तोष लहरी की रचना की है, उस यमुना-पुलिन में हम सब व्यथित होकर पड़ी हुई हैं। अतः तुम आलिंगन के द्वारा अब हमें प्रसन्न क्यों नहीं करते हो ?॥५३॥

ललिता-(यमुना का अवलोकन कर) हे भगिनि ! तुम सूर्यवंश की भूषण-स्वरूपा हो, तुम्हारे पास मधुसूदन का वृत्तान्त जानने के लिए हम सब आयी हैं।

श्रीराधा-हे सखी यमुने ! तुम्हारा यह नवीन तट मणिमय अट्टालिकाओं के स्पर्धाकारी कुञ्जों से शोभित होकर श्रीकृष्ण की क्रीड़ा के गृहरूप में परिणत हुआ था। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

विशाखा-ललिते ! बनमाली की मल्लिका माला को इसकी नासाग्र में धारण कराओ। (दोनों ऐसा ही करने लगीं)

श्रीराधा-(बहुक्षण के पश्चात् चेतनता लाभकर) ललिते ! सुनो, हे सखि ! मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है, वह स्वप्न बलवान होकर जाग्रत् दशा में भी प्रतीति उत्पन्न कर रहा है। मैंने देखा कि कोई एक दुरात्मा दूत कंसराजा के पास से वृन्दावन आकर श्रीकृष्ण को रथ में.....(यह अर्द्धोक्ति) (शांत हो ब्रज में मंगल विराजमान करे)॥५४॥

अतः मैं दुस्वप्न-जात विपत्ति की शांति कामना से यमुना में स्नान कर मुकुन्द का दर्शन करूँगी॥

विशाखा-सखि चलो, हम सब खेलातीर्थ (कालियदह) पर गमन करें जहां मुकुन्द सर्वदा क्रीड़ा करते हैं। (ऐसा कहकर सब प्रस्थान करती हैं)। (तदनन्तर वृन्दा और मुखरा प्रवेश करती हैं)

मुखरा-वत्से ! राधा अब क्या कर रही है ?

वृन्दा-आर्ये ! देखो, वह विशाखा के साथ खेलातीर्थ पर अवगाहन कर रही है।

श्रीराधा-(अति उच्चतरंग शोभा को देखकर) विशाखे ! ठीक, ठीक, मैंने आज खेलातीर्थ में पुनीत होकर अच्छा ही किया है। देखो, तुम्हारे सखा नीलकमल-वन में छिपकर भुजाओं को फैलाकर खेल कर रहे हैं। (दोनों चली जाती हैं)।

विशाखा-तब तो जल में उतरो।

ललिता-(देखकर रोदन करती-करती) हा धिक्कार,

हा धिक्कार, मैं मर गई। यह मेरी प्रियसखी अब विशाखा के साथ गम्भीर-प्रवाह में निमग्न हो गयी है, जो पुनः नहीं उठ रही है। अतः शीघ्र दोनों के बाद मैं भी तीसरी डूब रही हूँ। (ऐसा कहकर उतरने लगी)॥५५॥

मुखरा-(अश्रुपात करके) हा विधाता ? क्या हुआ ? वृन्दा-(रोदन करके) धिक्कार ! यह क्या गति उपस्थित हुई है ?

(ऐसा कहकर दोनों दुःख प्रकाश करके) आर्ये ! शोकावेग से जल में उतरती ललिता को शीघ्र पकड़ो। (दोनों ऐसा करने लगीं)

ललिता-(अवलोकन करके मन में) हा धिक् ! हा धिक् ! गुरुतर बाधा उपस्थित हुई है। तब किसी छल से यहाँ से जाकर गोवर्धन में भृगुपात के द्वारा पाषाण की भाँति कठिन शरीर को शिलाओं से चूर्ण करूँगी जो प्रियजन के वियोग से भी विदीर्ण नहीं हुआ है। (इस प्रकार कहकर शोकावेग का संवरण कर स्पष्ट कहती है)-आर्ये ! मुझे त्याग करो। मैं अभी जाकर यह आश्चर्य वृत्तान्त भगवती पौर्णमासी को सुनाती हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती है)

(आकाश में आकाशवाणी होती है) इस जगत् में ऐसा कौन भाग्यवान है जो इस गोपसुन्दरी की उज्ज्वल-महिमा का निर्देश करने में समर्थ हो सकेगा ? हाय, नवविद्युत् वर्णा आज वह राधा सखी के साथ सूर्य मण्डल भेदकर मुनीन्द्रकुल-दुर्लभ गति को प्राप्त हो गयी है॥५६॥

वृन्दा-आर्ये ! सुनो, सिद्धगण मेघ के अन्तराल में श्रीराधा की सिद्धि की प्रशंसा कर रहे हैं।

मुखरा-(पृथ्वी पर गिरकर) हाय ! नातिनी राधे ! तुम कहाँ गई हो ?

वृन्दा-(सखेद) हाय, हाय, चारों ओर इस विपत्ति की चिन्ता कर, मैं कटुतर पुटपाक-ज्वाला में व्याकुलित हो गयी हूँ। हे पंकजाक्षि राधिके ! असमय में तुम्हारी लोकान्तर में प्रवेश की वार्ता का श्रवण कर पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि की क्या दशा होगी॥५७॥

(पुनः आकाशवाणी होती है)-शिव, शिव, जो मुरारी की प्रणय-मणि की पिटारी है और जो राधिका की जीवन-स्वरूपा है, वह दाड़िमबीज की भाँति दाँतों वाली ललिता राधिका के विरह से दुःखी होकर पर्वतशृंग से गिर रही है॥५८॥

मुखरा-हा ललिते ! मुझे क्यों परित्याग कर गयी हो ? (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गयी)

वृन्दे ! शोकानलज्वाला में जर्जरित आत्मा को यमुना जल के द्वारा मैं भी शीतल करूँगी। (ऐसा कहकर यमुना

में गिरने को उद्यत होने लगी)

(पुनः आकाशवाणी होती है)-बृद्धे ! इस प्रकार अयोग्य कार्य मत करो।

वृन्दा-आर्ये ! रविमण्डल से यह वाणी उच्चारित हो रही है अतः इसका उल्लंघन करना अनुचित है।

मुखरा-तब चलो यह वृत्तान्त भगवती को निवेदन करें।

(पुनः आकाश में गम्भीर ध्वनि होती है)

मुखरा-वत्से ! सम्पूर्णरूप से नहीं सुनने पायी, यह

दैववाणी कैसी है ? कहो तो।

वृन्दा-कमलिनी की कान्ति-नाशक और चक्रवाक के प्रियसंगम के साक्षी स्वरूप सूर्यदेव की यह दिव्यवाणी निष्कपटता से सुनो। हे मुखरे ! यमुनाजल में निमग्न होकर महा साहस का कार्य मत करो। पुनः प्रमोद-सुधा के द्वारा अर्थात् श्रीराधा-कृष्ण के मिलन के द्वारा महान्-उत्सव पूर्ण होगा ॥५६॥ (ऐसा कहकर दोनों चली जाती हैं)

इस प्रकार “उन्मत्तराधिका”-नामक तृतीय अंक समाप्त हुआ ॥३॥

चतुर्थ अंक

(अनन्तर उद्धवजी प्रवेश करते हैं)

उद्धव-यह मुकुन्द प्रणयीजनों की प्रेमवश्यता के कारण सर्वज्ञों के गुरु होकर भी अज्ञ की भाँति आचरण कर रहे हैं। पुनः प्रभु समूह के चूड़ामणि होकर भी जड़िमा का अवलम्बन कर रहे हैं और सर्वदा आनन्दमय विग्रह होकर भी व्याकुलता का प्रकाश कर रहे हैं ॥१॥

(आगे देखकर) अहो ! गार्गी क्यों यहाँ आ रही है ? (ऐसा कहकर निकट में जाकर) आर्ये ! प्रणाम करता हूँ। (गार्गी प्रवेश करती है)

गार्गी-अमात्य ! भक्तिसुधा-प्रवाह के द्वारा चिरकाल तक पृथ्वी को अभिषिक्त कराओ।

उद्धव-ज्ञात होता है कि-भगवती रोहिणीदेवी के साथ यदुपति के अभिषेक उत्सव से गोकुल से तुम आयी हो ?

गार्गी-नहीं, नहीं, श्रीश्रीरामकृष्ण दोनों के उपनयन उत्सव में निमन्त्रिता होकर गोकुलेश्वरी के साथ यहाँ आई हूँ।

उद्धव-तब तो आर्या ने रंगस्थल में देव की अलौकिक क्रीड़ा नहीं देखती है।

गार्गी-कहो तो वह क्रीड़ा किस प्रकार थी ?

उद्धव-सुनिष्ट, साधुगण रूप चक्रवाकों का आनन्द-विधायक, खलगणरूप खद्योत समूह की दीप्ति को हरण करने वाला कुवलया पीड़ नामक गजराज को चिर निद्रा में सुला देने वाला यदुकुलकमल का उल्लासदायी वह श्रीकृष्ण रूप सूर्य मल्लरूप उल्लुओं को दुखी करता हुआ कंसरूप अन्धकार विनाश के लिए रंगद्वार रूप अत्युच्च उदय पर्वत पर प्रादुर्भूत हुआ ॥२॥

गार्गी-उसके बाद, फिर क्या हुआ ?

उद्धव-उसके बाद श्रीहरि हस्तिरुधिर, हस्तिमद एवं अपने श्रमजात धर्मविन्दुरूप कुंकुम, अगुरु एवं चन्दन के द्वारा परिलिप्तांग होकर, बृद्धगज के दन्तरूप दण्ड के द्वारा अपने स्कन्धदेश को विभूषित कर रंगस्थल की प्रान्तभूमि में वह श्रीकृष्ण क्रीड़ा करने लगे ॥३॥

तदनन्तर वैसे वेशधारी श्रीहरि दस प्रकार के लोगों के लिए दस प्रकार से अनुभूत होने लगे-उस समय रंगस्थल में श्रीमुकुन्द का दर्शन कर दैत्याचार्य ब्राह्मणों के मुख विकृत हो गये। मल्लों के मुख लाल हो गये। सखागण हंसमुख हो उठे। दुष्ट भय से अचेतन हो गये। ऋषिगण ध्यान मग्न, मातृगण गरम-अश्रु बहाने लगीं। क्षत्रिय योद्धाओं में रोमांच, श्रेष्ठ देवताओं में अभिनव चमत्कारिता, उत्पन्न हो गयी। दासगण में नृत्य, मृगनयनी रमणियां कटाक्षों को प्रकाश करने लगीं ॥४॥ (यहाँ वीभत्स, रौद्र, हास्य, भयानक, शान्त, करुण, वीर, अद्भुत, दास्य एवं शृंगार-ये दसों रस दिखलाये गये हैं) ॥

तदनन्तर वह यदुसिंह श्रेष्ठ श्रीकृष्ण उत्तम केशरमाला से विभूषित होकर, विचलित चाणूर-सैन्यदल का मर्दन कर, कौतुकवश उत्तम बुद्धि का परिचय देते हुए खलभोजकुल के हाथी कंस को विदीर्ण करने लगे ॥५॥

गार्गी-भाग्यवश साधुओं का महावक्षःशूल समूल उत्पाटित हुआ है। (ऐसा कहकर आनन्द प्रकाश कर) अमात्य ! वह पौर्णमासी धन्या है, जिसने श्रीकृष्ण का संग परित्याग न करके रंगस्थल में रंगक्रीड़ादि-कौतूहल का अवलोकन किया है।

उद्धव-यह क्या कह रही हो, इस पौर्णमासी प्रसंग से ही सान्दीपनि मुनि जगद्गुरु के गुरु बने हैं ॥

गार्गी-हाय ! आचार्य पत्नि ने सर्वाभीष्ट मूल श्रीकृष्ण को लकड़ियां लाने की आज्ञा दी। उसने निःसंकोच होकर तिल की भुसी और चिन्तामणि का समान मूल्य निर्धारण कर डाला। ॥६॥

उद्धव-चाणूरमर्दन श्रीकृष्ण की शिष्याचार आदर्श-स्थापन में यह चातुरी-मात्र है। इसमें गुरु पत्नी का कोई अपराध नहीं है।

गार्गी-मैंने सुना कि-मधुमंगल को पुनः यमपुरी से लाकर श्रीहरि ने गुरु के प्रति दक्षिणा रूप में प्रान किया है ?

उद्धव-केवल गुरु को दक्षिणा नहीं दी, परन्तु केलिगुरु श्रीकृष्ण ने अपने लिए भी अनुकूल दक्षिणा प्राप्त की। मैंने गोकुल में मधुमंगल की सौभाग्यवार्ता सुनी है।

गार्गी-क्या आप गोकुल गये थे ?

उद्धव-हाँ गया था।

गार्गी-क्यों गये थे ?

उद्धव-देवी चन्द्रावली को लाने के लिए।

गार्गी-उसको क्यों नहीं लाए फिर ?

उद्धव-(अश्रुपात करके) रुक्मी गोकुल से चन्द्रावली को फिर कुण्डिन नगर ले गया है।

गार्गी-'गोकुल में चन्द्रावली है'-यह संवाद उसने किससे सुना ?

उद्धव-सखा शिशुपाल के मुख से।

गार्गी-उसने कहाँ से सुना ?

उद्धव-अपनी माता श्रुतश्रवा से।

गार्गी-सत्य, सत्य, वह अपने भ्राता आनकदुन्दुभि (वसुदेव) को बन्धन से मुक्त हुआ जानकर देखने के लिए पिता के घर आई थी। तदनन्तर मैंने अनभिज्ञता के कारण गोकुल का समस्त रहस्य उसके निकट प्रकाश कर दिया।

उद्धव-आर्ये ! इसमें आपका क्या दोष है ? हम सबके प्रति विधाता ही प्रतिकूल है।

गार्गी-भीष्मकपुत्र रुक्मि जब चन्द्रावली को ले जा रहा था, उसे किसी ने रोका नहीं क्या ?

उद्धव-श्रीकृष्ण तो बहुत दिन से मथुरा में आकर रहने लगे, और तोशल जिसका दूसरा नाम गोवर्धन मल्ल था, वह यहाँ मारा गया, तब रुक्मि को कौन रोकता ?

गार्गी-हे सौम्य ! पद्मादिक चारों कन्याओं को यहाँ क्यों नहीं ले आये ?

उद्धव-नग्नजित् राजा की कन्या पद्मा है, मद्राजा की कन्या माद्री श्यामला है, भद्रा एवं लक्षणा केकय राजा की कन्याएँ हैं, शैव्या एवं मित्रवृन्दा शैव्य राजा की

कन्याएँ हैं। वीणा प्रवीण श्रीनारद के मुख से यह जान कर उन सबके पिता ब्रजराज श्रीनन्द को विनयकर अपनी-अपनी कन्याओं को गोकुल से अपने घर ले गये। ॥७॥

गार्गी-कात्यायनी व्रतपरायण गोपकन्यागण कुशल से तो हैं ?

उद्धव-(साश्रुनेत्र) वे सोलह हजार एक सौ कुमारिकाएँ विरह क्लेशवश सन्तप्त हृदया होकर यमुनातट पर कामाख्यादेवी का स्तवन कर रही थीं, उस उद्वण्ड स्वभाव वाला नरकासुर दैत्य उनका हरण कर ले गया है। ॥८॥

गार्गी-(व्यथा के साथ) आपके प्रभु कृष्ण ने क्या इस वृत्तान्त को सुना है ?

उद्धव-सुना है, परन्तु समस्त नहीं।

गार्गी-वह कैसे ?

उद्धव-षोडश सहस्र एक सौ आठ कुमारिकाओं में एक भी गोकुल में नहीं है।

गार्गी-उनके और अनुसन्धान का अवसर कहाँ है ? क्योंकि श्रीराधा की दारुणदशा को सुनकर उनको तिलमात्र शान्ति नहीं है।

उद्धव-आर्ये ! उचित कहती हो, इसीलिए भगवती पौर्णमासी ने अत्यन्त व्यग्र होकर श्रीकृष्ण के मनोविनोद के लिए किसी एक उपाय की रचना की है।

गार्गी-वह किस प्रकार ?

उद्धव-संगीतविद्या के विधाता भरतमुनि के पास प्रार्थना कर किसी एक अपूर्व रूपक को प्रस्तुत किया है। उन्होंने देवर्षि नारदजी के द्वारा तुम्बुरु के पास वह रूपक भेजा, तुम्बुरु ने गन्धर्वों को अध्ययन कराया है।

गार्गी-मैंने कुछ दिव्य पुरुषों को माननीया पौर्णमासी देवी के साथ आलाप करते हुए देखा है, निश्चय वे सब नृत्यपरायण गन्धर्व होंगे।

उद्धव-ऐसा ही है, देखो, नृत्यविलोकन के लिए अरविन्दलोचन श्रीकृष्ण मधुमंगल के साथ पद्मरागमणि-निर्मित मन्दिर के अलिन्द में विराज रहे हैं।

गार्गी-मैं जाकर मुखरा को प्रेरित करती हूँ।

उद्धव-मैं भी भगवती के साथ नटगण को प्रेषित करता हूँ। (ऐसा कहकर दोनों प्रस्थान करते हैं) ॥९॥

(विष्कम्भक) अनन्तर यथा निर्दिष्ट श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं-

श्रीकृष्ण-(खेद के साथ) हा लीलावति ! हा चकोरनयने ! हा चन्द्र विम्बानेन ! हा विम्बोष्ठि ! हा गुणवतियों में सर्वश्रेष्ठ ! हा समस्त गोकुल-खञ्जनाक्षीवृन्द की प्रधाने ! हा राधे ! हतदैव की दुर्विलास चेष्टा से तुम्हें क्या

विषमदशा प्राप्त हो रही है ?

मधुमंगल-प्रिय सखा ! अत्यन्त दुर्लभदर्शना श्रीराधिका मानो आकाश में विद्यमान की भांति प्रतिभात हो रही है।

श्रीकृष्ण-सखा सत्य, सत्य, आशा के द्वारा ही मैं इस प्रकार कदर्थित हो रहा हूँ। क्योंकि-जब मुखरा आर्त्ता होकर जलमग्न होने को जा रही थी तब दूरस्थ सूर्यमण्डल से करुणापूर्ण आकाशवाणी प्रादुर्भूत हुई। उससे श्रीराधा के साथ पुनः मिलन-प्रत्याशा का अंकुर उत्पन्न हुआ था। हा धिक्कार ! वह उच्चारित वाक्यामृत अभी मेरे अन्तःकरण को विद्ध कर रहा है॥१०॥

(क्षणकाल तूष्णी होकर पुनः उच्चस्वर से श्रीकृष्ण बोले)-हाय ! चलने को तैयार अक्रूर ने जब अश्वों की लगाम को धारण किया तब तो राधिका चंचलचित्ता होकर रोदन करती-करती रथ में चढ़ने के लिए आयी थी, परिजनों के द्वारा निरुद्धा होकर मेरे लिए उसने अश्रुपूर्ण दृष्टि का निक्षेप किया था। हा मुझे धिक्कार है, क्योंकि सब देखकर भी क्रूरमना मैंने क्षणमात्र विलम्ब कर उस सुन्दरी को अनुनय के द्वारा शान्त नहीं किया॥११॥

(तदनन्तर गन्धर्वगण के पीछे-पीछे उद्धव, पौर्णमासी एवं मुखरा प्रवेश करते हैं)-

उद्धव-देव ! यह चतुर नाट्यमण्डली लाया हूँ।

श्रीकृष्ण-सूत्रधार ! शीघ्र ही नृत्य, गीत एवं वाद्य का आरम्भ करो।

सूत्रधार-जिसकी निजमाधुर्य-मुद्रा से नीलकमल की शोभा ग्लानि प्राप्त हो रही है, वह परम जयशील अनिर्वचनीय राधाकटाक्ष जय को प्राप्त हो रहा है। त्रिभुवन श्रेष्ठ जयलक्ष्मी स्वयंवरा होकर जिनको माल्यार्पण कर रही है, वे मधुसूदन श्रीहरि भी उस कटाक्ष से अवहेला में पराजित हो रहे हैं॥१२॥

श्रीकृष्ण-(सहर्ष) हृदयानन्ददायक यह नान्दीप्रयोग अत्यन्त सुन्दर हो रहा है।

सूत्रधार-(पार्श्व में देखकर) आर्य ! किसी एक सुचारु नाटक के द्वारा जगद्बन्धु श्रीहरि की आराधना के लिए स्वर्ग से कुलाचार्य तुम्बुरु ने मुझे प्रेरण किया है।

नटी-आर्य ! वह प्रबन्ध क्या है ?

सूत्रधार-रसिकशिरोमणि श्रीहरि के प्रिय, गोकुलवासियों का सुलभ, राधाभिसार नामक गुणगर्भ सन्दर्भ जययुक्त हो॥१३॥

अतः मंगलजनक ध्रुपद का अवलम्बन कर गान करो।

नटी-आर्य ! किस ऋतु का अवलम्बन कर गाऊँ।

सूत्रधार-आर्य ! देखो, देखो, शोभालक्ष्मी कुन्दावली

को त्याग कर नवमालिका में मिल रही है, पिकगण दीर्घकाल से परित्यक्त अपनी पंचम स्वर चातुरी के स्मरण में चेष्टाशील हो रहे हैं। भाण्डीरवट से पीले-पीले पत्र स्पष्ट रूप से गिरते जा रहे हैं। अतः परमानन्दमय कोई उज्ज्वलकाल कौतुहल पूर्वक मन्द-मन्द गति से प्रवर्तित हो रहा है॥१४॥

नटी-यह माधवी स्पष्ट रूप से कठोर शमीलता के द्वारा आकृष्ट हो रही है। क्या मधुप उसके स्तवकों का अनुसरण नहीं करता है ?॥१५॥

सूत्रधार-(सन्तोष के साथ) आर्य ! उत्तम, उत्तम, प्रस्तावोचित भाव का विन्यास हो रहा है। क्योंकि, देखा जाता है-वृद्धा जटिला के द्वारा निरन्तर श्रीराधिका के निरुद्धा होने पर भी माधव सुन्दरभाव से अवाधित रूप में उसके साथ विहार करते रहते हैं। (ऐसा कहकर चले जाते हैं)॥१६॥

(अनन्तर श्रीमाधव का प्रवेश होता है)

श्रीमाधव-परम शोभायुक्त, मलयानल की सहचरी साक्षात् वसन्तऋतु विराजमान है। मत्त भृंगों से तथा पक्षिकुल से मनोहर यह वृन्दावन मानो हास्य कर रहा है। हाय ! यदि श्रीराधा यहाँ अब अभिसार करती है तब तो मेरे परमानन्द विलास-सागर की लहरियों का महान् कल्लोल कोलाहल उपस्थित होगा॥१७॥

मधुमंगल-(हास्य कर) (ही ही, आश्चर्य-आश्चर्य) स्वर्ग के भण्ड दासी (विदूषक दासी) पुत्रों के साथ दूसरा प्रियसखा प्रत्यक्ष उपस्थित हुआ है।

उद्धव-(चमत्कार के साथ) जिसके हस्तपद्म नवीन मुरली रूप मराली से परिशोभित हैं, जिसकी गुञ्जामाला की अद्भुत शोभा पद्मरागमणि की कान्ति को ग्रास कर रही है, जिसके मयूरपुच्छ चूड़ा के प्रान्तभाग मृदुल पवन संचार से चञ्चलायमान है उस श्यामवर्ण समूह का विलास मेरे हृदय को आनन्द से अधीर कर रहा है॥१८॥

श्रीकृष्ण-(औत्सुक्य के साथ रोमांचित होकर) अहो ! जिस लीला में मेरे अपूर्व माधुर्य परिमल का प्रकाश हुआ है, उस गोपलीलामय दूसरे स्वरूप को यह नट प्रत्यक्ष कराकर मुझे बार-बार विस्मापित कर रहा है। हे सखे ! इसका स्वरूप देखकर मेरा चित्त केलि-कौतूहल में अत्यन्त तरलित होकर व्रजबधू श्रीराधा की स्वरूपता धारण करने के लिए अत्यन्त अभिलाषी हो रहा है॥१९॥

हे सखा ! कहो तो, यह नट मेरी मनोहारिणी अनिर्वचनीय रूपचन्द्रिका का आविष्कार करने में किस प्रकार समर्थ हुआ है ?

उद्धव-देव ! आपके भक्ति-प्रभाव से यह सम्यक्स्वरूप

में भावित हो रहा है। यह तो देवर्षि नारदजी की सेवा परिपाटी का विवर्त या प्रतिबिम्ब है।

श्रीकृष्ण-(आश्चर्य के साथ) क्या मैं नटत्व प्राप्त होकर इस रंगस्थल में अभिनय कर रहा हूँ ? अथवा सभास्थल में सभ्यपद लाभ कर दर्शन कर रहा हूँ। अहो ! सामने परमाद्भुत वेश रचना विधि का अवलोकन कर मैं स्पष्टरूप से निर्णय करने के लिए निमिष काल भी समर्थ नहीं हो रहा हूँ॥२०॥

माधव-अहो प्रिया-विरोहित ! मेरी मति मधुकर वृन्द के साथ घूर्णायमान हो रही है, मेरा धैर्य मधुधारा के साथ विच्युत हो रहा है और मेरी उत्कण्ठा कलिकाश्रेणी के साथ विकसित हो रही है॥२१॥

अतः अब वेणुगीतरूप संकेत के द्वारा ललिता को आह्वान करता हूँ। (ऐसा कहकर अधर में वेणु रखकर माधव कहते हैं) अहे ! इन्द्र की दिशारूप नागरि ! (अर्थान्तर में) पूर्वदिशा की नागरि ललिते ! अनुराग सहित सूर्यदेव की अभिनव गुरुतर कान्ति का आविष्कार करो। (ललिता-पक्ष में-श्रीराधा को बुलाकर आनयन करो)। देखो, यह पक्षिश्रेष्ठ चक्रवाक किसी विरह से आकुल होकर तुमको काकुलक्ष के द्वारा प्रार्थना कर रहा है। पक्षान्तर में-यह चक्रधारी हरि विरहातुर होकर सखियों में श्रेष्ठ ललिते ! तुमसे लक्ष-लक्ष काकु-वचन के द्वारा भिक्षा मांग रहा है कि तुम श्रीराधा के साथ मेरा मिलन कराओ॥२२॥

श्रीकृष्ण-(सकौतुक) देवर्षि प्रसाद से क्या नहीं होता है ? इसीलिए यह नट अन्य व्यक्ति का अज्ञेय निगूढ़ मनोभाव व्यक्त कर रहा है।

माधव-(सहर्ष) यह तो निकट में मनोहारिणी विजयिनी मृदु मधुर नूपुर की ध्वनि है। अतः मैं अब माधवी-मण्डप में प्रवेश करता हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान) (अनन्तर ललिता के साथ पीछे-पीछे श्रीराधा का प्रवेश होता है)

श्रीराधा-(औत्सुक्य-सहित सम्मुख में दृष्टि कर) सखि ललिते ! देख, देख, यह तरंगलेखा धन्य है। क्योंकि यह शैवालवल्ली के द्वारा निबद्ध चरण वाली हंसिनी को मोचित कर देती है, यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि मानो पद्म पत्रों के अन्तर्वर्त्ती हंस के साथ इसको सम्मिलित कर देगी।

ललिता-(मृदु हंसकर) हे हंसिनी ! हंसपति के प्रति पक्षपात के हेतु यह उद्धत स्वभाव वाली उर्मिमाला तुमको आकर्षित करती है। अतः विश्वास के साथ कान्त के निकट अभिसार करो।

श्रीकृष्ण-(उत्कण्ठा के साथ) जिसके दीर्घ कालव्यापी

विरह-ज्वर से जर्जरित होकर मेरी यह गुरुतर अननुभूतपूर्व दशा उपस्थित हुई है, वह मेरी चित्तरूप हंस की सरोवर-रूपिणी कमलनयनी श्रीराधिका उपस्थित हुई है। (ऐसा कहकर सिंहासन से उठकर बाहु युगल से ग्रहण करने के लिए भ्रमण करने लगे)॥२३॥

उद्धव-यह तो नाटक चल रहा है।

श्रीकृष्ण-(धैर्य धारणकर लज्जाभिनय के साथ) हाय प्रिये ! यह तो वही शरच्चन्द्रमा-विनिन्दित मुखशोभा है, यह तो वही मदमत्त मृगीकुल की अन्वेषणीय माधुर्य की क्रीड़ा-क्षेत्र रूपिणी दृष्टि है। रतिपति जिसको देखकर धनुर्विभ्रम का अभ्यास करता है, यह तो वही गौरवमयी भ्रू है, अहो ! यह गन्धर्वबाला श्रीराधिका के समान मेरे धैर्य का हरण कर रही है॥२४॥

मुखरा-हा नातिनि राधिके ! तुम जीवित हो ? (ऐसा कहकर पकड़ने के लिए भागने लगती है)

पौर्णमासी-(वस्त्रांचल धारण कर) हे स्नेहान्धे ! यह तो गन्धर्वों की नाट्यकला है।

मुखरा-(अश्रुविसर्जन करती हुई) भगवति ! राधा सूर्यमण्डल को भेदकर लोकान्तर में चली गयी है। स्वर्ग से गन्धर्वों के द्वारा लाई गई हो, ऐसा सन्देह हो रहा है।

श्रीराधा-सखि ललिते ! गृह से जब पुष्पाहरण कौतुकवश मुझको तुम लायी हो, तब आर्या मुखरा ने हमें देखा है।

ललिता-केवल मुखरा नहीं, जटिला ने भी देखा है।

मुखरा-(सवाष्प गद्गद् होकर) हा वत्से ! सत्य ही इस निष्ठुरा के द्वारा तुम नाना तापों से जली हुई हो।

मधुमंगल-(क्रोध के साथ) राक्षसि वृद्धे ! अब मिथ्या प्रीति दिखाने की आवश्यकता नहीं है। गृह की प्रान्तवाटिका में इसे देखकर तुम तो कुक्कुरी की भाँति भेओ-भेओ करती रहती थीं।

मुखरा-आर्य मधुमंगल ! क्या करती ? उस समय भगवती के द्वारा रहस्य प्रकाश न करने से प्रतारित हो गई थी।

श्रीराधा-सखि ! यदि मुझे (जटिला ने) देखा है तो उपाय बतलाओ।

ललिता-हा ! मन्दगामिनि ! बनमार्ग का त्याग कर कदम्ब-वृक्षव्याप्त कालिन्दीतट मार्ग में गमन करें। (दोनों परिभ्रमण करती हैं)

श्रीराधा-सखि ! कह तो गति-सूचक नूपुर-ध्वनि के साथ किस प्रकार चलेंगी ?

ललिता-वितर्क-कारिणी जटिला की बुद्धि विडम्बित हो जाय।

(जटिला का प्रवेश)

जटिला-(सम्मुख दृष्टिपात कर) अहो ! मार्ग में राधा को नहीं देख रही हूँ, कहां उसका अन्वेषण करूँ ? (भूतल का अवलोकन कर हर्ष के साथ)

यह तो वधू का चरण चिह्न दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि यह कुण्डलाकार सौभाग्यचिह्न के द्वारा अंकित हो रहा है, तब इस मार्ग से अनुसन्धान करूँ।

श्रीराधा-हे सखि ! मैंने आज स्वप्न में किसी अपूर्व वस्तु का अनुभव किया है।

ललिता-वह कैसा ?

श्रीराधा-तुम तो लवंगकुञ्ज में पुष्प आहरण में लगी थी। उस समय वृन्दावन-निवासी एक मत्त हाथी ने आकर तुम्हारे किसी हाथों को पकड़ लिया। जब तुम सम्भ्रमवश फिरकर जा रही थीं, तब उसने बलपूर्वक तुम्हारे ओष्ठ-पल्लव का दंशन किया और वाम स्तन पर तीक्ष्ण कामांकुश रूप कर-नख का निक्षेप किया।

(ऐसा आधा कहकर रोमाञ्चित-कलेवर से नतमुखी होने लगती है)

ललिता-(मृदु हँस कर) अयि सरले ! मैं जब तुम्हारे हृदय में कस्तूरी के द्वारा पत्रावली की रचना कर रही थी, उस समय मैंने देखा प्रत्यक्ष कि-स्वप्न में उस नागर-कुञ्जर ने तुम्हारे साथ विलास किया अतः स्पष्ट कहो कि जन-संग के अयोग्य उस अवसर पर तुम्हारी दीर्घसूत्र वाली नीवीरूपा तीसरी सहचरी सत्त्वर निर्गता हुई किम्बा नहीं ?

श्रीराधा-(स्वगत) इस धूर्ता ने किस प्रकार यह सन्देह किया है ? (भ्रूभंगि पूर्वक प्रकाश्य में) हे वामे ! क्यों मिथ्या आशंका करती हो ?

जटिला-निश्चय ही नूपुर-शब्द के द्वारा आकृष्ट होकर यह हंससमूह सूर्यपुत्री यमुना जल से वन के प्रति धावित हो रहा है। अतः मेरी छोटी सी बहू अधिक दूर में नहीं है, ऐसा ज्ञात हो रहा है।

उद्धव-अहो ! वृद्धाओं का किस प्रकार बुद्धिकौशल ?

ललिता-(स्वगत) पुरोवर्त्ती माधवीमण्डप में माधव होंगे। (अनन्तर वृन्दा के अनुगमनकारी माधव का प्रवेश होता है)

माधव-(चारों ओर देखकर) मेरे हृदय-उत्सव के विविध हेतु स्वेच्छारूप में क्रम से वर्द्धित हो रहे हैं, परन्तु राधाभिसारतुलना में कोई आरोहण में समर्थ नहीं है। क्योंकि जिसकी मनोरथ तट की अल्पमात्र सीमा प्राप्त होने पर सान्द्रानन्दमयी अनुपम जगद्विस्मृति तक संघटित हो जाती है॥२५॥

श्रीकृष्ण-(पौर्णमासी को देखकर) हाय ! स्नेहमयि !

सर्वदा मुझको विलक्षण आनन्द प्रदान के कारण आप मेरे गुरु से भी गुरुतरा हैं। क्योंकि नाट्यकौशल छल से आपने मुझको सुदुर्लभ वृन्दावन लीला में प्रविष्ट कराया है।

श्रीराधा-(माधव का अवलोकन कर आनन्द के साथ मन-मन में) हे भगवन् आनन्दपर्जन्य ! जलधारा के द्वारा मेरी इस उत्कण्ठता दृष्टिचकोरों को अवरुद्ध मत करो। यह क्षणकाल के लिए उनकी मुखचन्द्र की दुर्लभज्योत्स्ना का पान कर सके॥

(भ्रूभंगी पूर्वक कहती है) ललिते ! तुमने उचित कहा है, क्योंकि तुम प्रतारणा पूर्वक सरला मुझको यहां लप्यी हो, (ऐसा कहकर नासाफुला कर रोदन करने लगती है)

ललिता-प्रियसखी ! क्यों मेरा तिरस्कार करती हो ? यह दैव संगठन है, मैं क्या करूँगी।

माधव-(श्रीराधा को देखकर सहर्ष) अहो ! दोनों नेत्र आक्रमण करने के लिए श्रवण सीमा के प्रति भाग रहे हैं। वक्षोज युगल त्रिवलिरूपरज्जु के द्वारा मध्यदेश को बांधकर उसके स्थूलत्व का हरण कर रहे हैं और भ्रू-युगल उद्धत धनु-विलास का विस्तार कर चरण-युगल की चञ्चलता को हरण कर रहा है, अतः श्रीराधा के तनु-राज्य में बाल्यनरपति क्रमशः क्षीण हो गया है अर्थात् वयः सन्धिकाल उपस्थित हो गया है॥२६॥

ललिता-हे वरांगि ! जिसका दक्षिण-चरण, वाम जंघा के अधोभाग में संलग्न है, जो त्रिभंगी है, जिसका स्कन्ध देश ईषत् वक्र होकर स्तम्भित है, जिसका नेत्रप्रान्त तिर्यक् रूप से सञ्चरण कर रहा है, जिसके चंचल-अधर में चंचल अंगुलियों के द्वारा क्रीड़ा परायण वंशी विलास कर रही है, जिसके दोनों भ्रू चञ्चलभ्रमर के भांति नृत्य कर रहे हैं, उस पुरोवर्त्ती मूर्तिमान परमानन्द को स्वीकार करो॥२७॥

जटिला-(सानन्द) यह तो दाहिनी ओर वृषभानुनन्दिनी बैठी है। (ऐसा कहकर समीप जाकर) अरी ! अभिसार मार्ग का उपदेश दायिनी ललिते ! अब मेरा पुत्र अभिमन्यु विदेश में गया है। इसलिए तुम गृहशून्य करके क्यों इस बधू को यहाँ लायी हो।

ललिता-(सभय मन ही मन में) हाय ! दुर्भाग्य, इस प्रतिकूल प्रकृतिवाली डायन वृद्धा ने जला मारा। (प्रकाश में) आर्ये ! गार्गी के निकट से सुना है आज सूर्यदेव की माधुरी-पुष्प के द्वारा पूजा करने पर वह कोटि गौ प्रदान करेगा। इसीलिए मैं श्रीराधा को माधुरी कुञ्ज में ले आयी हूँ। अतः तुम प्रसन्न हो वो।

जटिला-(मिथ्या स्नेह दिखाकर कान-कान में) वत्से !

मेरी बहू पुत्र के निकट कहती रहती है कि ललिता मुझे प्रलोभन दिखाकर अभिसार कराती है। वह इस प्रकार तुमको मिथ्या-दोष लगाती है। तुम यह अपमान क्यों सहन करती हो ?

ललिता-(स्वगत) आश्चर्य है, जटिला की कुटिलता तो देखो।

माधव-(स्वगत) जिस विषय में मन की गुरुतर आसक्ति होती है, उसमें गुरुतर विघ्न उपस्थित होता है, यह बात मिथ्या नहीं है। (ऐसा कहकर नेत्र-प्रान्त से श्रीराधा का अवलोकन कर धीरे-धीरे गमन करने लगते हैं) ॥२८॥

जटिला-(नासिकाग्र में तर्जनी रखकर मस्तक कम्पाती हुई विस्मय के साथ) अरे बालिका-भुजंग ! किसको दंशन करने के लिए यहां घूमते हो ?

माधव-हे लम्बोष्ठी ! आपके समान गोष्ठ-पिशाचिनियों को।

श्रीकृष्ण-(मधुमंगल से) हे सखे ! गोकुलकुल वृद्धाओं की कठोरवाणी जिस प्रकार आमोद प्रदान करती है, उस प्रकार महामुनियों की स्तुति भी मेरे लिए मधुर नहीं है ॥२९॥

वृन्दा-हे वृद्धे ! धर्मरूप चकोर के जीवन के लिए श्रीकृष्ण का चरितामृत चन्द्रिका स्वरूप है। उन श्रीकृष्णचन्द्र में क्यों प्रतिकूल भुजंगभाव अर्पण करती हो।

जटिला-(व्यंग के साथ उच्चहास्य कर) इस पृथ्वीतल में कौन व्यक्ति है जो ब्रजेश्वर-नन्दन के परबधूविनोद-क्रिया से भूषित गुण को नहीं जानता ? क्योंकि यह रतिलम्पट मार्ग में सतियों को निरोध कर बलपूर्वक उनके कुच कुटुमल में नख। विष्णु, विष्णु और अधिक क्या कहूँ ? ॥३०॥

श्रीराधा-(स्वगत) हा हत दैव ! राधा ने तुम्हारे निकट क्या अपराध किया है ?

जटिला-हाय ! सरले वधू ! इस कृष्णसर्प की सुतीक्ष्ण कुटिल दृष्टि के द्वारा उत्पथवर्तिनी होकर बज्र-प्रतिमा भी जर्जरित हो जाती है, तुम्हारी कथा क्या कहूँ ? तुम तो सुकोमल तपस्विनी हो, अतः आओ, घर चलें।

वृन्दा-नागरेन्द्र ! वैमनस्य त्याग करो। अब तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि के लिए सारिकामुख से ललिता का सम्वाद देकर विशाखा के द्वारा आपको निवेदन कराऊँगी।

(ऐसा कहकर प्रस्थान करती हैं)

माधव-(सखेद) हाय ! एकबार चन्द्र-आलोक से चन्द्रकान्तमणि (श्रीराधा) पिघल गयी थी, परन्तु पर्वकाल में राहुरूपा भीषण जरति (जटिला) ने उसको ढक दिया है ॥३१॥

(निश्वास त्यागकर) विशाखा को ढूढ़ने के लिए जटिला-गृह के समीपवर्ती पाटलिकुञ्ज में चलता हूँ। (ऐसा कहकर चलने लगते हैं) अहो ! अपने गृह के प्रांगण में तो अभिमन्यु विराजमान है, अतः मैं यहाँ पर छिप जाता हूँ। (ऐसा कहकर चले जाते हैं) (अभिमन्यु का प्रवेश)

अभिमन्यु-ऋतुमती गाभी लेने के लिए स्वर्ण मुद्रा की आवश्यकता है। माता ! कहाँ है तू ?

जटिला-हाय, हाय, अभी सारिका ने शुक को जो गोपन करके कहा है, वह मैंने सुन लिया है। अब माधव अभिमन्युवेश में मेरे घर पर आवेगा, अतः वहाँ जाकर देखूँ। (ऐसा कहकर चलते, चलते, द्वारदेश में अभिमन्यु को देखकर) क्या आश्चर्य ! सचमुच यह धूर्त आ गया है। अतः जाकर प्रामाणिक जनों को लाती हूँ।

(ऐसा कहकर चली जाती है)

अभिमन्यु-विशाखे ! तुम कहाँ हो ?

(ललिता का प्रवेश)

ललिता-(मन में) यहाँ श्रीकृष्ण को भेजने के लिए सारिका के वचनानुसार विशाखा गयी है। (स्पष्ट रूप में लज्जा दिखाकर धीमे स्वर में) सुभग ! यहाँ विशाखा नहीं है।

(तदनन्तर गार्गी, भारुण्डा, कुन्दलता आदि के द्वारा परिवेष्टित होकर जटिला आती है)

जटिला-कुन्दलते ! अपनी सखी की सुशीलता को देखती जाओ।

कुन्दलता-(देखकर मुख नीचे करके) हा दैव ! रक्षा करो, रक्षा करो।

भारुण्डा-आर्ये गार्गी ! देखो, मेरी सखी जटिला झूठमूठ नहीं जलती रहती है। तुम देखती जाओ। आपका यह लम्पट कृष्ण प्रत्यक्ष अभिमन्यु होकर आया है।

जटिला-आर्ये गार्गी ! भाग्यवश आज तुम सबको विश्वास हुआ है। आगे तो आकर देखो। (ऐसा कहकर पीछे से घूम कर पुत्र का हाथ पकड़ती हुई आक्षेप के साथ) अरे गोकुल किशोरी-लम्पट अरे परगृह लुण्ठनकारी कृष्ण ! क्या जटिला तुमको अपना पुत्र समझेगी ? कभी नहीं।

अभिमन्यु-(लज्जा के साथ मुँह छिपाकर लौटने लगता है)

जटिला-अरे रतिलम्पट ! क्यों अपना मुख छिपा रहे हो ? आज तुम्हारी विद्या नहीं चलेगी। (ऐसा कहकर खींचकर सामने लाती है)।

अभिमन्यु-(मन-मन में हा धिक्, धिक्)। पगली माता

के द्वारा आज मैं लज्जित हो गया, यहाँ से चलना चाहिए। (चलने लगता है)

जटिला-(दौड़कर वस्त्रांचल पकड़कर) रे चोर ! मैंने दृढ़ता से पकड़ रखा है, भागकर कहाँ जाओगे ?

अभिमन्यु-(लज्जा से मुख नीचे कर) आर्ये ! भारुण्डे ! निश्चय मेरी माता पर भूत सवार हो गया है।

(सब उसको पहचानकर शब्द करते हुए हँसने लगे)

जटिला-(मन में) हाय धिक्कार ! क्या भूल हुई, क्या भूल हुई ? यह तो विदेश से मेरा पुत्र आकर उपस्थित हुआ है।

(ऐसा कहकर छाती पीटती चलने लगती है)

भारुण्डा-वत्स ! सत्य ही तुम्हारी माता पागल हो रही है, क्योंकि उसने तुमको माधव मान लिया है। (अभिमन्यु मन्दहास्य करने लगता है)

कुन्दलता-वीर अभिमन्यु ! मेरी सखी राधा निश्चय पुण्यवती है, जिसने अनुकूला सत्यवादिनी एवं स्नेहमयी माता को सास के रूप में प्राप्त किया है। अतः हम सब उसकी अपरूप नृत्य-कथा भगवती से निवेदन करेंगी। (ऐसा कहकर तीनों चली जाती हैं)

अभिमन्यु-ललिते ! माता को ले आओ। मैं शीघ्र जाना चाहता हूँ।

ललिते-(गमन करके पुनः आती है) हे वीर ! आर्या ! तुम्हारे सम्मुख आने में लज्जित हो रही है।

अभिमन्यु-तब तो मैं स्वयं पिटारी से स्वर्ण मुद्रा ले जा रहा हूँ।

(ऐसा कहकर चला जाता है)

श्रीकृष्ण-सखे मन्त्रिराज ! क्या पूर्वानुभूत परमानन्द है, जिसका अनुभव मैं नटगणों से कर रहा हूँ ?

(वृन्दा का प्रवेश)

वृन्दा-ललिते ! शीघ्र भाग चलो क्योंकि देखो, यह अभिमन्यु क्रुद्ध होकर पुनः आ रहा है।

ललिते-(भय के साथ देखकर) दारुण रूप में प्रतीयमान होने पर भी इसकी दृष्टि परिणाम में माधुर्यमय बोध रही है। अतः ज्ञात होता है कि अभिमन्यु वेश धारण कर श्रीमाधव आ रहे हैं।

वृन्दा-राधा-सखियों की बुद्धि का कौशल देखो। सन्ध्याकालीन मेघ के सहोदर निबिड़-कांति की भांति अभिमन्यु की अंगकान्ति है और पर्वतमय देश के दण्ड के समान नासिका से युक्त है तथा कोटरगत चक्षु से समन्वित मुखवाला है, इस प्रकार व्यस्तगति है। करवी पुष्प की छाया की भांति वस्त्र पहिन रहा है। ठीक उसी प्रकार लक्षण हैं। श्रीमाधव उसके असाधारण रूप का

स्पष्ट अनुकरण किया है।

(तदनन्तर अभिमन्यु वेशधारी श्रीमाधव प्रवेश करते हैं) ॥३२॥

माधव-लज्जावश संचालित, भृकुटि द्वारा कुंचित एवं ईषत् मुद्रित नेत्रों युक्त उस मधुरद्युति सम्पन्न राधिका-मुख का कब मैं बलपूर्वक पान करूँगा ॥३३॥

(सम्मुख देखकर) ललिते ! मेरी जीवन-रक्षक औषधिरूप तुम्हारी वह भीरु-सखी कहाँ है ?

ललिते-सखी राधे ! इधर आओ।

(श्रीराधा प्रवेश करती है)

श्रीराधा-(लज्जित रूप में मृदुहास्य करके मन में) यदि प्रियजन अप्रिय पदार्थ को अंगीकार करता है तो भी वह अप्रिय पदार्थ सुख प्रदान करता है। गिरीश के गरल ग्रहण करने पर क्या गौरी उनमें अत्यन्त आसक्त नहीं हुई है ? ॥३४॥

माधव-ललिते ! मेरे हाथ में महा-सम्पत्ति प्राप्त हुई है ऐसा जानो।

ललिते-यदि वह यक्षिणी बाधा नहीं तो।

(नटी प्रवेश करती है)

जटिला-(सहर्ष) ओ वधूटि ! आज तुम भाग्यवश सुबुद्धिमती हो गई हो। अब तो मेरे पुत्र के दृष्टिपथ में आ गई हो। (सब संभ्रम प्रकाश करने लगे) पुत्र अभिमन्यु ! सन्ध्या होने पर मैं अच्छी तरह नहीं देख पाती हूँ।

माधव-(आनन्द के साथ मृदुहास्य कर) मात्रा ! जिससे तुम्हारी दृष्टि पूर्णतया ठीक होगी, उस प्रकार का अंजन दूँगा। (पक्षार्थ में समग्रतम अर्थात् पूरी तरह अन्ध हो जाओगी ऐसा अब्जन दूँगा।)

श्रीकृष्ण-(मन्द मन्द हास्य करके) सखे मन्त्रिराज ! सौभाग्यवश तुम आज व्रजलीलारूप अमृत सागर के पुलिन में अवतीर्ण हुए हो।

जटिला-(सानन्द) वत्स ! मुझे किसलिए बुलाया है ? वृन्दा-सम्प्रति सन्ध्याकाल में गौमंगला देवी की आराधना की इच्छा कर वह आपकी अनुमति-भिक्षा मांग रहा है।

माधव-मां ! तुम्हारी बहू मेरे साथ चैततरु के मूल में जाना नहीं चाह रही है।

जटिला-वत्से राधिके ! मैं तुम्हारी गुरुजन हूँ। मेरा यह अनुरोध अवश्य पालन करो, शीघ्र अपने कान्त के साथ जाओ।

श्रीराधा-(मन में) ओ मां, ओ मां, आश्चर्य ! आश्चर्य ! (प्रकाश में) उनसे कहो मेरा शरीर अस्वस्थ है।

जटिला-कुलपुत्रि ! माथे की शपथ खा रही हूँ।

(श्रीराधा माधव को अपांग से देखने लगती हैं)

माधव-ललिते ! आज हम सब कुञ्ज में मंगल जागरण करेंगे। अतः चन्द गंधादि उपहार ले आओ। वहां सुसज्जिता-श्रीराधा को मैं सर्वप्रथम आराधना के लिए नियुक्त करूँगा।

(ऐसा कह कर चले जाते हैं)

श्रीकृष्ण-(पौर्णमासी को प्रणाम कर) भगवति ! विरह-पीड़ा सम्यक् रूप से प्रज्वलित हो गयी है। धैर्यावलम्बन

में असमर्थ हूँ, कहो, क्या करूँ ?

पौर्णमासी-(मन में) प्रथम कल्प अर्थात् राधा-विषयक प्रस्ताव अतीत हुआ है। अब चन्द्रावली-प्रस्ताव का अनुकल्प किया जावेगा। अतः आज सान्दीपनि मन्दिर में जाने के छल से कुण्डिन नगर में जाऊँगी।

श्रीकृष्ण-भगवती ! प्रासाद के ऊपर स्थित गृह में जाने के लिए आदेश की प्रार्थना कर रहा हूँ।

(ऐसा कहकर सबके साथ प्रस्थान करते हैं) ॥३५॥

इस प्रकार “राधा-अभिसाराख्य गर्भाकगर्भ” रूप चतुर्थ अंक समाप्त हुआ ॥४॥

पांचवां अंक

(तदनन्तर पौर्णमासी प्रवेश करती है)

पौर्णमासी-श्रीकृष्ण में शत-शत मिथ्या परिवाद प्रदान के द्वारा गुरुतर पातक के कारण जिनका चित्त अत्यन्त मलिन हो रहा है, उन समस्त दुष्ट भूपतियों के कैलाश पर्वत से भी अधिक ऊँचे वस्त्रावास शामियाने के द्वारा विदर्भनगरी दूषित हो गई है ॥१॥

(पर्दे में से आवाज आती है) जब तक माधव को वश में करने वाले सिद्ध-औषधि स्वरूप प्रेम की गन्ध अन्तःकरण की पथिक नहीं बनती है, तब तक सर्व सम्पत्ति से पूर्ण अष्टसिद्धि समूह के द्वारा विजयलाभ, सत्य, धर्मसाधन, समाधि एवं उसका फल ब्रह्मानन्द आदि गौरवान्वित होकर चमत्कार सम्पादन करते हैं ॥२॥

पौर्णमासी-(अवलोकन कर सहर्ष) जिनके स्कन्धदेश में जटाएं विलुण्ठित हो रही हैं, जो वीणा के द्वारा श्रीमाधव की कीर्तिगाथा गान करने में अतिशय दक्ष हैं, वे शरच्चन्द्रमा की भांति निर्मल कान्तिवाले हाथ में वीणाधारी देवर्षि नारद यहां उपस्थित हो रहे हैं ॥३॥

(नारदजी प्रवेश करते हैं)

“ऋद्धिसिद्धिब्रजविजयिता” इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक का पाठ वे करने लगे।

पौर्णमासी-भगवन् ! आपको नमस्कार है।

नारद-मुकुन्द की प्रियचिन्ता में रत रहो।

पौर्णमासी-भगवन् ! सुना है कि श्रीमुकुन्द ने मथुरा से प्रस्थान किया है ?

नारद-ऐसा ही है। श्रीमुकुन्द ने मथुरावासियों के द्वारा न मरने वाले म्लेच्छराज कालयवन को, कन्दरान्तरालवर्ती शयनकारी मुचकुन्द की नयनाग्नि से स्वच्छन्द रूप में वध करके कुटिल जरासन्ध की दुरन्त अभिसन्धि को पुनः

पुनः कदर्थन कर बन्धुवर्ग के साथ समुद्रतीरवर्ति पर्वत माला वेष्टित द्वारका नगर में गमन किया है ॥४॥

पौर्णमासी-भगवन् ! बलवान् स्नेहानल से मेरे इस शरीर की अन्तिमदशा उपस्थित हो गई है, आज भाग्यवश आपका दर्शन लाभ हुआ ॥

नारद-वत्से ! स्पष्ट देखा जाता है कि एक मात्र चन्द्र के द्वारा पौर्णमासी समृद्धिलाभ करती है। अतः पूर्णकला वाली चन्द्रावली के द्वारा समृद्धि लाभ की बात कहना ही क्या ?

पौर्णमासी-(अश्रुपूर्ण गद्गद कण्ठ से) भगवन् ! चन्द्रावली के प्रतिपक्ष असाधारण दारुणाकार वाले बहुत से राजा निकट में विद्यमान हैं। अतः पौर्णमासी की समृद्धिवार्ता कहाँ है ? ॥

नारद-पुत्रि ! तुम्हारा पक्ष छोटा नहीं है, अतः विपक्षपक्ष की बहुलता से क्यों डरती हो ?

पौर्णमासी-यह चन्द्रावली ही है, जो नितान्त हरित्यक्ता हो रही है, उस पर फिर अपनी भगिनी उज्ज्वलकान्तिवाली श्रीराधिका से बिछुड़ गयी है, अतः भय क्यों नहीं होगा ?

नारद-क्या अभी भी राधिका का शोक उसे बाधा दे रहा है ?

पौर्णमासी-हां, क्योंकि यह तो बन्धुवत्सला रुक्मिणी है।

नारद-यह चन्द्रावली रुक्मिणी है-यह किससे तुमने सुना है ?

पौर्णमासी-रुक्मी के पिता भीष्मक से।

नारद-(क्षणकाल चिन्ताकर मन-मन में) निश्चय यह समस्त पुरुरमणी तथा ब्रजरमणी तत्त्वांश में समान होने पर भी देहादि से भिन्न हैं। बीच में माया के द्वारा अभिन्ना

की गई थीं। वर्तमान ब्रजधाम में वे सब ब्रजरमणी प्रेममूर्च्छिता होकर विराजमान हैं। परन्तु योगमाया के द्वारा विरह में भी प्रियसंगसुख लाभ हो सकता है, इसीलिए ब्रजभूमि का आच्छादन कर पुररमणियों में निज अभेद अभिमान के द्वारा दीर्घ स्वप्न की भांति आवेशित किया गया है। जो उद्धवागमन के समय तथा कुरुक्षेत्र-यात्रा में अलग सी होकर रही आयीं, वे सोलह हजार एक सौ आठ रमणियाँ समान चरित्रा होकर भी इनसे पृथक् हैं। जो भी हो अब इस रहस्य को उद्घाटन करना आवश्यक नहीं है।

श्रीनारद ने स्पष्ट पूछा-भीष्मक ने क्या संकल्प किया है ?

पौर्णमासी-यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के हाथ में चन्द्रावलि का समर्पण।

नारद-तब तुम व्याकुल क्यों हो रही हो ?

पौर्णमासी-रुक्मी के प्रतिकूल रहने पर, यह वृद्ध शान्त स्वभाव भीष्मक क्या कर सकता है ?

नारद-विदर्भ-कुमार रुक्मी का क्या अभिप्राय है ?

पौर्णमासी-चेदिराज शिशुपाल की इच्छा को पूर्ण करना।

नारद-तुमने इस बात को कैसे जाना ?

पौर्णमासी-रुक्मी के द्वारा रुक्मिणी के निकट प्रेरित श्लोक से-

नारद-सुनाओ तो उसे*

पौर्णमासी-दमघोषनन्दन, यौवनान्वित, अपनी जननी श्रुतश्रवा के हृदय में आनन्द विधानकारी नरपतिराज शिशुपाल में तुम्हारा प्रणय वर्द्धित हो-ऐसा उसने रुक्मिणी को लिख भेजा है॥५॥

नारद-उस श्लोक को पढ़ करके रुक्मिणी ने क्या किया ?

पौर्णमासी-उसने श्लोक में से पांच अक्षर का परिवर्तन कर रुक्मी के पास भेज दिया। पांच अक्षर परिवर्तन से यह अर्थ होता है कि घोषनन्दन, नवयौवनान्वित, पशुपाल शीघ्र, हृदयानन्द-वर्द्धन गुणवाला परदेव श्रेष्ठ नन्दनन्दन में मेरा प्रणय वर्द्धित हो॥६॥

नारद-(हँसकर) फिर उसके पश्चात् ?

पौर्णमासी-उस श्लोक का पाठ कर श्रीकृष्ण की शंका कर युवराज रुक्मी ने दुष्ट राजाओं को निमन्त्रण देकर विदर्भराजधानी कुण्डिन नगर में लाने का निश्चय किया है उस पर वत्सा रुक्मिणि ने मेरे साथ मन्त्रणा कर

सुनन्द नामक एक ब्राह्मण के द्वारा एक पत्र श्रीकृष्ण को भेजा है। नारद-वह पत्र कैसा ?

पौर्णमासी-हे कृष्णमेघ ! अपनी गर्जन के द्वारा प्रतिपक्ष राजहंस समूह को दूर कर अमृतवर्षण के द्वारा अपनी अधीना इस चन्द्रकवती (चन्द्रावली) को परितृप्त करो॥७॥

नारद-निश्चय, वह ब्राह्मण अब तक तो लौटकर नहीं आया है ?

पौर्णमासी-हाँ, क्योंकि रुक्मी के प्रति दैव अनुकूल है।

नारद-(ईषतहास्य करके) जगत् में आश्चर्यचातुरी वाली भगवति ! तुमने रुक्मी को अनुकूल क्यों नहीं बनाया।

पौर्णमासी-मेरे चातुर्यमधु प्रयोग के द्वारा दुग्गुणे दुर्मद में आक्रान्त होकर रुक्मी ने, चेदिपति शिशुपाल मेरे भगिनीपति हों इसलिए कुलदेवी चन्द्रभागा देवी की आराधना की और देवी ने अभीष्टानुरूप उसे आदेश दिया है।

नारद-वह कैसा ?

पौर्णमासी-जिसने जननी को अत्यन्त विस्मित कर चतुर्भुज रूप से जन्म ग्रहण किया वह सूर-सुतात्मज (वसुदेव का पुत्र सूर्य, उसकी कन्या श्रुतश्रवा उसका पुत्र शिशुपाल) (पक्षान्तर में सूरसुत अर्थात् वसुदेव फिर उनका पुत्र श्रीकृष्ण) तुम्हारी भगिनी गुणवती रुक्मिणी से विवाह करेगा॥८॥

नारद-(हँसकर) कार्तिक-जननी चन्द्रभागा के द्वारा यह दुर्जन रुक्मि प्रताड़ित हुआ है-ठगा गया है।

पौर्णमासी-भगवन् ! कैसे प्रतारण हुआ है ? क्योंकि द्वारकानाथ तो दूर विराजमान हैं। इधर खलसमूह कुण्डिननगर को मलीन कर रहा है यहां एकत्रित हो गया है। उधर गरुड़ समुद्र पार हैं। इधर दंशन करने वाले सर्प पास में पहुँच गये हैं।

(सुनन्द विप्र प्रवेश करता है)

सुनन्द-भगवति ! निश्चय द्वारकानाथ विदर्भपुर के पास पहुँच गये हैं।

पौर्णमासी-(सानन्द) सुनन्द ! तुम अच्छा सम्वाद लाये हो। हम तुम्हारा अभिनन्दन करती हैं।

सुनन्द-अब अभिनन्दन का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मेरी अन्धी संदेश हारिता बन्ध्या हो गयी है, अर्थात् दुर्भाग्यवश मेरा सन्देश विफल हो गया है।

पौर्णमासी-(भय के साथ) वह कैसे ?

सुनन्द-गरुड़वाहन श्रीकृष्ण की इस पत्रिका को पढ़िये।

नारद-(पढ़ने लगे) कृष्णरूप शोभनमेघ स्वभाव से

*प्रणयोदमघोषनन्दने शिशुपाले तव यौवनान्विते। नरदेववरे श्रुतश्रवोहृदयानन्दिगुणे विजृम्भताम्॥५॥

पांच अक्षर परिवर्तित श्लोक इस प्रकार है-

प्रणयो मम घोषनन्दने पशुपाले नव यौवनान्विते। परदेववरे द्रुतश्रवो हृदयानन्दिगुणे विजृम्भताम्॥

कटाक्ष-नेत्रा समस्त मयूरीवृन्द का सुख विधान करता है, विशेषरूप से वृन्दावन की मयूरियों को आनन्ददान करता है ॥१०॥

पौर्णमासी-हाय ! यह चन्द्रावलि है, श्रीकृष्ण यह नहीं जानते हैं क्या ?

नारद-सुनन्द ! तुमने स्पष्टरूप से उनसे क्यों नहीं कहा ?

सुनन्द-वह चन्द्रावली कौन है।

पौर्णमासी-दुष्टराजाओं से लज्जा के कारण रुक्मी ने अपनी बहिन का गोकुल-निवास गोपन कर चन्द्रावली नाम का भी गोपन किया है।

सुनन्द-यह रहस्य जब सुहृद्गणों से भी अगोचर है, तो मेरा फिर कहना ही क्या है ?

पौर्णमासी-तब वह गरुड़वाहन श्रीकृष्ण विदर्भदेश अलंकृत को करने क्यों आये हैं ?

सुनन्द-प्रियभक्त क्रथ एवं कौशिक के राजाओं के मनोहर सन्देश को पाकर।

पौर्णमासी-दोनों की ऐसा करने में क्यों प्रवृत्ति हुई ?

सुनन्द-भगवान् हिरण्यगर्भ की आज्ञा से। वह आज्ञा इस प्रकार है-हे क्रथ-कौशिक ! तुम्हारा मंगल हो, अपने भवन से मैं पद्मयोनि ब्रह्मा यह आदेश कर रहा हूँ। जो समस्त राजा तुम्हारे आदेश का उल्लंघन नहीं करते, उन शुद्ध चरित्र वाले नृपतियों के साथ तुम सानन्द यदुपति श्रीकृष्ण की राजाधिराज पदवी की पुष्पाभिषेक-क्रिया का सम्पादन करो ॥११॥

पौर्णमासी-बड़ा भाग्य है, मैं यह महामहोत्सव देखूँगी।

सुनन्द-भगवती ! वह कार्य तो पूर्ण हो गया है।

पौर्णमासी-वह कैसे ?

सुनन्द-अति-वृहत् उत्तम रत्नसिंहासन पर श्रीकृष्ण को बैठाकर आनन्दचित्त पार्वतीनाथ आदि देवों से पुनः पुनः चारों ओर स्तव कि जाने पर समस्त नरपतिगण ने दिव्य कलाओं के द्वारा दनुजविजयी श्रीकृष्ण का अभूतपूर्व राजाधिराज-उचित अभिषेक सम्पन्न किया है ॥१२॥

नारद-विन्ध्य के लिए ब्रह्माजी ने जो वरदान दिया था वह सार्थक हुआ है।

पौर्णमासी-भगवन् ! आदेश कीजिए ! मंगल सूचना ज्ञापन कराने के लिए मैं माधव के निकट जाती हूँ।

(अकस्मात् कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी-भगवति ! विदर्भराज भीष्मक ने निवेदन किया है कि हमारी प्रार्थना पर क्रथ एवं कौशिक दोनों राजा रुक्मिणी हरणार्थ राजेन्द्र श्रीकृष्ण को आवेदन करने के लिए गये हैं। अतः पुण्यमयी आपके साथ तीर्थपाद श्रीहरि

के दर्शन करने की इच्छा करता हूँ।

पौर्णमासी-भगवन् ! मेरी अभीष्ट सिद्धि हो रही है। ऐसा जानिए। अतः आदेश कीजिए।

(ऐसा कहकर वह दोनों के साथ चली जाती है)

(पर्दे में से) अहो ! विषयाकार मायिक पदार्थों का परित्याग कर विश्रान्त-प्राप्त मुनियों के अन्तःकरण में जिनके पदनख-प्रान्त की अल्प मात्र प्रभा नहीं प्राप्त होती, आश्चर्य ! आज हम जैसे व्यक्ति की हस्तकलिका के द्वारा वह परम कारुणिक देवता श्रीकृष्ण का पादपद्म सम्वाहित हो रहा है। वह करुणामय आज कल्याणमय पलंक की शोभावर्द्धन कर विराजमान हैं ॥१३॥

नारद-क्रथ-कौशिक की यह मनोहर उक्ति है।

(पुनः पर्दे के पीछे शंखध्वनि होती है)

नारद-(देखकर सानन्द) अहो ! ब्रजरानी यशोदा के स्तन-पानकारी श्रीहरि जय लाभ कर रहे हैं। हाथ में शंख लेकर वदन कमल में अर्पण करके उसे बजाने लगे हैं। मानो शंखवादन के द्वारा मां यशोदा के स्तनपान का स्मरण करा रहे हैं ॥१४॥

(पुनः निरूपण करके) वे क्रथ-कौशिक के द्वारा वन्दित होकर सम्मुख भ्रमण कर रहे हैं, जो चंचल-कौस्तुभ ज्योत्स्ना के द्वारा परिपूर्ण हैं, जिनकी चारों भुजाएं पाञ्चजन्य, शंख कौमोदकी गदा, सुदर्शनचक्र एवं पद्म से शोभायमान हैं, जिनका अंग दिव्यालंकारों से सुशोभित है, विहगराज गरुड़ जिनके संगी हैं, वे कंसविजयी श्रीकृष्ण आज मुझको वैकुण्ठ लोक की सम्पत्ति का स्मरण करा रहे हैं। अतः आकाश में जाकर कौतुक देखूँ।-(ऐसा कहकर नारदजी चले जाते हैं)

(यथानिर्दिष्ट श्रीकृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण-हे नरपति-युगल ! तुम दोनों ने हमारे लिए अमृतमय जल लाकर हमारा अभिषेक किया है। उससे तुम पृथ्वी पर विपुलसमृद्धि लाभ करोगे। तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिलता नन्दनकानन को अतिक्रमण कर अत्यन्त ऊर्ध्वदेश में स्थित वैकुण्ठ धाम में आरोहण कर लक्ष्मीदेवी के कर्णाभूषण की स्तवकराशि बनेगी ॥१५॥

दोनों राजा-(अनुगृहीत होकर) हे विभो ! जिनके एक रोमकूप विवरमें ब्रह्माण्ड समूह गवाक्षद्वार में घूर्णित परमाणु की भांति दीखते हैं, उन आपकी समृद्धि की अधिक सीमा क्या हो सकती है ? फिर आपका राजेन्द्र तुल्य ग्रामाधिपतित्व क्षुद्रपद-गौरव हम सबका किस प्रकार चमत्कार सम्पादन कर सकता है ? ॥१६॥

श्रीकृष्ण-नृपयुगल ! हम तुम्हारे प्रति प्रसन्न हैं तुम अपनी अभीष्ट प्रार्थना करो।

दोनों-देव ! तपस्विनी रुक्मिणी ने ऐसी कोई तपस्या नहीं की जिससे वह आपके दासी-सौभाग्य का लाभ कर सके-ऐसा गरुड़ मुख से हमने सुना है (तो भी आप उसके लिए ऐसा अनुग्रह कीजिए जिससे वह सरला नारी निन्दा को प्राप्त न हो)।

श्रीकृष्ण-कैसा अनुग्रह ?

दोनों-आज चन्द्रभागा देवी की आराधना के लिए वह रुक्मिणी अन्तःपुर से बाहर आगमन करेगी, अतः आप दुष्ट जरासन्धादि राजाओं को पराभव कर उसका कुण्डिन नगर से हरण कीजिये।

श्रीकृष्ण-नृपयुगल ! ऐसा ही करूँगा ! तुम दोनों उसके अभीष्ट का अनुष्ठान करो।

श्रीकृष्ण को प्रणाम करके चले जाते हैं। पर्दे में से आवाज आती है-हे दामोदर ! महर्षि नारदजी द्वारा वीणा-यन्त्र के साथ तुम्हारा गुणयशगान प्रारम्भ करने पर समस्त-जगत् शुभ्रवर्ण हो गया है। पार्वतीजी अपने पति महादेवजी के कण्ठ में श्यामवर्ण न देखकर, यह मेरे पति नहीं हैं-इस प्रकार भीत होकर त्याग करने लगी हैं। बलदेवजी अपने वस्त्र को शुभ्रवर्ण देखकर, यह मेरा वस्त्र नहीं है इस ज्ञान से उसे फेंकने लगे और आभीर रमणियां यमुनाजल को शुभ्रवर्ण देखकर दुग्धज्ञान से औटाने लगी हैं ॥१७॥

गरुड़-यह तो आकाश में तुम्बरु स्तव कर रहा है।

श्रीकृष्ण-सखे खगराज ! देखो देखो, दुष्ट भूपतिगण के तक्षकफणी की भांति शुभ्र छत्रसमूह मेघ समूह को आच्छादित कर रहे हैं। तीनों लोक दूर से देखकर काँपते हुए आन्दोलित हो भय से जर्जरित हो गये हैं।

गरुड़-देव ! आपके अत्यन्त लघुकिकर इस गरुड़ की एक बार विक्षेपक्रीड़ा के सामने आतपत्र की भांति फण-पटली का कुछ मूल्य नहीं है। अतः प्रलयाग्नि के समान मेरे यह सखा सुदर्शन दूर ही विश्राम करें।

(नेपथ्य में) कुण्डिन राजा की कन्या कमलनयन के अनुरूप है। हे सखि ! तो भी हतदैव उसके प्रति अनुकूल नहीं हो रहा है ॥१८॥

गरुड़-पुररमणियों की यह विषादोक्ति है।

(पुनः नेपथ्य में) सुन्दर रूप वाली कहां तो यह रुक्मिणी और कहां क्रूरमति दमघोषनन्दन शिशुपाल। क्या गर्दभ के कण्ठ में विमल नवमल्लिका की माला शोभा पा सकती है ? ॥२०॥

गरुड़-यह वनमालिका कौस्तुभ भूषित-कण्ठ पक्ष में सुलभ है, दूसरे के पक्ष में नहीं।

(नेपथ्य में) जो अखिल रमणियों की आकर्षण विद्या

वैदग्धी के निधि स्वरूप हैं, जिनके संग्राम को अन्तःपुर भूमि में दूर से दर्शन कर पुरुष भी अत्यन्त भय युक्त हो स्त्री रूप धारण कर लेता है, उन यादवकुल सागर के पूर्णचन्द्र श्रीकृष्ण की जय हो ॥२१॥

श्रीकृष्ण-(बायीं ओर देखकर) यह मौक्तिकचूड़ नामक माथुरभट्ट विरुदावली पाठ कर रहा है-शोभामान मणि सरोवर से अधिक शोभा वाले, नवीन तमाल की भांति नीलवर्ण, गाढ़ कुंकुम से भूषित, श्रीहरि का मनोहर वक्षःस्थल सर्वदा जय युक्त हों। जो कि नक्षत्रमाला से विभूषित, विद्युद्दाम सौन्दर्य से अलंकृत मेघ को अपने वक्षः आकाश में उद्भासित कर रहा है ॥२२॥

श्रीकृष्ण-(मोहग्रस्त की भांति) हा प्रेयसि राधिके ! हा विशाखा सखि ! तुम सब अब कहां हो ? (ऐसा कहकर काँपते हुए गरुड़ का अवलम्बन करने लगे)।

गरुड़-(मन-मन में) इस गम्भीर लीला समुद्र की दुरूह क्रीड़ा भूमि में जब मेरे समान व्यक्ति डूबा जा रहा है, तो अन्य क्षुद्र व्यक्तियों का क्या कहना ? (स्पष्ट शब्दों में) हे कृष्ण देव ! आश्वस्त हो, श्रीकृष्ण आश्वस्त होकर दीर्घ श्वास छोड़ते हैं। (पर्दे में से आवाज आती है)-धात्रियों की मुट्ठी में हाथ दिये हुए, व्याकुल वृद्धा ब्राह्मणियों से घिरी हुई और दूर से अस्त्रधारी सैनिकों से सुरक्षित विदर्भराजनन्दिनी रुक्मिणी दुर्गा मन्दिर जा रही हैं ॥२३॥

श्रीकृष्ण-सखे गरुड़ ! रुक्मि ने हताश होकर दुर्गा मन्दिर को दुर्गम बना रखा है। अतः आओ, नटवेश से भीतर प्रवेश करें। (दोनों चले जाते हैं) (अनन्तर यथा निर्दिष्ट चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली-अहो, जो भ्राता मेरा आश्रय था उसका इस प्रकार प्रतिकूल आचरण हो रहा है। हितकारिणी देवी उपेक्षा करने लगी है, जो एकमात्र गति थे वह प्रिय विस्मृति-पात्र हो गये हैं। अहो ! देव के प्रतिकूल होने पर समस्त विपरीत हो जाता है।

माधवी-इस मन्दिर में प्रवेश कर चन्द्रभागा देवी को निवेदन करें।

चन्द्रावली-आर्य्ये ! भार्गवि ! चन्द्रभागा चण्डी को बन्दना कराओ।

भार्गवी-देवि चन्द्रभागे ! परमाभीष्ट वरदान के द्वारा विदर्भनन्दिनी का आनन्द विधान करो। (ऐसा कह बन्दना कराने लगी) ॥२४॥

चन्द्रावली-(आक्षेप पूर्वक) हे भगवति ! हाय ! मैंने बाल्यकाल से ही एकान्त विश्वास के साथ श्रीकृष्ण के लिए ऐकान्तिक भाव से आपकी आराधना की। क्या आज उसका यह महाफल उपस्थित हुआ है कि आप

अनुकूल होकर मुझे कृष्णवर्त्म में अर्थात् अग्नि में, पक्षान्तर में श्रीकृष्णमार्ग में निक्षेप कर रही हो ? ॥२५॥

माधवी-देखो देखो, रुद्राणी प्रसन्न हो रही है, ऐसा ज्ञात हो रहा है।

चन्द्रावली-आर्य्ये ! भार्गवि ! आप अब भगवती सर्वाणी की आराधना कीजिए। मैं जाकर कुण्डस्थित भगवान् पावक (अग्नि) की परिक्रमा करती हूँ।

(तदनन्तर नर्तकवेशी श्रीकृष्ण-गरुड़ प्रवेश करते हैं)
श्रीकृष्ण-मैंने केलि-कौतुक संगठन के लिए गोपों की गोष्ठी में जिसका अनुशीलन किया है, आज परदुर्ग प्रवेश में वह नटवेश सहायक बन रहा है ॥२६॥

गरुड़-देव ! इस नटवेश से नारियों एवं शत्रुओं के नेत्र रञ्जित हो रहे हैं।

श्रीकृष्ण-सखे विहंगराज ! देखो शुभसूचक लक्षण प्रादुर्भूत हो रहे हैं।

गरुड़-हे मुरारे ! आकाश में कौतुकवान् मुनियों से परिपूजिता नीलकमललोचना गौरवमयी कीर्तिचन्द्रानना विजयलक्ष्मी शिशुपाल आदि राजाओं को त्यागकर उत्कण्ठित होकर आपके निकट आवेगी ॥२७॥

श्रीकृष्ण-सखे ! देखो, देखो, युद्ध में उद्यत वीरगण सिंहनाद कर रहे हैं। इधर संगीतज्ञ व्यक्ति सुन्दर स्वर से गान कर रहे हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ मंगलमय वेदमन्त्रसमूह उच्चस्वर से पाठ कर रहे हैं। अहो ! आज कुण्डिन नगरी समस्त राज्य को बधिर कर रही है ॥२८॥

गरुड़-(सम्मुख देखकर) यह तो कुण्डिनराज पुत्री दुर्गा मन्दिर से बाहर आ रही है।

श्रीकृष्ण-इस परस्त्री विलोकनरूप दुर्वासना से निवृत्ति ही मंगलजनक है। (ऐसा कह मुख फेरकर) सखे ! तुम पक्षांचल के द्वारा आकर्षण कर क्रथ एवं कौशिक दोनों राजाओं के प्रति इस राजकुमारी को समर्पण करो।

गरुड़-(विस्मय के साथ विचारकर) अहो ! देवगण ने क्षीरसमुद्र-मन्थन के छल से सौन्दर्य सागर का मन्थन कर सुन्दर चरित्रवाली समस्त सम्पत्ति की सारभूता लक्ष्मीदेवी का संग्रह किया था। वह लक्ष्मीदेवी इस प्रकार कान्ति के द्वारा नेत्र की चमत्कारचातुरी-विधान नहीं कर रही थी जिस प्रकार कि यह राजकुमारी अपनी कान्ति से सबके नेत्रों की चमत्कार चातुरी का विधान कर रही है ॥२९॥

श्रीकृष्ण-सखे ! जो भी हो, उससे क्या है ? क्योंकि मुझ हरि का मन रूपमात्र से हरण नहीं होता।

चन्द्रावली-सखि माधुरी ! उस वृन्दावन के बीज से उत्पन्न वकुलवृक्ष के पौधे का तुम पालन करती रहना।

माधुरी-(अश्रुपूर्ण नेत्रों से) राजकुमारी ! प्रसन्न हो !

प्रसन्न हो ! सुनन्द की प्रतीक्षा करो, यह भगवती विभावरी बीच में मौजूद है। भगवत्ता के कारण वह तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण करेगी, ऐसा व्यञ्जित हो रहा है। अतः अब अनलकुण्ड में मत गिरो। मैं तो ऐसी मन्दबुद्धि थी कि आप कहाँ रहते हो, उस दिशा को भी न जानती थी।

चन्द्रावली-मुग्धे ! अन्तःपुर में मुझे यह अमृतकुण्ड रूपी मंगल सुलभ न होगा (ऐसा कहकर नेत्रों में जल भरकर) हे दामोदर ! हे गुणनिधे ! मैं मन्दबुद्धि तो उस दिशा को भी न जानती थी कि आप कहाँ रहते हो। आपने मुझे गोष्ठ वृन्दावन में लाकर ग्रहण किया। अब अपने संग से दूर देश में फेंककर क्या आप मुझे भूल गये हैं ? (मैं वही चन्द्रावली हूँ) ॥३०॥

(नेपथ्य में कल कल शब्द होता है)

श्रीकृष्ण-यह पुररमणियों का औत्सुक्य-सूचक शब्द है।

गरुड़-देव ! देखो, देखो, हरिण-नयनी सुन्दरियां आपको देखने के लिए भवन के ऊपर आरोहण कर रही हैं, उनके मुख मण्डल शोभायमान हो रहे हैं। हे कमलनयन ! उन मुख-मण्डलों से गगनतल चन्द्रावली को व्यक्त कर रहा है ॥३१॥

श्रीकृष्ण-(उत्कण्ठा से) हे प्रिये चन्द्रावलि ! हे पद्मासखि ! इस कठोर के द्वारा तुम विस्मृत हो रही हो, अतः आज द्वारकानगरी में जाकर तुम्हारे लिए मैं दूतों को मैं प्रेषण करूँगा ॥

चन्द्रावली-इस प्रज्ज्वलित अग्निकुण्ड को अपने आगे देखकर निश्चिन्त हो रही हूँ।

श्रीकृष्ण-(आशंका से) सखे ! अनुभूतपूर्वा कोई सिंजित ध्वनिरूपा नदी प्रसारित होकर मुझे आर्द्र कर रही है।

गरुड़-देव ! मैंने आपसे पहले निवेदन किया है कि इस अमूल्य कुमारी-रत्न का पाणिग्रहण करने वाला आपके बिना तीनों लोकों में और किसी को नहीं देख रहा हूँ।

श्रीकृष्ण-तब एकबार नेत्र के द्वारा परीक्षा करनी होगी। (ऐसा कहकर कटाक्ष का संचालन करते हैं) अहो ! गोकुलविलासिनी की साधारण माधुर्यमुद्रा से मण्डित यह कुमारी मेरे हृदय को उन्मादित कर रही है। (पुनः सानुराग देखकर) हाय ! यह मेरी वही प्राणवल्लभा है। (आदर प्रकाश पूर्वक) जो मेरे चित्तरूप चन्द्रकान्तमणि को द्रवित कर रही है। यह मेरे स्मर-समुद्र में महा क्षोभ विस्तार कर रही है, मेरे नयनकुमुद का आनन्द विधान कर रही है। यह मेरे रोमावलि रूप औषधि समूह को सर्व प्रकार उल्लास प्रदान कर रही है। चन्दनपंक से शीतल

करने वाली चन्द्रावली आज प्राप्त हो रही है॥३२॥

अतः इसके समीप जाकर इसके माधुर्य की पर्यालोचना करूँ। ऐसा कहकर आगे जाने लगे।

माधवी-(श्रीकृष्ण को देखकर मन-मन में) यह त्रिलोक-सुन्दर नर्तकराज कहां से आया है ?

चन्द्रावली-हे भगवान् हव्यवाहन (अग्निदेव) कोटि कन्दर्प सुन्दर श्रीकृष्ण के पादपद्म-युगल के पास मुझे ले जाओ, क्योंकि वह एकमात्र मेरी शरण है। (ऐसा कह अग्नि को प्रणाम करके) हे भगवती पौर्णमासी ! इस समय आप कहां गयी हो ?

श्रीकृष्ण-(खेद पूर्वक मन-मन में) हाय ! यह सत्य ही महासाहस अर्थात् प्राणत्याग में कृतनिश्चय होकर अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही है। अतः मैं इसके निकट जाकर भुजाओं से इसको पकड़ लूँ-आलिंगन कर लूँ।

चन्द्रावली-(व्याकुल होकर अश्रुपात करते हुए) हा बहिन राधे ! तुम अब तक नहीं आयी हो ? हा प्रिय सखी पद्मे ! तुम कहां हो ? हे मात गोकुलेश्वरी ! अब आपको नहीं देख पाऊँगी। हा प्राणनाथ शिखण्ड ! (बोलना रुक जाता है एवं मोहित हो जाती है) जिनका मन्दहास्य मकरन्द के समान है, श्रेष्ठमकरकुण्डल की शोभा जिनके कर्ण में विराजित है, मेरे नयन प्रति जन्म उनके मुखकमल में भ्रमण करें॥३३॥

श्रीकृष्ण-(अचानक आकर कण्ठ को आलिंगन कर) हे कुरंगाक्षि ! त्रिजगत को तापित मत करो।

माधवी-(सरोष) अरे महासाहसी ! धृष्ट नटयुवक ! इस महाराजपुत्री को छोड़ दो।

श्रीकृष्ण-(अश्रुपूर्ण नयन होकर) अरी शशिमुखि ! तुम जिसको न पाकर मदन मूर्ति मुझ श्रेष्ठतम को तृण के समान तुच्छ जान रही हो, वही प्रणयशाली कृष्ण तुम्हारे कण्ठ में संलग्न हो रहा है। हे प्राणेश्वरि ! आज प्रसन्न हो ! अनुगत इस बल्लभ के प्रति महाभय का प्रयोग मत करो। इस भयानक कार्य से विरत होवो। इससे मेरा शरीर विदीर्ण हो रहा है॥३४॥

चन्द्रावली-(अनसुनी का अभिनय करके) माधवी ! मुझे छोड़ दो, छोड़ दो और दुःख मत दो, क्योंकि इस मुहुर्त में अति-भय की सम्भावना है। (अपनी अंगुलियों से अंगूठी निकालकर) सखी ! यह रत्नमुद्रिका है, जिस प्रकार कभी पुरुषोत्तम के दृष्टि गोचर हो सके, उसी प्रकार व्यवस्था करना।

(श्रीकृष्ण की अंगुली में मुद्रिका पहनाते हुए सन्देह पूर्वक मन-मन में) इस हस्त का स्पर्श इस प्रकार कठिन क्यों है ? (ऐसा कहकर अश्रुधारा पोंछकर भलीभांति

देखकर विलाप पूर्वक) क्यों ये क्या ? ये क्या ? यह तो मेरे प्राणेश्वर हैं, मुझे आलिंगन कर बोल रहे हैं (ऐसा कहकर आनन्द से मूर्च्छित हो भूतल में गिर जाती है।)

माधवी-(आनन्द के साथ) कैसा आनन्द ! विधि का कैसा आश्चर्य विधान ?

(तदनन्तर भीष्मक राजा के द्वारा भेजी हुई पौर्णमासी प्रवेश करती है)

पौर्णमासी-जो प्रस्फुटित नवीन कमल की भांति माधुर्यशाली चरणयुगल को धारण किये हुए हैं, जो सर्वविजयी चक्र धारणकर सबका सन्ताप दूर करते हैं, उन श्रीहरि का अनुसरण कर जिस प्रकार सम्मुख में जलाशय देखकर भूमि-लुण्ठित मीन आशा में जीवन प्राप्त करती है, उसी प्रकार मोहान्धा चन्द्रावली जीवन धारण कर रही है॥३५॥

(ऐसा कहकर निकट जाकर) वत्से चन्द्रावलि ! तुम श्रीमाधव की प्रसन्नता लाभकर इस सान्दीपनि माता को आनन्द प्रदान कर रही हो। अतः अब उठो। (ऐसा कहकर दोनों हाथ पकड़कर उसे उठाने लगती है)

चन्द्रावली-(सामने देखकर मन-मन में) यह तो मेरे पिता विदर्भराज हैं, ये किस प्रकार यहां आये ? (ऐसा कहकर लज्जित होकर पौर्णमासी के पीछे जाने लगती है)

श्रीकृष्ण-(विस्मय के साथ) आप यहां कैसे आयी हो ?

पौर्णमासी-हाय ! गोकुलचन्द्र ! चन्द्रावली के स्नेहवश यहां आयी हूँ।

भीष्मक-(सादर) जाम्बवान ने जानकर अन्यायरूप से मेरी कन्या को लेकर मेरा बड़ा उपकार किया है क्योंकि मुनिजन मन में जिनके पदाम्बुज का ध्यान करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण आज मेरी कन्या के वर हुए हैं।

पौर्णमासी-कुण्डिनराज ! सत्य ही तुम आज पुण्यवानों के शिरोमणि हुए हो। अतः निज कुलकुमुद की ज्योत्स्नारूप चन्द्रावली को राजाधिराज श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण करो।

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) मेरी प्राणवल्लभा श्रीराधा के बिना इस चन्द्रावली को अंगीकार करने में मेरा मन क्या अपराधी नहीं होगा ? क्योंकि यह उसकी सहोदरा है।

भीष्मक-(विनय के साथ) हे लक्ष्मीकान्त ! कन्या के बन्धुओं की यही प्रतिज्ञा है। अतः मैं निवेदन करता हूँ कि आप मेरी दुहिता की अनुमति की अवहेलना कर अन्य किसी रमणी का पाणिग्रहण नहीं कर सकते॥३७॥

श्रीकृष्ण-पौर्णमासी के मुख को देखने लगते हैं।

पौर्णमासी-मुकुन्द ! हत विधि ने गोकुलकुमारियों में से बाकी इसी चन्द्रावली को रखा है, अतः इसमें क्षति क्या

है ?

गरुड़-महाराज ! सुनो, विदर्भराजनन्दिनी जब अपने सुहृत् जन (किसी अन्य रमणी) के अंग संग की आपको विनीत प्रार्थना करेगी उस समय यह भयंकर प्रतिज्ञा अपने आप विराम प्राप्त करेगी ॥३८॥

भीष्मक-ऐसा ही होगा। (ऐसा कहकर आदर के साथ निकट जाकर) देव ! कृपा करके परिचर्या-योग्य इस किंकरी को ग्रहण कीजिए।

(ऐसा कहकर चन्द्रावली को समर्पण करने लगे)

श्रीकृष्ण-(सादर ग्रहण करके) हे राजन् ! आदेश करो मैं द्वारका को जाऊँ।

(ऐसा कहकर सपरिवार प्रस्थान करते हैं)

(पर्दे में) यह मेरा घोड़ा, यहां मेरा घोड़ा है यह मेरा रथ है, यह मेरा रथ है। यह मेरा हाथी, यह मेरा हाथी, यह मेरी तूणीर, यह मेरी तूणीर, यह धनु है, यह धनु है, अहो ! यह मेरी तलवार, यह मेरी तलवार, क्या भय है, क्या भय है ? यह मैं हूँ, यह मैं हूँ। पकड़ो-पकड़ो, चलो-चलो एक-कामुक गोप ने राजपुत्री का हरण किया, हरण किया है ॥३९॥

भीष्मक-(भयाकुल) राजाओं का कोलाहल प्रबल हो उठा है।

(पर्दे की ओर देखकर) हां, यदुसैन्य को लेकर श्रीबलदेवजी आ गये हैं।

(पुनः देखकर हास्य पूर्वक) अहो ! मद-विह्वलता के कारण स्खलित केशों वाले बलदेव कह रहे हैं।

श्रीबलदेव-मैं जगत् को पीस डालूंगा। श्रीहरि क्रोध नहीं करेंगे, नहीं करेंगे। अरे ! शची-गृह के कुरंग (क्रीड़ामृग) ! हँसी मत करो। (बलदेव के उपस्थित होने पर) राजारूपी चेंटा न जाने किस बिल में छिप गये ? ॥४०॥

(पर्दे में से) सारंग-धन्वा श्रीकृष्ण के हास्यरंग के साथ शत्रुकुलध्वंश-कारी धनुष को घूर्णायमान करने पर आज दन्तवक्र चीत्कार करता-करता वक्र हो गया। भोजनपटु, पलायन पर मगधराज जरासन्धरूप शृगाल वाक्शक्ति रहित हो गया। निष्ठुर राजागण समर में आकर तलवारों का परित्याग करने लगे ॥४१॥

भीष्मक-(आनन्द पूर्वक) निश्चिन्त चित्त हो गया हूँ।

(पर्दे में) रणरंग में पण्डित श्रीकृष्ण के द्वारा मस्तक के अर्द्धमुण्डित होकर और छिन्नवस्त्र के द्वारा आबद्ध होकर आज कुण्डिनेश्वर-सुत रुक्मी विडम्बित हुआ है ॥४२॥

भीष्मक-(भय पूर्वक) इस कुलकलंक को सान्त्वना देना उचित है, क्योंकि यह अहंकारी कहीं लज्जावश प्राणत्याग न कर दे ॥४३॥

(ऐसा कहकर सब चले जाते हैं)

इस प्रकार चन्द्रावली-लाभ नामक पांचवां अंक समाप्त हुआ ॥५॥

छठ्ठा अंक

(तदनन्तर उद्धवजी प्रवेश करते हैं)

उद्धव-वज्रधारी इन्द्रादिक देवतागण असुरों के भय से व्याकुल होकर जिनके निकट अभय याचना करते हैं, हाय ! वे आज क्षुद्रमगधराज जरासन्ध के भय से समुद्र में दुर्ग निर्माण कर अवस्थान कर रहे हैं। जिनकी बुद्धि का अवलम्बन कर जगत् जीवन धारण करता है वे आज मन्त्रणा विषय में मुझे स्मरण कर रहे हैं। अतः इस प्रकार दुर्गमगति वाले श्रीकृष्ण की लीला को कौन व्यक्ति जान सकता है ? ॥१॥

(विचार कर) आहा, मैं चिन्ताकुलित चित्त हो रहा हूँ, अब देवर्षि नारदजी को देखना चाहता हूँ।

(आकाश में) क्या कहते हो ? वे भगवान् नारद सुधमदेव की सभा में विराजमान हैं। अच्छा ठीक है, मैं

वहां जाता हूँ। (ऐसा कहकर उद्धवजी घूमकर देखते हैं) अहो। सत्य ही देवर्षि नारद सम्मुख विराजमान हैं।

(नारद जी प्रवेश करते हैं)

नारद-अहो ! दामोदर के हृदय में नवीन आमोदलहरियों को आत्मसात करने के लिए जगत् में प्रेम की नाना प्रकार उत्कृष्ट गतियां हैं, परन्तु ब्रजदेवियों के हृदय में जो गम्भीर भावगरिमा स्फुरित है, उसका हम स्तवन करते हैं। समस्त इन्द्रियों के अधीश्वर श्रीहरि भी उस पर प्रभुत्व विस्तार नहीं कर पाते हैं ॥२॥

(सम्मुख देखकर आनन्द के साथ)

यह तो उद्धव, रूप में भक्ति-विस्तार मानो मूर्तिमान होकर विहार कर रहा है। जिनकी भुजाओं में चक्रादि चिह्न हैं, ललाट पटल पर तिलक, कण्ठ में अनुपम

तुलसी-काष्ठमणियों की माला मौजूद है। जिन्होंने अंग में तथा मस्तक में श्रीहरि के निर्माल्य को धारण किया हुआ है॥३॥

उद्धव-भगवन् ! प्रणाम करता हूँ।

नारद-(शुभाशीर्वाद के द्वारा प्रत्यभिवादन कर) मन्त्रिराज ! तुमको चिन्तित क्यों देख रहा हूँ ?

उद्धव-भगवन् ! देवचरण श्रीहरि के निकट अपराध करने के कारण मैं चिन्तित हूँ।

नारद-अपराधबीज के अंकुरित होने में तुम तो निरन्तर ऊसर भूमि तुल्य हो। दैववश वह अंकुरित होने पर भी गोविन्द में सत्तालाभ नहीं कर सकता अर्थात् अपने प्रभाव को विस्तार नहीं कर सकता।

उद्धव-भगवन् ! मेरी प्रबलकारिता के कारण ही देवदेव के महारण्य सीमा में प्रवेश करने से वह अपराध बना है।

नारद-वह कैसे ?

उद्धव-देवदेव श्रीकृष्ण के लिए क्षुद्र सत्राजित के पास जाकर प्रार्थना करना।

नारद-वह प्रार्थना क्या ?

उद्धव-लोकोत्तर कन्यारत्न एवं चिन्तामणि।

नारद-(मन-मन में) आश्चर्य ? समीक्षा विहीनता ही शिष्ट व्यक्तियों के अभीष्ट आरम्भ में प्रार्थना के रूप में परिणत होती है। (स्पष्ट बोले) क्या वह प्रार्थना ठीक भाव से सफल नहीं हुई है ?

उद्धव-ऐसा ही है, परन्तु वह कष्टजनक हो रही है।

नारद-प्रार्थना स्वीकार न करने पर भी श्रीकृष्ण सत्राजित के लिए निन्दनीय नहीं हो सकते, क्योंकि जो निर्मल हृदय करके प्रसिद्ध है, वह व्यक्ति पृथ्वी में सज्जनों के उपदेश का अनुसरण कर गुणराशिका विस्तार करता रहता है। परन्तु मलिनचित्त वाला व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। मृगयनियों की मुखार्पित मधुराशि के द्वारा वकुलतरु मुकुलित होता है परन्तु वासकतरु नहीं॥४॥

उद्धव-उस सत्राजित ने अच्युत को कन्यारत्न एवं चिन्तामणि रत्न प्रदान न कर अपने भ्राता को एवं मनुष्यों में अपनी ख्याति को विनष्ट किया है॥५॥

नारद-सुना है, मृगया में उसके भ्राता की मृत्यु हुई है।

उद्धव-ऐसा ही है।

नारद-सबके सामने प्रसेन को ढूँढ़ने के लिए श्रीकृष्ण गये हुए हैं।

उद्धव-ऐसा ही है, परन्तु जग के अन्धकार के नाशन-चरित्र वाले सूर्यरूप चाणूरमर्दी श्रीकृष्ण के चरित्र में उसने कलंक आरोपण किया है, इसीलिए खेद प्राप्त

होकर आपसे मंगलकामना कर रहा हूँ।

नारद-अहो ! तुम तो पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि की भक्तिमञ्जरी के भ्रमर स्वरूप हो, भक्तिमान व्यक्ति यदि कौतुकवश किसी विषय का आरम्भ करता है, तो वह कंसारि के आनन्द का हेतु होता है। तब तो तुम्हारी भांति प्रियतम की कथा कहना ही क्या है ? जो भी हो आज महोत्सव का अनुष्ठान करो, क्योंकि अलौकिक चमत्कारिता की आकर उन समस्त वृन्दावन लीलाओं के दर्शन के लिए मनोहर समय उपस्थित हो रहा है।

उद्धव-भगवन् ! जानकर भी आप क्यों मुझको वृथा प्रलुब्ध कर रहे हैं ? क्योंकि किसी शोकलेश के द्वारा देवता का भी हृदय विद्ध होने पर नव वृन्दावनलीला में प्रवृत्ति की सम्भावना कहाँ है ?

नारद-शोकलेश का कारण क्या है ?

उद्धव-कनिष्ठा अर्थात् राधिका में.....(ऐसा अर्द्ध वचन कहकर वाक्स्तम्भ हो जाता है)-

नारद-(हँस कर) यदि नेत्रवान व्यक्ति अपनी अंगुलि में शोभित अंगूठी को न देखकर उसके लिए शोक करता है तो उस विषय में हम क्या कर सकते हैं ?॥६॥

उद्धव-(विस्मय तथा आनन्द पूर्वक) भगवन् ! आपकी बाक्यलता किञ्चित् पुष्पिता होकर मेरे मन मधुप को व्याकुल कर रही है। अतः स्पष्ट कहिए-क्या सत्य ही कनिष्ठा देवी श्रीराधा जीवित है ?

नारद-जीवित है ऐसा क्यों कहते हो ? वह द्वारावती को अलंकृत कर विद्यमान है॥

उद्धव-(रोमाञ्च पूर्वक) किस प्रकार वह यहां आयी ?

नारद-निःसन्तान, परममित्र सत्राजित ने सर्व प्रकार से निष्ठा के साथ सर्वोत्कृष्ट अपत्य कामना कर सूर्य की पूजा की है। सूर्य ने प्रीतिपूर्वक दुरन्त शंखचूड़ की मणि के साथ सत्यभामा नाम से विख्यात श्रीराधा को सत्राजित के लिए प्रदान किया है॥७॥

उस समय सूर्यदेव ने सस्नेह यह भी कहा-इस सुन्दरी कन्या के नारद के आदेशानुसार श्रेष्ठकीर्ति वाले वर के लिए समर्पित होने पर जगत् में तुम्हारा अनुपम यश विस्तार होगा, और वह महान् सुन्दर स्यमन्तकमणि तुमसे उपासित होकर प्रतिदिन निश्चय अष्टभार स्वर्ण प्रदान करेगी॥८॥

उद्धव-सूर्यदेव किस प्रकार इस मणिश्रेष्ठ के अधिकारी हुए ?

नारद-श्रीराधिका जब सूर्यलोक में गयी तब उसने इस मणि को पुष्पाञ्जलि रूप से उन्हें अर्पित किया था।

उद्धव-श्रीराधा का किस प्रकार सूर्यलोक में आरोहण

हुआ ?

नारद-“श्रीकृष्ण को न देखकर आज सायंकाल तुम्हारी सखी श्रीराधिका देहत्याग करेगी। अतः हे पुत्रि ! तुम उस विरहखिन्ना को शीघ्र मेरे पास ले आना”-इस प्रकार पिता सूर्यदेव की आज्ञा पाकर चतुरा कलिन्दनन्दिनी यमुना अति विलापकारिणी श्रीराधा को सूर्यमण्डल में ले गयी ॥६॥

उद्धव-विशाखा का क्या समाचार है ?

नारद-श्रीगोविन्द के साथ सम्बन्ध स्थापन कर अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए सूर्यदेव की इच्छा से धर्मराज की छोटी भगिनी गोकुल में विशाखा नाम से उत्पन्न हुई थी।

उद्धव-सुना है कि यमराज की माता विशाखा की सखी होने के कारण श्रीराधा को अत्यन्त प्रेम करती है।

नारद-ऐसा ही है, सूर्यपुत्री संज्ञा के आवेदन से उसके पिता शिल्पाचार्य विश्वकर्मा ने द्वारकापुरी में नववृन्दावन की रचना की है। संज्ञा ने कहा-हे जगत् निर्माण में पटु पिताजी ! आप श्रीराधामाधव की माधुर्यनदी प्रवाहित के लिए द्वारका में इस प्रकार एक वृन्दावन का निर्माण कीजिए कि जो कलनादशालिनी कालिन्दि की वीरभूमि के द्वारा सुशोभित हो, जो उस प्रकार गोवर्द्धनादि शैलसौन्दर्य से अलंकृत हो, जो समुज्ज्वल भाण्डीरवट से परिवेष्टित हो एवं जो अविकल वृन्दावन की लता-वृक्षावली से परिपूर्ण हो ॥१०॥

उद्धव-विश्वकर्मानन्दिनी इस विषय में क्यों प्रवृत्त हुई ?

नारद-श्रीराधिका की प्रार्थना से।

उद्धव-वह किस प्रकार ?

नारद-श्रीराधा ने संज्ञा से कहा-हाय ! पापाचारी हतविधाता के उद्दाम दुर्विपाकों से मैं वृन्दावन से अत्यन्त दूर आ पड़ी हूँ। जिसने गोपाल-शिरोमणि श्रीकृष्ण की लीलास्थली का दर्शन कर निरन्तर अन्तःकरण में तृप्तिविधान कर सकूँ-तुम ऐसी व्यवस्था करो ॥११॥

उद्धव-(श्रीराधिका को लक्ष्य करके) देवि ! त्रिलोकनयन सूर्यदेव के द्वारा हम सब सौभाग्यवश रक्षित हुए हैं। क्योंकि-नित्यवृद्धि शील हरि-लीलाओं से पूर्ण गाम्भीर्यमयी वृन्दावन भूमि में किसी प्रकार दुःख से वास करने पर भी सुदीर्घ निविड़ आशारूप सेतुबन्ध के द्वारा आपका भविष्य में जीवन धारण करना दुःसाध्य हो गया था ॥१२॥

उद्धव-उसके बाद क्या हुआ ?

नारद-तदनन्तर शनिश्चर की माता छाया धीरे-धीरे कहने लगी-हे नवीन कमलमुखि राधिके ! तुम त्रिलोक-

सुख की साररूपिणी हो, जिनको साधुगण सवित्रमण्डल मध्यवर्ती देवता के रूप में ध्यान करते हैं, वे तुम्हारे दयित यहाँ अवस्थान कर रहे हैं, अतः तुम व्याकुल मत होवो ॥१३॥

उद्धव-विशाखा ने कुछ उत्तर नहीं दिया क्या ?

नारद-क्यों नहीं, उसने हास्य पूर्वक उत्तर दिया कि माते ! मैं इस सम्बन्ध में कहती हूँ सुनि। गोपियों के नन्दनन्दन-निष्ठ भाव की दुरुह पदवी है, उसकी सञ्चरणशील प्रक्रिया को कौन व्यक्ति अवगत करने में समर्थ हो सकता है ? क्योंकि समझने का विषय यह है कि-अपने रूप को गोपन करने के उद्देश्य से कौतुकवश जय परायण श्रीनन्दनन्दन के चतुर्भुज श्रीनारायण-मूर्ति प्रकाश करने पर भी गोपियों का श्रीकृष्ण में प्रेमोल्लास संकुचित हो जाता है ॥१४॥

उद्धव-क्या आपने सत्राजित को उपदेश नहीं दिया ?

नारद-दिया है, कि प्रसेन को सिंह मारकर इस मणीन्द्र का हरण करेगा। बाद में उस प्रवल सिंह का वध कर उसे भल्लूक-नृपति जाम्बवान् ग्रहण करेगा। तदनन्तर उसको पराजित कर श्रीकृष्ण तुम्हारी इस सम्पत्ति का हरण करेंगे, तब तुम दुःख सागर से पार हो जाओगे ॥१५॥

उद्धव-उसके बाद, उसके बाद ?

नारद-उसके बाद उसने कहा है कि-अग्नि से जला हुआ व्यक्ति पुनः तप्त अग्नि के द्वारा जिस प्रकार शान्ति लाभ करता है, उसी प्रकार उन भगवान् के प्रति अपराधी हमारे बही भगवान् ही आश्रयस्थल हैं ॥१६॥

उद्धव-उसके बाद भगवान् ने क्या कहा ?

नारद-हे कुटिलचित्त ! जब तक प्रतियोद्धा रूप हस्तिशावक के लिए सिंह रूप शिव प्रमुख देवतागण के मस्तक पर आज्ञा चलाने वाले वे विभु श्रीकृष्ण उपस्थित नहीं होते, तब तक तुम शीघ्र ही आह्लाद के साथ चिर मनः पीड़िता उस कुलनन्दिनी को उनके अन्तःपुर में रक्खो ॥१७॥

(तदनन्तर सत्राजित् ने अन्तःपुर में श्रीराधिका को प्रवेश कराने के लिए जननी को नियुक्त किया है)

उद्धव-(आनन्द पूर्वक) प्रभो ! आप करुणा सागर हैं, इस महारसायन रूप सम्वाद के द्वारा आपने वायुरोगक्रान्त मेरी तृप्तिविधान की है।

नारद-हाय ! गुरुतर शोकशूल से आक्रान्ता गोकुल-वासिनी पौर्णमासी इस संवाद महारसायन का आस्वादन न कर सकी।

उद्धव-उनके बिना उस कनिष्ठा देवी श्रीराधा का कौन लालन करेगा ?

नारद-विश्वकर्मा की शिष्या को इस विषय में उपयुक्त समझ रहा हूँ।

उद्धव-वह पुण्यवती कौन है ?

नारद-जो गृहोद्यान में असमय के पुष्पों की रचना में सुदक्षा है, जो वृक्षों के आयुर्वेदतन्त्र में निपुणमति वाली है, और जो स्थावरों के भाव विज्ञान में समर्था है वह सुप्रसिद्धा नववृन्दा वर्तमान द्वारका में निवास कर रही है॥१८॥

उद्धव-क्या यह वनदेवी राधा-तत्त्व को जानती है ?

नारद-हां जानती है, क्योंकि उसका यथार्थ नाम नववृन्दा है। वह सूर्यपत्नी संज्ञा के आदेश से अनुगृहीता हुई है।

उद्धव-वह आदेश कैसा है ?

नारद-लक्ष्मी-दुर्लभ विचित्र केलि-कलिका के स्थलरूप वृन्दावन में विहरणशील कंसारि श्रीकृष्ण की जो समस्त प्रेयसी गोपवालाएँ वहां विहार करती थीं, उनमें श्रीराधा सर्वश्रेष्ठा है, जो वर्तमान पृथ्वी में द्वारका नगरी में मौजूद है। अतः हे देवि ! तुम अब उसकी सर्व प्रकार से सेवा अंगीकार करो॥१९॥

उद्धव-(अश्रुपूर्ण नेत्रों से) भगवन् ! उन गोप-किशोरिकाओं की कथा स्मरण कर अन्तःकरण सन्तप्त हो रहा है।

नारद-दुःख मत करो, क्योंकि-श्रीकृष्ण विरह से उनकी अर्थात् सोलह हजार एक सौ गोपकिशोरिकाओं की अनिर्वचनीय दशा को देखकर कामाख्यादेवी ने नरकासुर के द्वारा इनका हरण किया है। अब वे धूपादि आराधना से तुष्ट कामाख्यादेवी के द्वारा मधुरवाक्य से आश्वस्त होकर मणिपर्वत की कन्दराओं में अवस्थित हैं॥

उद्धव-(आनन्द से) भगवन् ! देखो, देखो, सत्राजित् की माता वस्त्रों से ढके दोला में बैठकर अन्तःपुर की कक्षा में प्रवेश कर रही है।

(ऐसा कहकर दोनों प्रस्थान करते हैं)

(गर्भाक संलग्न दृश्य आरम्भ होता है)

तदनन्तर सत्राजित् की माता का अनुसरण कर श्रीराधिका प्रवेश करती हैं।

श्रीराधा-(व्यथित हृदय से आकाश की ओर दृष्टि करके) इस विचित्र धरातल में कितनी कन्याओं ने जन्म ग्रहण किया है, परन्तु मेरी भांति कठोरांगी पृथ्वी में कोई नहीं है। क्योंकि-श्रीमुकुन्द का परित्याग कर मैं काल यापन करने में समर्थ हो रही हूँ, हाय ! हाय ! मेरी प्रत्याशा को धिक्कार है, प्राण एवं बुद्धि को धिक्कार है॥२०॥

(जाते-जाते लौटकर) आर्ये ! मुझको अन्तःपुर क्यों ले जा रही हो ?

वृद्धा-नातिनि ! महा तपोनिधि देवर्षि नारदजी के आदेश से ले जा रहा हूँ।

श्रीराधा-(मन-मन में) वह तो भगवती पौर्णमासी के आचार्य हैं। मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहशील हैं ऐसा सुना है। इसीलिए भगवान् सूर्य ने पिता सत्राजित् को उन देवर्षि की आज्ञा को पालन करने के लिए कहा है।

वृद्धा-नातिनि ! आओ, देवी रुक्मिणी (चन्द्रावली) के हाथ में तुमको समर्पित करती हूँ।

(तदनन्तर सखियों के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है।)

चन्द्रावली-सखि माधवि ! आर्यपुत्र स्यमन्तक-मणि के अनुसन्धान में गये हैं, परन्तु इतना विलम्ब हो रहा है ?

माधवी-राजनन्दिनि ! वहां और कोई कार्य आ गया होगा।

श्रीराधा-(मन-मन में) सूर्यदेव ने कहा था वत्से ! जब तक श्रीमाधव तुम्हारे मणिबन्ध में स्यमन्तकमणि नहीं बांधते हैं, तब तक तुम अपने नाम को अर्थात् राधिका इसनाम को गोपन रखना॥

चन्द्रावली-(देखकर) सखि ! अपूर्व रूपवती लक्ष्मी के साथ यहा वृद्धा कौन आ रही है ?

श्रीराधा-(चन्द्रावली को देखकर मन में) ठीक, यह राजेन्द्रमहिषी मनोहर माधुर्यराशि से पूर्ण होकर मानो ब्रजकिशोरी का सौरभ धारण कर रही है।

वृद्धा-(समीप जाकर) देवि रुक्मिणि ! स्यमन्तक व्यापार में मेरा पुत्र सत्राजित् राजेन्द्र के निकट अपराधी हो गया है। अब वह अपनी कन्या इस सत्यभामा को राजेन्द्र के प्रति उपहार रूप में दे रहा है। अतः इसको निज प्रियसखी जानकर तदुपयुक्त स्नेहमाधुरी एवं सौभाग्य की अधिकारिणी कीजिए।

श्रीराधा-(मन में) वृद्धा को अपना यथेच्छ प्रलाप करने दो, मैं तो केवल सूर्यदेव की आज्ञा से यहां प्रविष्ट हो रही हूँ।

चन्द्रावली-आर्ये ! मैं धन्य हो-गई जो इस प्रकार की सखी आकर उपस्थित हुई है आप अपने घर जाइये। मैं निश्चय सत्यभामा का प्रतिपालन करूँगा।

वृद्धा-आपकी जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती है)

चन्द्रावली-(माधवी के कान में) सखि माधवि ! देख ! सत्यभामा की यह सौन्दर्यराशि आर्यपुत्र की सत्यसंकल्पता रूप सेतु को भंग करने वाली है, मैं धीरा होने पर भी

आशंका से विचलिता हो रही हूँ।

माधवी-राजनन्दिनि ! सत्य ही कहती हो, यह तुम्हें विभ्रम उत्पादन कर रही है।

चन्द्रावली-सखि ! मेरी प्रशंसा छोड़, मैं कह रही हूँ इस रूप की तुलना नहीं है। (पुनः देखकर) इसकी दृष्टि शान्ति वहन कर रही है, निश्वास-परम्परा अधर-पल्लव को कम्पित कर ताम्रकान्ति का हास कर रही है। गण्डयुगल कम्बुकान्ति की शोभा का अनुकरण कर रहे हैं, इस सुन्दरी की यह अवस्था मेरा विस्मय वर्द्धन कर रही है।

माधवी-निश्चय काशिराजकन्या अम्बा की भांति यह किसी पुरुष में अनुरागवती हो रही है।

चन्द्रावली-श्रीकृष्णविरहिणियों में जो माधुर्य परिवृष्ट होता है, वह तो इस क्षीणांगी के अंगों में विस्तृत रूप से देखा जा रहा है। हे प्रियसखि ! यदि यह पीड़ा प्राकृत होती तो दैन्यावस्था में भी इस प्रकार माधुरी प्रकट न करती। अतः आओ, इसकी चित्तवृत्ति की परीक्षा करें।

(निकट जाकर) सखि ! सत्यभामे ! तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह संचार हो रहा है यह मैं शपथ खाकर कह रही हूँ।

श्रीराधा-(मन में) मिथ्या नहीं है, क्योंकि मेरा चित्त भी ऐसा हो रहा है। (स्पष्ट) देवि ! मैं धन्य हुई।

चन्द्रावली-तुमको दुःखिता क्यों देख रही हूँ ?

श्रीराधा-देवि ! पिताजी ने यहां हठात् भेजी है, इसलिए मन प्रसन्न नहीं है-

चन्द्रावली-सखि अस्थिर मत हो आर्य्यपुत्र के हाथ में तुमको समर्पित करूँगी।

श्रीराधा-(दैन्य पूर्वक) देवि ! यदि सत्य ही आप मुझे स्नेह करती हो तो पुनः इस प्रकार कभी मत कहना।

(ऐसा कहकर नम्रता के साथ नमस्कार करती है)

चन्द्रावली-सखि ! कहो, यहां वास करने की क्यों इच्छा करती हो ?

श्रीराधा-देवि ! जहां पुरुष का नाम नहीं सुन पाऊँ, वहां रखिये, जिससे मैं इस प्रकार अपने व्रत का समाधान कर सकूँ।

चन्द्रावली-(आनन्द पूर्वक कान-कान में) माधवि ! हमारा जो कर्तव्य था, भाग्यवश यह ऐसी ही प्रार्थना कर रही है। अतः प्रसाद प्रदान के अनन्तर नववृन्दा को यहां लाओ।

माधवी-(मन में) अच्छा, परामर्श कर रही हो क्योंकि नववृन्दावन में राजेन्द्र की प्रवेश सम्भावना नहीं है। अतः जिससे रहस्य प्रकाश न हो, उस प्रकार राजकुमारी की आज्ञा के छल से शपथ कराकर नववृन्दा को लाती हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती है)

श्रीराधा-(मन में) मुझे यह देवी भगिनी-चन्द्रावली की सी प्रतीत हो रही है।

(नववृन्दा के साथ माधवी प्रवेश करती है)

माधवी-देवि ! यह नववृन्दा आ गयी है।

चन्द्रावली-नववृन्दे ! देखो यह मेरी सखी सत्यभामा है।

नववृन्दा-(देखकर खेदपूर्वक मन में) श्रीकृष्ण के निर्माल्य वस्त्र देकर देवी चन्द्रावली ने शपथ की थी। अब पुनः श्रीराधिका को मेरे हाथ क्यों समर्पण कर रही है ?

श्रीराधा-(मन में) यह क्या वही नववृन्दा है-(ऐसा कहकर निकट जाती हैं)

नववृन्दा-(मन में) हा धिक्, क्या कष्ट है ! मैं आज बिना विचार शपथ करके विनष्ट हो रही हूँ।

श्रीराधा-(अश्रुपूर्ण नयन होकर मन में) अहो ! क्या यह वही पीताम्बर है ? (ऐसा कहकर व्याकुलता पूर्वक देखने लगती हैं)

नववृन्दा-(मन में) बहुत समय के बाद उज्ज्वल स्वर्ण की भांति इस पीतवस्त्र में दृष्टि निक्षेप कर श्रीराधा में गुरुतर विकार उपस्थित हो रहा है। अहो ! उसके विशेष यत्न पूर्वक सम्बरण करने में अनुपम वाधा को प्राप्त हो रही है।

चन्द्रावली-(सशंक) नववृन्दे ! सत्या इस पीतवस्त्र को देखकर क्यों विह्वल हो गयी है ? पूछ तो।

नववृन्दा-हे कृशोदरि ! स्वर्णवर्ण इस बसन के प्रति दृष्टिनिक्षेप कर तुम्हारा शरीर क्यों प्रस्फुटित कदम्बपुष्प की भांति पुलकावली धारण कर रहा है ? और क्यों तुम्हारे नयनों से छिन्न स्फटिक माला के समान अश्रुबिन्दु प्रवाहित हो रहे हैं ?

श्रीराधा-(भाव गोपन कर) नववृन्दे ! तुमको अपनी भगिनी की भांति देख रही हूँ, इसीलिए विह्वला हो गई हूँ।

नववृन्दा-(मन में) देवी श्रीराधा के गोपन की गुरुतर चेष्टा एक बार निष्फल होगी। मणिराज कौस्तुभ की किरणमाला श्रीकृष्ण के वक्षस्थल के बिना अन्य कहीं अवस्थान नहीं कर सकती है।

चन्द्रावली-(श्रीराधा का हस्त ग्रहण कर) नववृन्दे ! यह मेरी भगिनी है। इसको तुम्हारे हाथ समर्पित कर रही हूँ।

नववृन्दा-देवि ! अत्यन्त अनुगृहीता हूँ।

चन्द्रावली-भगिनी सत्ये ! तुम अपने प्रार्थित वासन्ती चतुःशाला में नववृन्दा के साथ गमन करो, वहां मेरी पुष्पोपहारिणी बकुला तुम्हारी परिचर्या करेगी।

श्रीराधा-देवि ! मन्दभागिनी इस राधिका को कभी-कभी स्मरण कर लेना।

चन्द्रावली-सखि ! तुम क्या कह रही हो ?

श्रीराधा-(साशंक मन में) हा धिक्कार, बड़ा प्रमाद। (स्पष्ट) देवि ! “मैं आपकी आराधिका” ऐसा कह रही हूँ।

नववृन्दा-(श्रीराधा के साथ भ्रमण करते हुए मन ही मन में) यह माधुर्यपूर्णा सुन्दरी शुद्ध अन्तःपुर में अवस्थान करने पर भी शीघ्र श्रीकृष्ण के हस्तगत होगी। यदि अभिनव मधुगन्ध से पूर्णा नव कमलिनी विकसित होती है तो क्या भ्रमर को कोई सम्वाद देता है ? अर्थात् भ्रमर स्वयं वहाँ आ जाता है। (ऐसा कहकर श्रीराधा के साथ प्रस्थान करती है)।

माधवी-राजकुमारी ! तुम सबकी उसमें शंका ही क्या है ? क्योंकि उस प्रतिज्ञा का स्मरण करा देना होगा।

चन्द्रावली-सखि ! कौन कुलवती रमणी स्वामी की रति को जानकर काठिन्य रख सकती है ?

(पर्दे में) तुम सब राजमार्ग की दोनों सीमा में कदलीवृक्षों को सज्जित कर रोपण करो, शीघ्र चवूतराओं को सुगन्धि जल से सींचित कर दो, देवियों के द्वारा पुष्पावलीवृष्टि से सुशोभित होकर मनुष्यों के धैर्य का हरण करते हुए वृष्णिचन्द्र श्रीकृष्ण विश्वजन के नेत्र-पथ में उदय हो रहे हैं।

माधवी-राजनन्दिनि ! भाग्यवश द्वारकानाथ आगमन कर रहे हैं, अतः वेशगृह में प्रवेश करो॥२१॥

(ऐसा कहकर दोनों चली जाती हैं तदनन्तर मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(खेद पूर्वक) अहो ! विद्युत्पूर्णा जो सुन्दरी मेरे अंग में कुंकुमलेप की भांति है, मेरे कण्ठतट में सुगन्धि विस्तारिणी चम्पकमाला के समान है, और मेरे दोनों नेत्रों में अंजन से विलिप्त सुशीतल स्वर्णशलाका तुल्य है, उस राधिका के बिना ये समस्त रात्रियाँ मेरा प्राणनाश कर रही हैं।

मधुमंगल-(श्रीकृष्ण के हाथ में मणि देख कर) प्रियसखा ! राधिका की कण्ठहार यह श्रेष्ठ मणि किस प्रकार सूर्य ने प्राप्त की ?

श्रीकृष्ण-(खेद के साथ) श्रीराधिका पहले गर्गमुनि के वाक्यानुसार नित्यप्रति अत्यन्त नम्र भाव से सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करती थी। ऐसा निश्चय बोध होता है कि उसने किरणावली से परिवृत इस मणिश्रेष्ठ का उसे उपहार दिया है॥२२॥

मधुमंगल-देखो, किरणावली के द्वारा वह किस प्रकार

विलक्षणता को धारण कर रही है ?

श्रीकृष्ण-सखा ! यह मणि घनानन्द स्वरूप है। कभी भी प्राकृत रत्न के साथ तुलना प्राप्त नहीं कर सकती है, (ऐसा कहकर स्यमन्तक मणि को वक्षः में धारण कर अश्रुपूर्ण नयनों से) यह मणि धन्य है, मैं निबिड़ अन्धकार पूर्ण निकुञ्ज में हँसता-हँसता मत्तता से जब श्रीराधा की कंचुलिका को आकर्षित करता था तब मेरे ऐकान्तिक अभिप्राय को जानकर कंचुकी में आच्छादित यह मणि अपनी किरण लहरी का प्रकाश कर उसे लज्जित करने लगती थी॥२३॥

मधुमंगल-प्रिय वयस्य ! मैंने सुना है, तुमने जाम्बवान से यह मणीन्द्र प्राप्त की है ?

श्रीकृष्ण-ऐसा ही है।

मधुमंगल-कैसे प्राप्त किया ?

श्रीकृष्ण-सखा ! वह भल्लूकराज अपने गर्त में प्रतिकूल चेष्टा परायण मुझे देखकर रत्न अपहरण शंका से युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

मधुमंगल-उसके बाद फिर ?

श्रीकृष्ण-तदनन्तर कुछ काल के बाद वह मेरे स्वरूप को अवगत होकर युद्ध से विराम प्राप्त कर आनन्द के साथ कहने लगा-हे प्रभो ! उस भयंकर समुद्र में सेतुबन्ध की कथा को क्या स्मरण कर रहे हैं ? क्या दशानन रावण के मस्तकों को ऊपर फेंक कर कन्दुक क्रीड़ा जो की थी उसका स्मरण कर रहे हैं ? उन लीलाओं का विस्मरण नहीं हुआ है। इसलिए रत्नहरण के छल से इस प्राचीन किंकर का सुख विधान कर रहे हैं॥२४॥

मधुमंगल-तदनन्तर क्या हुआ ?

श्रीकृष्ण-इसके बाद हमें स्वर्ण मन्दिर में रत्नपलंक में बैठाकर वह भल्लूकचक्रवर्ती मणिश्रेष्ठ को लेने के लिए प्रकोष्ठान्तर में प्रवेश करने लगा। मुहूर्तकाल में वहाँ एक वृद्धा अन्तःपुर से आकर कहने लगी-पुत्र ! यदि जाम्बवान् बलपूर्वक उस मणि का आकर्षण करता है तो उसकी कुमारी जाम्बवती का प्राण नहीं रहेगा। और यदि मणिग्रहण नहीं करता है तो आप इष्टदेव के साथ विच्छेद होता है। अतः इस महान् संकट-कर्म में पतित जाम्बवान का आपके बिना और कोई उद्धारक नहीं है।

तदनन्तर मैंने उस वृद्धा से कहा, हे वृद्धे ! उस स्वर्णभार प्रसवकारी मणि के प्रति आसक्ति का कारण धनतृष्णा है। क्या वह जाम्बवती के लिए अधिक गौरव का विषय है ?

धात्री-पुत्र ! नहीं, नहीं। भल्लूकराज जब सूर्य के समान उज्ज्वल इस मणि का स्वयं ग्रहण करने लगा तब

वह कमलनयना जाम्बवती उस रत्न को क्षणकाल न देखकर धैर्यहीन तथा विस्वला हो गई थी ॥२५॥

अभी भी वह कन्या खेद करती हुई लगातार एक घड़ी तक इस मणि को अपने स्तनों के ऊपर स्थापन करती है कभी उसे मुहूर्त्तकाल तक नासिका के ऊपर रखकर बार-बार सूँघती है, कभी वह अश्रुभरे दोनों नेत्र में रखकर निश्वास त्याग करती है। इस प्रकार कम्पितांगी यह जाम्बवती बन्धु की भांति इस स्यमन्तक मणि का आलिंगन करती रहती ॥२६॥

मधुमंगल-उसके बाद, फिर क्या हुआ ?

श्रीकृष्ण-तदनन्तर कौतुक-मना होकर मैंने उससे कहा, धात्रिके ! इस रत्न में उसकी इस प्रकार अनुरक्ति क्यों है ?

धात्री-पुत्र ! कौन जानने की चेष्टा कर सकता है ? कि “इस रत्न में उसकी इतनी आसक्ति क्यों है ?” यह जिज्ञासा करने पर वह भ्रूभंगि के साथ वस्त्रांचल में मुखचन्द्र को ढककर दीर्घ निश्वास का त्यागकर अश्रुप्रवाहित करती है ॥२७॥

श्रीकृष्ण-तदनन्तर मैंने पूछा, धात्रि ! वह किस प्रकार कहती हुई कालयापन कर रही है ?

धात्री-वह निर्मलांगी अत्यन्त कान्तियुक्त ‘राधा-माधव’ नामक युगलमूर्ति का निर्माण कर उन दोनों के प्रति प्रणयगर्भ आलाप, मिलन एवं कौतुक के द्वारा क्रीड़ा करती-करती अश्रुपूर्ण नयनों से दिन यापन कर रही है ॥२८॥

हे सखा ! अनन्तर धात्री का वचन सुनकर मेरा चित्त अत्यन्त गम्भीर विस्मय से आक्रान्त हो गया। मैंने मधुरभाव से उसे कहा, धात्रिके ! वह प्रतिमा-युगल किस प्रकार की है ? उसे देखने के लिए मैं कौतूहलाक्रान्त हो रहा हूँ।

धात्री-पुत्र ! जगन्मण्डल के सर्वश्रेष्ठ दोनों स्त्री पुरुषों की वह युगल-प्रतिमा है। उनमें से तुमको देखकर तुम्हारे समान आकार वाला हास्यबदन पुरुष मेरे स्मरण पथ में उपस्थित हो रहा है। और उस नारी प्रतिमा को देखने पर जिसकी मन में स्फूर्ति होती है न जाने वह धन्या सुन्दरी किस पुण्यमय जनपद में अवस्थान करती है ? ॥२९॥

मधुमंगल-उसके बाद फिर ?

श्रीकृष्ण-उसके बाद वह धात्री कक्षान्तर में जाकर जाम्बवती के चित्त को उत्साहित कर कहने लगी-हे वत्से ! तुम्हारे इस विग्रहयुगल में से जो श्यामवर्ण पुरुष है, वह कौतूहलवश अन्य शरीर में जंगमभाव धारण कर पलंक में विराजमान है। अतः तुम उस अपूर्व मूर्ति का

साक्षात् दर्शन करो।

(ऐसा सुनकर) धात्री के हाथ में राधिका की मणि-विनिर्मित प्रतिमा को रखकर वह कुमारी उस समय वृक्षान्तराल में अपने को गोपन कर मुझको देखकर औत्सुक्य भाव से कांपने लगी एवं लज्जा रहित होकर विवर्ण शरीर से विगलितांग होकर आतंक युक्त होकर मेरे चरण प्रान्त में गिर गई ॥३०॥

(ऐसा कहकर श्रीकृष्ण विस्वल होने लगे)

मधुमंगल-(सम्भ्रम पूर्वक हाथ बढ़ाकर) प्रियवयस्य ! मेरा हाथ पकड़ो।

श्रीकृष्ण-(गद्गद स्वर में) हठात् उस वृक्ष के अन्तराल में अवस्थित जाम्बवती को ललिता जानकर, स्वभाव से मधुर श्रीराधा की आकृति का दर्शन कर, और मणि को शंखचूड़ के शिरोभूषण रूप में जानकर अति सम्भ्रम के साथ मैं बार-बार घूर्णायमान हो गया ॥३१॥

मधुमंगल-आश्चर्य ! प्रियवयस्य ! यह तो काञ्चि (गाजर के अचार) प्रार्थी को शिखरिणी (अति स्वादिष्ट ठंडाई) का लाभ हुआ है। (ऐसा कहकर उच्च स्वर से)-प्रभो ! इस महान् सुख के उदय से मेरा हृदय-पद्म अत्यन्त आनन्द से खिल उठा है, अतः मुझे सहारा दो।

श्रीकृष्ण-सखा ! कुछ समय धैर्य धारण कर सुनो।

मधुमंगल-(धैर्यधारण कर) उसके बाद, फिर क्या हुआ ?

श्रीकृष्ण-शान्ति प्रद कोमलालाप-माधुरी के द्वारा सान्त्वना प्राप्त कर भी वह सुकण्ठी मुक्तकण्ठ से क्रन्दन करती हुई ‘कहने लगी-कब मैं पुनः कालिन्दी-जात कमल-गन्ध से सुरभित कुञ्ज के आंगन में वसन्तकालीन नव परिमल विस्तार-कारी केश-कलाप युक्त आपकी गोद में निद्रासुख में निमीलित-नयना श्रीराधिका की नवीन पत्रावली के द्वारा व्यजन-सेवा करूँगी ? ॥३२॥

तदनन्तर प्रबल उत्कण्ठाकुल होकर मैं बहुकाल तक हृदय व्यथा का प्रकाश करता हुआ कहने लगा-हाय ललिते ! मेरे निकट तक मिथ्यानिद्रा में निमीलित नेत्र होने पर वह अब भी मुहूर्त्तकाल तक मेरे वदन-बिम्ब का चुम्बन करती है ! हे सखि ! ऐसा कहकर तुम्हारे सामने लज्जित करने पर उसका मधुर भ्रुकुटी युक्त वदन शोभित होता था मैं उसका स्मरण कर रहा हूँ ॥३३॥

मधुमंगल-उसके बाद फिर ?

श्रीकृष्ण-तदनन्तर समस्त वृत्तान्त सुनकर जाम्बवान् आनन्दित होकर वहां आकर कहने लगा। सुग्रीव के साथ मेरा प्रणय है, अतः कमलबन्धु सूर्यदेव हमारे प्रति बार-बार कृपा करते हैं। इसलिए उनके आदेश से पर्वत-शिखर से गिरने के समय इस कन्या को मैंने धारण किया था ॥३४॥

अनन्तर स्वर्णालंकार भूषित जाम्बवती को उस भल्लूक शिरोमणि ने इस रत्नश्रेष्ठ स्यमन्तक के सहित मेरे हाथ में समर्पित कर दिया मैंने भी विदर्भराज के निकट जो प्रतिज्ञा है, उसकी पालन-मर्यादा के भंग-भय से इस सुन्दरी को रैवत पर्वत की कन्दरा में रखा है। अतः इस गोपनीय कथारत्न को तुम अपने चित्तकोष में यत्न से रक्षा करना। जिससे कोई वाद-विवाद का कारण उपस्थित न हो।

मधुमंगल-ऐसा ही होगा, इसे कोई नहीं जान सकेगा।

श्रीकृष्ण-(व्याकुलता के साथ) समस्त सुहृद्गण के अभिलाषणीय कार्य में विलम्बित चित्त होने के कारण श्रीराधा की विरहाग्नि की शिखाशीतल होकर मृदु हो गई थी, वह अग्नि अब ललिता के गाढ़ स्नेह-प्रसंग से घनीभूत होकर बलात् पुनः प्रज्वलित हो उठी है॥३५॥

(ऐसा कह विरहव्यथा प्रकाश कर कहने लगे)

-हे सखा ! ललाट में कुंकुम के द्वारा अग्निमय नेत्र की रचना कर दो, सर्पकान्ति वाली मुक्तामाला के द्वारा मेरे वक्षः को विभूषित करो, और कण्ठ को छोड़कर सर्वांग कपूर के द्वारा धवल बनादो। तब कामदेव महादेवजी के रूप को देखकर भय से मुझे यन्त्रणा नहीं देगा॥३६॥

मधुमंगल-सत्य है यह सन्ताप गुरुतर है, इसका प्रतीकार नहीं स्थिर कर पा रहा हूँ॥

श्रीकृष्ण-सखा ! प्रियतमा की विरह-कथा के साक्षि रूप वृन्दावन की कुञ्जों के दर्शन के बिना अन्य कोई श्रेष्ठ प्रतीकार नहीं है। अतः तुम इस मणीन्द्र को सत्राजित् के लिए प्रदान करो, मैं भी अन्तःपुर के लिए जा रहा हूँ॥३७॥

(सब प्रस्थान करते हैं)

इस प्रकार ललितोपलब्धि-नामक षष्ठ अंक समाप्त हुआ॥६॥

सातवां अंक

(तदनन्तर बकुला के द्वारा आराधित होते हुए राधा प्रवेश करती है)

श्रीराधा-श्रीकृष्ण के गात्र-गन्ध के द्वारा जो दिशा सुवासित है, वह दिशा मेरे लिए अति दूरवर्ती है। उनके विरह दुःख में अति अल्प परिमित काल मेरे लिए महाकल्प की भांति प्रतीत हो रहा है। प्राणरूप अग्नि आशा-रूप घृतपात्र में रह कर मुझको बलपूर्वक जला रही है। हाय ! मैं क्या करूँ और किसकी शरण लूँ !॥१॥

बकुला-सखि सत्ये ! नववृन्दा ने स्नेहवश तुम्हारा रहस्य वर्णन किया है, तो भी कुछ निवेदन करती हूँ।

श्रीराधा-इच्छा पूर्वक निवेदन करो।

बकुला-हम सबके जो राजेन्द्र सुन्दर-शिरोमणि हैं, वे त्रिलोक का शासन करते हैं। यदि आज्ञा करो तो देवी रुक्मिणी की प्रतिकूला होकर उनके निकट तुम्हारे वृत्तान्त का निवेदन करूँ।

श्रीराधा-द्वारकानाथ सौन्दर्य में विभूषित होकर त्रिलोक का शासन करें उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। क्यों शापाग्नि को प्रज्वलित कर रही हो ? शान्त हो, तुम सब स्पष्ट रूप से कोटि-कोटि युक्ति पूर्ण बचनों के द्वारा भी बलात् ब्रजराजनन्दन के पादपद्म से मुझे आकर्षण नहीं

कर सकोगी॥२॥

बकुला-सखि ! क्या हित है नववृन्दा से पूछो।

श्रीराधा-नववृन्दा कहां गई है ?

बकुला-देवी रुक्मिणी के आह्वान से वह अन्तःपुर में गई है।

श्रीराधा-हाय ! हतभाग्यों के द्वारा मैं पराधीन हो गई हूँ।

(नववृन्दा का प्रवेश)

नववृन्दा-सखि सत्ये ! विषाद मत करो। देखो देखो इस माधवी ने चरणों में गिरकर बदरी (वेर) का अवलम्बन करके भी कान्त (मनोहर) रसाल-तरु को फिर प्राप्त किया है। साध्वी नारी प्राणेश्वर के संगम विषय में आविष्ट चित्ता होकर पराधीनता रूपी दुःख का अनुभव नहीं कर पाती है॥३॥

श्रीराधा-तुम्हारे हाथ में यह नेपथ्य सामग्री क्या है ?

नववृन्दा-शचिदेवी ने रुक्मिणी के लिए जो माल्य-वस्त्रादि उपहार दिया है, उन्होंने उसका विभाजन कर सखियों को प्रदान किया है, यथा भाग आपके लिए भी भेजा है।

श्रीराधा-दुःखाग्नि में ईधन स्वरूप इस प्रसाधन का क्या प्रयोजन है ?

नववृन्दा-सखि ! यह सूर्यपूजा के लिए उपयुक्त होगा।

श्रीराधा-सखि ! सूर्यदेव ने कहा है कि-वत्से ! समुद्रप्रान्त में अवस्थित द्वारकापुरी के भीतर निर्मित नव-वृन्दावन में प्रवेश कर तुम अपने प्राणनाथ के साथ विहार करो।

नववृन्दा-श्रेष्ठ देवताओं के वचन कभी खाली नहीं जाते हैं।

श्रीराधा-सखि ! श्रीकृष्ण मथुरापुरी में विराजमान हैं और मैं द्वारकापुरी में अवरुद्ध होकर निवास कर रही हूँ। इसीलिए प्रियतम का संग मेरे लिए असम्भव बोध हो रहा है ॥५॥

नववृन्दा-सखि ! विलाप मत करो, समय क्रम की गतियां दुरूह होती हैं। शरत् ऋतु के प्रारम्भ में ही अकस्मात् खञ्जन पक्षिण सरोवर तट पर आकर क्रीड़ा करते हैं ॥५॥

श्रीराधा-बिना प्रयत्न खञ्जन क्रीड़ा नहीं करता है, उसी प्रकार अस्वाधीन प्रदेश में महापुरुष रमण नहीं करते हैं।

नववृन्दा-(हँसकर) अरि भ्रान्ते ! यहां ब्रजेन्द्र की अस्वाधीनता को किस प्रकार तुमने स्थिर किया है ?

श्रीराधा-अरि ! राजेन्द्र के क्रीड़ावन की बन्दरि ! चुप रहो।

नववृन्दा-सरले ! श्रीब्रजेन्द्र को ही राजेन्द्र जानो।

श्रीराधा-क्या यह सत्य है ?

नववृन्दा-(मन-मन में) हाय ! यथेच्छा क्रम से हठात् प्रतिज्ञा भूल गई ! (प्रकाश्य में) केवल 'राजेन्द्र' ऐसा नहीं, उन ब्रजेन्द्र को 'रामचन्द्र' और उपेन्द्र भी कहते हैं।

बकुला- सखि ! इसीलिए कहती हूँ कि-अस्वाधीनता का त्याग कर राजेन्द्र को आनन्दित करो।

श्रीराधा-सखि ! जिनके केश-कलाप में मयूरपुच्छ निर्मित मुकुट शोभा पा रहा है, जिनके कण्ठ में स्थूल गुञ्जावली से विरचित हार दोलायमान है और जिनके वदन में वेणु विराजमान है, श्रीहरि के उस प्रकार के रूप बिना मेरा चित्त विश्वोत्तर किसी अन्य रूप को अंगीकार नहीं करता ॥६॥

बकुला-तुम अति सरलबुद्धि हो, क्योंकि उन कठोर चित्त में तुम फिर अनुरक्ता हो रही हो।

श्रीराधा-(सम्भ्रम के साथ) मुग्धे ! ऐसा मत कहो। वे श्यामसुन्दर स्वच्छन्द हैं। वे असीम उदासीनता के द्वारा परिपूर्ण हृदय होकर इच्छा पूर्वक सहस्र वत्सर तक भी यदि काठिन्य अवलम्बन करते हैं तो भी, हे सखि ! हमारा चित्त प्राणों से भी प्रियतम श्रीकृष्ण को जन्म-जन्म क्षणकाल के लिए भी भूलकर प्रणयदास्य का परित्याग नहीं करेगा ॥७॥

नववृन्दा-बकुले ! यह बड़ी पतिव्रता है, अतः शान्त हो।

श्रीराधा-हे सहचरि ! दीर्घकाल तक पहले जिनकी सेवा की थी यह वह लताश्रेणी है। सम्मुख में यह पूर्वपरिचित कुञ्ज समूह वर्तमान है। यह वही यमुना की तट-भूमि है, जहां पुनः पुनः भ्रमण किया है। परन्तु हाय ! गोकुलपति के बिना यह समस्त अतिशय बाधा दे रहा है ॥८॥

नववृन्दा-बकुले ! इसके तीव्र विरहतापों को देखो। अतः आज कालिन्दी कूल स्थित कदम्बवृक्ष मल में नलिनी-दलों की शय्या रचना करो।

बकुला-प्रियसखी जो कहती हो, ऐसा ही करूँगी। (ऐसा कहकर प्रस्थान)

श्रीराधा-ब्रजवासियों की एवं निज प्राण से प्रियतमा उन समस्त सखियों की प्राण उच्छेदकारी वियोगजात व्यथा को मैंने सहन किया है। हाय ! सूर्यवचन के प्रति विश्वास रखने में आग्रहकारिणी मुझको अब दुराशावली कितना ही क्लेश सहन करा रही है। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती है) ॥९॥

नववृन्दा-तुम्हारी प्रियसखी विशाखा कहां है ?

श्रीराधा-अब वह मंगलमयी विशाखा पिता से पूछकर पृथ्वी पर आयी है। अब केवल ललिता ही मुझे दुःख दे रही है।

(ऐसा कहकर रोने लगती है)

नववृन्दा-ललिता की दशा का सम्वाद तुमने कहां से सुना है ?

श्रीराधा-स्वर्गारोहण के समय खेचरण से।

नववृन्दा-क्या तुमने आज निशीथ में स्वप्न योग में ललिता को सम्बोधन कर कुछ कहा था ?

श्रीराधा-वह कैसे ?

नववृन्दा-"हे ललिते ! शफल्क-तनय अक्रूर की हृदयस्थ आशा लता फलवती हुई है। हा धिक्कार ! देख मुरारि रथारोहण को अंगीकार कर रहे हैं"-इस प्रकार हे सुन्दरि ! स्वप्नावस्था में उच्चारित तुम्हारे इस करुण विलाप को श्रवण कर मानो रात्रि तुषार-पतन के छल से क्रन्दन करने लगी है ॥१०॥

श्रीराधा-(व्यथा के साथ) सखि ! बहुकाल के बाद विविध यत्न से आज स्वप्न में गोविन्द नयनों की आंगण भूमि में उपस्थित हुए। परन्तु हाय ! उस समय क्यों वह निष्ठुर राजपुरुष रथ लेकर शीघ्र उपस्थित हुआ ? ॥११॥

(बकुला प्रवेश करती है)

नववृन्दा-सखि ! शय्या की रचना की है, अतः उठो।

(ऐसा कहकर तीनों भ्रमण करती हैं)

नववृन्दा-(सम्भ्रम के साथ) हे प्रियसखि ! किसी प्रकार तुम उधर मत जाओ, निवृत्त हो, तुम्हारे सम्मुख अशोक वृक्ष वर्तमान है। यदि तुम्हारे चरण-स्पर्श से वह हठात् कुसुमित हो उठा, तब तो हताश भ्रमरों की कलकलध्वनि तुम्हारे लिए वज्र के समान हो उठेगी॥१२॥

श्रीराधा-(निवृत्त होकर लज्जा के साथ) सखि ! यदि कष्टदायिनी आशामयी यह शृङ्खला विरोधिनी न होती तो कंसारि के दर्शन-मंगल से वंचित इस अधन्य हतभाग्यमय जीवन में प्रेम धारणकारिणी मैं जीवित नहीं रहती अर्थात् निश्चय सुखपूर्वक प्राणत्याग कर लेती॥१३॥

बकुला-यह सम्मुख शय्या है।

श्रीराधा-(शय्या में शयन कर मन-मन में) इस वृन्दावन में जीवन धारण दुःसाध्य है। अतः क्या उपाय करूँ ? (प्रकाश्य में) नववृन्दे ! नित्यकर्म के बिना दुःख पा रही हूँ।

नववृन्दा-वह नित्यकर्म कैसा है ?

श्रीराधा-मुग्धे ! जिसका मुख वेणुक्रीड़ा से सुशोभित है, जिसका चंचल नयन-अपाङ्ग-भंगिमा से वक्र है, जिसके मस्तक पर मयूरपुच्छ की चूड़ा है, जिसका शरीर त्रिभंगी है और जो कैशोरवयस में अवस्थित है, उस जलधर तुल्य श्यामकान्ति वाले की देवता हम सबने देवर्षि नारदजी के उपदेशानुसार पिता के घर आराधना की है॥१४॥

नववृन्दा-(मन में) मैंने जान लिया कि इसको श्रीकृष्ण दर्शन के लिए व्यग्रता है। अतः आज वृन्दावन को भूषित करने के लिए महेन्द्रशिल्पी विश्वकर्मा ने जो इन्द्रनीलमणिमयी श्रीकृष्णमूर्ति का निर्माण किया है, उसका इसको दर्शन कराती हूँ। (प्रकाश्य से) सखि ! तुम्हारे इष्टदेव का आविर्भाव कराने के लिए मैं जा रही हूँ।

(ऐसा कहकर चली जाती है)

श्रीराधा-(सम्मुख देखकर) पिञ्छचूड़ श्रीकृष्ण ने रात्रिकाल में रास से अन्तर्धान होकर जिसके पुष्पों से मेरे केश में चूड़ा की रचना की थी, वह नवकर्णिकार वृक्ष यमुना कूल पर अंकुरित होकर बार-बार मुझको दग्ध कर रहा है॥१५॥

(नववृन्दा प्रवेश करती है)

नववृन्दा-सखि ! शीघ्र आकर देवता को देखो।

श्रीराधा-नववृन्दे ! कुछ सेवोपयोगी उपहार का संग्रह करो।

नववृन्दा-बकुले ! देवी-प्रदत्त दिव्यमाल्य और वस्त्र को वासन्तीगृह से लाओ।

(बकुला चली जाती है)

नववृन्दा-(मुसकरा कर) सखि राधे ! जो पुष्पावलि, गन्ध, धूप, उपहार प्रभृतियों से दामोदर की सेवा करते हैं और स्तवन कर उत्कृष्ट भाव से प्रणाम करते हैं वे सब अन्य प्रकार के सेवक जन हैं। परन्तु हे कोकिलकण्ठ ! तुम्हारी भांति गोकुल-सुन्दरियों के पक्ष में श्रीकृष्ण की वक्रदृष्टि कला-कौशलमयी आलिंगनरूपिणी सेवा प्रशस्ता है। (ऐसा कहकर भ्रमण पूर्वक) देखो ! तुम्हारे अभीष्ट देव समुत्कण्ठित होकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं॥१६॥

श्रीराधा-(दूर से देखकर उत्कण्ठा के साथ) हे सहचरि ! मैंने इस शरीर को धारण करने में बार-बार प्रचुर गुरुतर क्लेश का अनुभव किया है, अब वह क्लेश समूह सफल हो रहा है। अहो ! गोपीकुल-कुमुदिनीगण के बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र की श्याम से भी श्याम कान्तियां हमारे सम्मुख स्फुरित होने लगी हैं॥१७॥

(ऐसा कहकर भ्रमण करती वेदी के निकट जाकर गद्गद स्वर से) हे चन्द्रमुखि ! हाय ! जिसकी दर्शन-आशा से यह दन्ध-शरीर धारण कर मर्म-विदीर्ण करने वाली अतिशय पीड़ा रूप अति वृष्टि को मैंने सहन किया है, यमुनातटवर्ती कुञ्जकुटी में क्रीड़ाभिसारशील उस प्राणबन्धु को मैंने पुनः प्राप्त किया॥१८॥

(ऐसा कहकर प्रेमावेश से साक्षात् श्रीकृष्ण की भांति श्रीमूर्ति के प्रति सम्भाषण करती हुई)-पहले आपने प्रेमवश इस प्रकार कोमलता का प्रकाश किया, जिससे आपकी चेष्टाओं को देखकर 'आप मेरे ही हो' ऐसा मैंने जान लिया था। परन्तु हाय ! अब आपकी कठोर चेष्टाओं को देखकर मेरा वह अभिमान असम्भव हो गया है॥१९॥

नववृन्दा-(मन में) हाय ! अनुराग-सागर की कैसी उच्च तरंगावली है ?

श्रीराधा-(कान में धीरे-धीरे) सखि ! यह धूर्तशिरोमणि परिहास-कला भरे स्निग्ध मधुर वचन नहीं बोल रहा है और आलिंगन के लिए व्यग्र होकर बाहुद्वय का विस्तार भी नहीं कर रहा है, परन्तु केवल लीलाभंगिमायुक्त मनोहर उल्लासकारी मृदुहास्यलेश के साथ कुटिलदृष्टि से मुझे सादर देख रहा है॥२०॥

नववृन्दा-सखि ! धूर्त नागरशिरोमणि की यह निगूढ़ परिहास चातुरी होती है। अतः तुम उसको कुटिल-कटाक्ष के द्वारा सम्यक् रूप से तर्जन कर वक्रोक्ति के द्वारा तिरस्कार करो।

श्रीराधा-(वक्रभाव से निरीक्षण कर) ऐसा लगता है कि-ब्रजसुहृद कौस्तुभमणि के बहुकाल संसर्ग से कोमलता प्रतिद्वन्दी कठोरता आपके हृदय में संक्रान्त हो रही है।

नहीं तो आप इस प्रकार कष्ट समूह में निपतित मेरे प्रति समर्थ होकर भी क्यों इस प्रकार वञ्चना कर रहे हो ? (ऐसा कहकर कान-कान में) सखि ! अन्याय है, अन्याय है, क्योंकि वनमाली नीलोत्पल की भांति कोमल होकर भी इस कठिन बंशि का चुम्बन कर रहे हैं। अतः इस वंशिका का इनसे आकर्षण कर लूँ॥२१॥

नववृन्दा-(मन में) वंशिका-कर्षण निश्चय कल्याणमय नहीं होगा। अतः इसको छल से अन्य उपदेश देती हूँ।-(प्रकाश्य में परिहास पूर्वक) हे मुग्धे ! जिसको नील-मणिमय बोलना उचित था, तुम तो उसमें नीलोत्पल की कोमलता अर्पण कर रही हो। हे पद्मानने ! यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं है, तो इसके सुविस्तृत वक्षः देश में अपने बक्षोज घर्षण करो॥२२॥

श्रीराधा-(वक्षः में हस्तार्पण कर व्यथा के साथ) अहो ! यह तो सत्य ही नीलमणि की प्रतिमा है। (विचार कर) मुझे धिक्कार है, गाढ़ उत्कण्ठा वश समस्त भूल कर प्रतिमा को साक्षात् माधव मान रही हूँ॥

(बकुला प्रवेश करती है)

बकुला-लो, इस माल्य वस्त्र एवं चन्दनादि विलेपन को ग्रहण करो।

श्रीराधा-(ग्रहण करती है, प्रतिमा को भूषित करने की इच्छा से)

नववृन्दा-सखि ! तुम समय पर प्रणयोजन के निकट गमन कर अत्यन्त मधुर शोभा को धारण कर रही हो। कोकिल में संग बिना वसन्त की शोभा सम्पूर्ण रूप से नहीं प्रकाश पाती है॥२३॥

(माधवी प्रवेश करती है)

माधवी-(राजकन्या ने मुझे सत्यभामा का सम्बाद जानने के लिए भेजा है। अतः सम्मुख प्रस्फुरित इस नववृन्दा वन में प्रवेश करूँ-ऐसा कहकर भ्रमण करने लगीं) हाय ! निश्चय स्वामी ने वृन्दावन में प्रवेश किया है। क्योंकि यह शंखचक्रादि से अंकित पद-चिह्न दीख रहे हैं। अतः प्रस्तुत विषय का समापन कर राजकुमारी को लाती हूँ॥

श्रीराधा-अश्रु एवं कम्प के साथ श्रीकृष्णमूर्ति को अलंकृत करती है।

माधवी-यह पड़ी हुई नीलोत्पलमाला देख रही हूँ। (हाथ में माला लेकर उच्चस्वर से) सखि बकुले ! तुम कहां हो ?

नववृन्दा-(सम्भ्रम के साथ) सत्ये ! यह माधवी निकट आ रही है। अतः यहां से शीघ्र चले जाना उचित है।

श्रीराधा-मेरी दर्शनतृष्णा पूर्ति नहीं हुई है। अतः शीघ्र ही यहां लौट कर आऊंगी। (तीनों परिक्रमण करने लगती

हैं)

माधवी-(देखकर) यह क्या, सत्या यहां है ? (निकट जाकर) सखि ! माधवी पुष्प चुनने के लिए आई हूँ।

श्रीराधा-(सौरभ आघ्राण कर मन में) अकस्मात् कहां से यह सौरभ आकर मेरे चित्त को विमोहित कर रहा है ? (ऐसा कहकर माधवी के हाथ में माल्य देख कर नववृन्दा के कान-कान में कहती है)-नीलोत्पल-विरचित माल्य से गोपांगना कुल के बन्धु श्रीकृष्ण की सर्वविजयी गन्ध विस्तृत हो रही है। नहीं तो मेरे बाहर या भीतर उग्र क्षोभ अन्य गन्ध से किस प्रकार हो सकता है ?॥२४॥

माधवी-(विस्मृत होकर) सखि ! नीलोत्पलमाला की सुगन्धी का आघ्राण कर तुम्हारा अंग क्यों कम्प-सम्पत्ति को प्राप्त कर रहा है। तुम्हारा अंग क्षीणता का परित्याग कर प्रफुल्ल होकर रोमांचों से परिपूर्ण हो रहा है ?॥२५॥

श्रीराधा-(मन में) इस विषय का सम्बरण करना उचित है। (प्रकाश में) माधवि ! इन्दीवरमाला को देखकर कालियदह में सर्पावलि का स्मरण कर भीत हो रही हूँ।

नववृन्दा-(मन में) उपयुक्त मीमांसा की गई है।

श्रीराधा-(मन में) निश्चय यह उस प्रतिमा की निर्माल्यमाला है।

माधवी-सखि सत्ये ! माधवी-मण्डप में जाकर पुष्पचयन करूंगी।

(सब इधर-उधर चली जाती हैं तदनन्तर मधुमंगल के साथ श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(उद्वेग के साथ) क्षणकाल में बनमाला चूर्णित होकर गिरी जाती है, चन्दनलेप शुष्क होकर धूलिराशि की भांति गिरता जा रहा है, और सूर्यकान्त के समान यह रुचिर कौस्तुभमणि अपनी प्रसरणशील किरणावली के द्वारा अंग सन्ताप बढ़ा रही है॥२६॥

(ऐसा कहकर बाएं ओर देखकर)

प्रियवयस्य ! कितनी दूर है वह वृन्दाटवी ?

मधुमंगल-(राधापक्ष में व्याख्या)-जिसकी कान्ति प्रस्फुटित चम्पकावली की भांति आनन्ददायिनी है, जो मदमत्त कोकिलश्रेणी की भांति मधुर स्वर से आलाप करने वाली है, जो राजहंस की भांति गतिशालिनी है वह राधिका..(इस प्रकार अर्द्धोक्ति कह कर)

श्रीकृष्ण-(सम्भ्रमित होकर औत्सुक्य के साथ) सखे ! वह कहां है, कहाँ है वह ?

मधुमंगल-(अंगुली के द्वारा दिखाकर) सम्मुख है तुम्हारी वह प्रिया.....।

श्रीकृष्ण-(व्यग्रभाव से) वयस्य ! मैं नहीं देख रहा हूँ,

अतः शीघ्र दिखाओ, वह श्रीराधिका कहाँ है ?

मधुमंगल-हे मुकुन्द ! वह है वृन्दाटवी। (वृन्दावन पक्ष में व्याख्या)-

प्रस्फुटित चम्पक-पुष्पों की कान्ति से सुशोभिता, मदमत्त-कोकिलावली के कलस्वर-आलाप से परिपूर्णा, मरालगण की गति के द्वारा शोभमाना, कृष्णसार-मृगों से परिपूर्णा, तुम्हारी वल्लभा (प्रिया) वृन्दाटवी सामने परिस्फुरित हो रही है॥

(यहाँ चतुर्थ पाद में-राधा पक्ष में “कृष्ण ! सा राधिका” है। वृन्दावन पक्ष में “कृष्णसा-राधिका” है॥)

श्रीकृष्ण-(विचार पूर्वक दीर्घ निश्वास त्याग कर) क्यों नामधेय वर्णों का श्रवण कर मैं सर्वानुसन्धान में भ्रान्त हो रहा हूँ ? (ऐसा कहकर परिक्रमण कर)-गौरांगी श्रीराधिका जिस मल्लिका की सौरभविस्तारिणी पुष्पावली के द्वारा बार-बार मेरी सर्वांगीण वेशरचना करती थी, आज वह मल्लिका सामने कामदेव के भल्ला नामक अस्त्र में परिणत होकर तथा गुंजन-निरत भ्रमर मल्लों में परिणत होकर मुझे प्रहार कर रही है॥२७॥

(परिक्रमण कर) यमुना-तट के समीप लताओं से परिवेष्टित निरन्तर विराजमान इन वृक्षों के नवनव कोमल किशलय समूह के द्वारा श्रीराधिका ने कर्णमूल में ताटक शोभा-अनुकरण चातुर्य लाभ किया था॥२८॥

मधुमंगल-(विस्मय के साथ) वयस्य ! अब वसन्त का यौवन समय है, परन्तु उस प्रकार शोभा-लक्षण नहीं प्रतीयमान हो रहा है।

श्रीकृष्ण-सखा ! सत्य कह रहे हो। देखा जाता है कि-कोकिलकुल और भ्रमर-कुल मौनव्रत का अवलम्बन कर रहे हैं। आम्रसमूह में अंकुरावली ईषत् उद्भूत होकर जड़भाव को प्राप्त हो रही है। अशोक वृक्ष समूह में मंजरी अर्द्धोद्गता होकर स्थिर भाव में ठहरी हुई है। हाय ! ऐसा ज्ञात होता है कि मानो यमुना तट की सीमा में वसन्त लक्ष्मी निद्रिता होकर अवस्थान कर रही है॥२८॥

मधुमंगल-वयस्य ! देखो, मनोहर नलिनीदल से विरचित यह किसी विरहिणी की शय्या है।

श्रीकृष्ण-लगता है इस विरहिणी की प्राणरक्षा के लिए वसन्त लक्ष्मी स्तब्ध होकर ठहर गई है।

(देखकर आतंक से) इस शय्या की वेदी निविड़ कमलों से भूषित होने पर भी मध्यभाग में शून्य, एवं निकटस्थ सूर्यनन्दिनी यमुना की तनु लहरियों से आर्दीभूता है। वह शय्या अंगज्वाला सूचक मिलन-प्रयास व्यक्त करती है। मर्मव्यथा प्रकाश की सूचिका रूप में परिणत होकर मेरी बुद्धि में मालिन्य प्रदान कर उसे कम्पित कर

रही है॥२९॥

मधुमंगल-सम्मुख-स्थित इस निकुंजशालिका की प्रशंसा तो करो।

श्रीकृष्ण-(आगे चलकर ग्रीवा को उठाकर देखते हुए आश्चर्य के साथ) अहो ! यह तो वन्यवेश धारिणी मनोहारिणी मेरी अंगप्रतिमा है। (ऐसा कहकर निकट जाकर) निश्चय यह प्रतिमा शिल्पाचार्य विश्वकर्मा के कलाकौशल-उत्कर्ष के द्वारा निर्मित हुई है॥

मधुमंगल-(कौतुक के साथ) आश्चर्य ! यह मेरे प्रियवयस्य को बहुकाल के बाद प्राप्त हो रही है। तुम तो राजचक्रवर्ती हो, मुझ जैसे ब्राह्मण-बालक के योग्य नहीं है (ऐसा कहकर विशेष रूप से देखकर) प्रियवयस्य ! देखो किसी एक अनुरागिणी के द्वारा यह प्रतिमा सेवित हुई है।

श्रीकृष्ण-सखा ! ठीक देखा है, यह माला व्यस्तभाव से अर्पण की गई है, जो उसकी विवशता को विशेष रूप से प्रकट करती है। यह चन्दन लेप स्थान-स्थान पर पुंछ गया है, जो कि अश्रुपात को व्यक्त करता है। यह तिलक कुञ्चित हो रहा है जो हस्तकम्प को प्रकाशित कर रहा है। इस प्रकार सेवा के द्वारा उस कृशांगी को प्रेमोदय विस्तार हो रहा है॥३०॥

(पर्दे में से आवाज आती है) प्रिय-सखि ! इधर इधर।

श्रीकृष्ण-सखे ! निश्चय इस मूर्ति की उपासिका तरुणियाँ आ रही हैं। अतः मेरी इस प्रतिमा को अन्य कुंज में रख लो और मैं इस प्रतिमा के वेश माधुर्य को धारण कर इस वेदी में अवस्थान कर विम्बोष्ठियों की भावनिष्ठा को निश्चिन्त रूप से देखूँगा। (दोनों ऐसा ही करने लगे तदनन्तर दोनों सखियों के साथ श्रीराधिका प्रवेश करती हैं)

श्रीराधा-(सम्मुख देखकर रोमांच के साथ) प्रतिमा के माधुर्य का आश्चर्य उत्कर्ष है। जो सचमुच माधवदर्शन की चमत्कारिता को उत्पादन कर रहा है।

बकुला-(कालमें धीरे-धीरे) नववृन्दे ! प्रतिमा के सौन्दर्य को देखो।

नववृन्दा-(मृदुहास्य के साथ) मुग्धे ! निश्चय सत्यभामा का प्रेमोन्माद तुम में संक्रमित हो रहा है। क्योंकि तुम श्रीहरि को प्रतिमा रूप में विश्वास कर रही हो।

श्रीकृष्ण-(विस्मय एवं आनन्द के साथ) यह चित्ताकर्षिणी कल्पलतिका कौन है ? (ऐसा कहकर औत्सुक्य के साथ) जिसकी मुख-कमल को कान्ति हृदय-स्थित गुरुतर वेदना का प्रकाश करती है, जिसके नील-कुन्तल दोनों नयन के प्रान्त भाग में नृत्य कर रहे हैं, कर सुन्दर दन्तवाली

आज मेरे दृष्टिपथ में उपस्थित हो रही है ॥३१॥

(पुनः लक्ष्य करके चमत्कार के साथ) हाय हाय ! यह तो मेरी प्राणवल्लभा श्रीराधिका है। (ऐसा कहकर अश्रुधारा रोककर विचार पूर्वक)-निश्चय मनोहर वृन्दावन में सुरशिल्पि ने विचार कर मेरे सुख के लिए यह मायामयी राधिका-मूर्ति की कल्पना की है। नहीं तो कुशस्थली नगर में नीतियों से दुर्गम मेरे इस अन्तःपुर में किस प्रकार श्रीराधिका की स्थिति हो सकती है ? ॥३२॥

श्रीराधा-(श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का दर्शन कर) हाय ! हाय ! अत्यन्त उत्कण्ठा वश यह मेरी मूर्खता है कि प्रतिमा को गोविन्द जान रही हूँ ॥ (ऐसा कहकर अश्रु पूर्ण नेत्रों से अंजलि जोड़ कर)-अये प्रतिविम्ब ! तुम्हारे निज विम्ब पद्मलोचन का मंगल तो है ?

श्रीकृष्ण-(उल्लास के साथ) अयि माया-यन्त्रमयि राधिके ! सत्य ही अब श्रीकृष्ण मंगल से हैं। क्योंकि तुम सब प्रकार उस परलोकवासिनी श्रीराधिका का अनुकरण कर श्रीकृष्ण का मंगल पूछ रही हो।

श्रीराधा-(चमत्कृता होकर) ठीक है नववृन्दे ! ठीक है, क्योंकि शिल्पकलाविचक्षण शिल्पी के द्वारा निर्मित यह प्रतिमा तुम्हारी भांति मधुर-वचन बोल रही है।

श्रीकृष्ण-अहो ! गन्धर्वपुरानुकारी विश्वकर्मा की माया के द्वारा विरचिता नाट्य की कैसी चिरस्थायी चमत्कारिता है ? क्योंकि अबाधित श्रीराधा की भांति यह राधा मूर्ति प्रकाश पा रही है।

श्रीराधा-(आनन्द एवं विस्मय के साथ) नासिका में प्रवेश कर उन्मत्त करने वाला यह सर्वोत्कृष्ट परिमल है, वही यह नयन-युगलआकर्षणकारी-घनश्याम कान्ति हैं, मेरे कर्णयुगल को बलात् विगलितकारी यह वही स्वर है, आश्चर्य ! यह मूर्ति गोविन्दस्वभाव को भी प्राप्त कर रही है ॥३३॥

(ऐसा कह कर खेद के साथ) अयि ! कृष्ण-प्रतिमे ! यह राधिका कोटि-कोटि विनीत वाक्यों से तुम्हारे निकट भिक्षा प्रार्थना कर रही है कि तुम चिरकाल के लिए इस प्रकार जंगमभाव अवलम्बन कर इस दुःखिनी के सन्तप्त लोचनों को सुखी करती रहो।

श्रीकृष्ण-हाय ! देवशिल्पिन ! सत्य ही तुमने मुझको सन्तुष्ट किया है (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण अश्रुधारा विमोचन करने लगे)

नववृन्दा-सखि ! वस्त्रांचल के द्वारा प्रिय-मुखपद्म से अश्रुधारा को पोंछ दो।

श्रीराधा-(लज्जा के साथ वैसा करने लगी)

नववृन्दा-(मन में) श्रीमाधव श्रीराधिका के अंगस्पर्श-सुख

को प्राप्त कर स्तिमित-लोचन होकर पृष्ठस्थित कदम्बवृक्ष का क्यों आश्रय कर रहे हैं ?

श्रीराधा-हा धिक् हा धिक्, प्रतिमा तो स्वाभाविक धर्म का अवलम्बन करने लगी है। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं) (पर्दे में मयूरादि की ध्वनि होने लगती है)

बकुला-(आवेग के साथ) नववृन्दे ! मयूरों का दल भीत होकर चिल्लाते हुए क्यों भाग रहा है ?

नववृन्दा-निश्चय विदर्भराजकन्या नव-वृन्दावन में प्रवेश कर रही है। अतः उनकी सहचरियों की नूपुरध्वनि से हंसकुल की जयशंका कर मयूरगण पलायन कर रहे हैं। अतः तुम शीघ्र यहां से सत्या को स्थानान्तरित करो।

बकुला-अच्छा परामर्श दिया है। (ऐसा कहकर मूर्च्छिता श्रीराधा को गोद में लेकर प्रस्थान करती हैं)

मधुमंगल-(निकुंज से बाहर आकर) आश्चर्य ! आश्चर्य ! सखे ! सचमुच तुम प्रतिमा हो गये हो ?

श्रीकृष्ण-(सम्मुख दृष्टि कर) हाय हाय ! विश्वकर्मा की शिल्पमाया क्यों अन्तर्हित हो गयी है ? (ऐसा कह आश्चर्ययुक्त होकर) नववृन्दे ! जगत् विस्मय-कारिणी इस आश्चर्यमाया को क्या पुनः तुम साक्षात् करा सकती हो ?

नववृन्दा-हां, करा सकती हूँ।

श्रीकृष्ण-(उत्कण्ठा के साथ) सखि ! शीघ्र लाओ।

नववृन्दा-देव ! जिससे मैं पलायनशील चक्रवाकी की भांति भय पाती हूँ, वह देवी चन्द्रावली निकट आ रही है। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती हैं) (तदनन्तर परिजन के साथ चन्द्रावली का प्रवेश)

चन्द्रावली-सखि माधवि ! अभी भी मेरी भगिनी का शोकानल निर्वापित नहीं हुआ है ?

माधवी-राजकन्ये ! तुम स्वभाव से कोमला हो, वह कैसे शान्त होगा ?

चन्द्रावली-सखि ! आज आर्य्यपुत्र ने 'हा राधा', 'हा राधा' कहकर समस्त रात्रि स्वप्न देखा है।

माधवी-निश्चय बोध होता है कि स्वप्नदर्शन से विक्षोभित आत्मा को शान्त करने के लिए वृन्दावन में प्रवेश किया होगा।

चन्द्रावली-सत्य कहती हो।

माधवी-राजकन्ये ! देखो यह निकुंजभर्ता सम्मुख विद्यमान हैं।

चन्द्रावली-(वक्रभाव से निरीक्षण कर) सखि ! वृन्दावन में इनको प्रसन्नमना देख रही हूँ, तब तो बोध होता है इन्होंने किसी रसान्तर का लाभ किया है।

माधवी-(चिन्ता-पूर्वक) राजकन्ये ! वह मनोहारिणी

सत्यभामा साक्षात् भाव से उनके साथ मिलित हुई है।

चन्द्रावली-सखि ! सत्य ही कहती हो, क्योंकि मैंने जो दिव्य वेशभूषा भेजी थी, वह इनके अंगों में देख रही हूँ। अतः निकट जाकर यथार्थ तत्त्व को अवगत करूँ। (ऐसा कहकर गमन करने लगी) आर्यपुत्र ! जययुक्त हों, जय युक्त हों।

श्रीकृष्ण-(भाव गोपन कर) प्रिये ! भाग्यवश यथा समय वृन्दावन में उपस्थित हुई हो।

चन्द्रावली-(श्रीकृष्ण को देखकर आश्चर्य पूर्वक) सखि ! इस जगत् में अपूर्व-माधुर्यपूर्ण मनोहारी यह वन्यवेश श्रीमाधव की माधुर्य-तरंग विस्तार कर रहा है। परन्तु इसका दर्शन कर मेरा मन ईर्ष्याभुजंगी से ग्रसित हो रहा है, जो किसी भी प्रकार से तृप्तिलाभ नहीं प्राप्त कर रहा है॥३४॥

(ऐसा कह कर मृदु-हास्य के साथ) देव ! सौभाग्यवश नवीन प्रणयिनी संगम-महोत्सव में उत्फुल्ल हो रहे हैं।

श्रीकृष्ण-(विहस्य) प्रिये ! प्राचीन-प्रणयिनी संगम-महोत्सव कहो।

चन्द्रावली-(हंस कर) प्राचीन प्रणयिनी कौन है ?

श्रीकृष्ण-प्रिये ! भय मत करो, वृन्दावन को लताश्रेणी है और कोई नहीं॥

माधवी-स्वामी सत्य कह रहे हैं, क्योंकि यह माला वृन्दावनकल्पलता के द्वारा उपनीता हुई है।

श्रीकृष्ण-माधवि ! निरर्थक मिथ्या-आशंका से विशुद्धा इस चन्द्रावली को कलंकित मत करो। यह माला तो मधुमंगल के कलाकौशल की साक्षात् कृति है।

चन्द्रावली-(कौतुक से मृदुहास्य कर) आर्य मधुमंगल ! यह कौसुम्भवस्त्र क्या तुम्हारे कलाकौशल से लब्ध हुआ है ?

श्रीकृष्ण-(मन में) निश्चय देवी ने यह परिच्छद पहले देखा है। (प्रकाश्य में) देवि ! वनदेवी ने उपहार दिया है।

माधवी-अनुमति कीजिये, यह गृहदेवी अब गमन करे।

श्रीकृष्ण-देवि ! माधवी के मिथ्यावचन में श्रद्धा मत करो।

चन्द्रावली-सखी सरस्वती ने मेरा पक्ष ग्रहण किया है। (अर्थात् मूल में “माधवीया” शब्द है, इसके दो अर्थ हैं, माधवी-सखी की उक्ति एवं माधव की उक्ति। दूसरे अर्थ को ग्रहण कर चन्द्रावली ने कहा है)

श्रीकृष्ण-(मन में) मैं अपनी कथा से ही देवी के द्वारा पराजित हो गया हूँ।

चन्द्रावली-कृष्ण ! (यह अर्द्धोक्ति कहकर लज्जिता होकर) आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र !

श्रीकृष्ण-(आनन्द पूर्वक मृदु हँस कर) प्रिये ! भाग्यवश मुझे “कृष्ण” ऐसा कहकर सुधाधारा पान करा रही थी, अब “आर्यपुत्र” इस प्रकार वाक्य-कूपोदक का क्या प्रयोजन है ?

चन्द्रावली-आर्यपुत्र ! मैं अनभिज्ञा नहीं हूँ कि आपकी सुखजनक-केलिप्रसंग में दुःखित हो जाऊँ।

श्रीकृष्ण-देवि ! तुम्हारी अंगसंगत सूर्य-किरणों से सन्तप्त हो रहा हूँ। अतः चन्दनतरुच्छाया में गमन कर मुझे शीतल करो।

माधवी-देव ! हमारी यह कठोरात्मा राजकन्या यथेष्ट ताप सहन कर सकती है। चन्द्रभागा मन्दिर में ज्वलन्त अग्निकुण्ड को जब जलकेलिकुण्ड जाना था, वह तो आपने प्रत्यक्ष किया होगा ?

श्रीकृष्ण-(मन में) माधवि ! उत्तम, उत्तम, क्योंकि इस प्रकार स्नेहातिशय की सूचना देकर तुमने यथा समय देवी के प्रति सखी की भाँति सेवा की है।

चन्द्रावली-आर्यपुत्र ! अपने हृदयाभिमत प्रणयिजन के साथ स्वच्छन्दरूप से विहार करो, मैं अन्तःपुर में प्रवेश करती हूँ।

(ऐसा कहकर परिजन के साथ प्रस्थान करती है)

श्रीकृष्ण-सखा ! विशेष कष्ट उपस्थित हुआ, क्योंकि देवी क्रुद्धा हो गई है।

मधुमंगल-ऐसा मत कहो, क्योंकि देवी के रोष का कोई उपलक्षण नहीं दीख रहा है।

श्रीकृष्ण-सखा ! मेधावियों का रोष बाहर नहीं प्रकाशित होता है। क्योंकि-देवी के वदन-चन्द्रबिम्ब से मृदुहास्य रूप कौमुदी दूरीभूत नहीं हुई है। स्वाभाविक मृदुवाक्य में माधुर्यलक्ष्मी का त्याग नहीं हुआ है। परन्तु मनकी दुरावरणीय गोपनीय व्यथा प्रकाशक श्वासों के द्वारा चोली ईषत् कम्पित हो रही थी जो कि क्रोध को व्यक्त करती है। तब तो देवी-प्रसादन (देवी को प्रसन्न करना) अपना अभीष्ट साधन हो गया है॥३४॥

(ऐसा कहकर दोनों प्रस्थान करते हैं)

(अनन्तर सबका प्रस्थान)

इस प्रकार नववृन्दावनसंगम-नामक सप्तम अंक समाप्त हुआ॥७॥

आठ्वां अंक

(तदनन्तर नववृन्दा का अनुगमन करते हुए विश्वकर्मा प्रवेश करता है)

विश्वकर्मा-अन्तःपुर में प्रवेश करने की इच्छा से सुन्दर-प्रमुख देवतागण हाथ जोड़ कर द्वारपाल से प्रार्थना कर जिनके वहिः प्रकोष्ठ तक पहुँच पाते हैं, तथा जिनके द्वारपाल अवसर जानकर उनको भीतर प्रवेश कराते हैं, उन श्रीहरि की द्वारकापुरी आज मेरा मनोहरण कर रही है॥१॥

(बगल में देखकर) वत्से ! श्रीकृष्ण में “यह प्रतिमा है”-इस प्रकार सत्यभामा को जो विचित्र भ्रम हुआ है एवं सत्यभामा के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण को जो मूर्ति होने का भ्रम हुआ है वह मेरी माया है। (मृदु हँस कर) वह भ्रम नहीं था (वे दोनों साक्षात् स्वरूप थे), वह तो विरह रूप अनुरागामृत का विलास-वैभव था।

नववृन्दा-आर्य ! मन्त्रिराज उद्धव के कौशल से दोनों के परस्पर रहस्य का श्रवण करने पर वह विलास-विभ्रम अत्यन्त सम्भ्रम को प्राप्त हुआ है। इसलिए श्रीराधिका-मिलन में उत्सुक पद्मलोचन श्रीकृष्ण ने निभृत राजान्तःपुर में रुक्मिणी को सन्तुष्ट एवं आनन्दित करते हुए कहा है-हे देवि ! त्रिलोक में क्या तुम्हारा अभीष्ट है ? वह प्रकाश करो। एकान्त आज्ञानुवर्ती, यथेष्टरूप में मंगलाचरण-कारी मेरे प्रति अनुग्रह माधुरी का वितरण करो॥

विश्वकर्मा-उसके बाद फिर क्या हुआ ?

नववृन्दा-तदनन्तर देवी के हृदयभाव को जानने वाली माधवी ने कहा है-देव ! पृथ्वी में जो अपूर्व वस्तु करके ख्यात है क्या वह इस महान्तःपुर में नहीं है। परन्तु आकाश में गमनशील एक श्वेत हंस के चोंच से अपूर्व एक पद्म गिरा है, राजकन्या उसकी माला-रचना करना चाहती है।

विश्वकर्मा-वत्से ! हाँ जानता हूँ। सुरसौगन्धिक नामक उस पद्म का संग्रह करने के लिए हमसे अनुसन्धान प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने खाण्डव-प्रस्थ में गमन किया था।

नववृन्दा-श्रीमाधव ने पंकजसमूह लाकर मधुमंगल के हाथ माधवी के निकट रखे हैं। छल पूर्वक देवी को जानने के लिए अब अन्तःपुर में गमन किया है।

विश्वकर्मा-तुम कहाँ जा रही हो ?

नववृन्दा-आपके पास जा रही थी।

विश्वकर्मा-किसलिए ?

नववृन्दा-आपकी अपरूप विद्या-रसिकता ख्याति का

अवधारण कर देवी ने सौभाग्य, सुख एवं सद्गुणों की आधारभूत इन्द्रनगरी में भी न बने अपूर्व वेशभूषा योग्य प्रसाधन की जो प्रार्थना की थी क्या आपने उसका निर्माण किया है ?

विश्वकर्मा-केवल देवि के लिए नहीं अपितु सत्यभामा के लिए भी कर दिया है।

नववृन्दा-इस पर देवी दुःखिता हो सकती हैं।

विश्वकर्मा-वत्से ! शंका मत करना। मैंने देवी के लिए निवेदन किया है कि-हे देवि ! सूर्यदेव के सम्बन्ध से सत्यभामा मेरी नातिनी है। अतः उसके लिए मैं अलंकार बनाऊँगा। आओ, लो ये दो पिटारी हैं तुमको सौंपता हूँ॥२॥ (दोनों का प्रस्थान) (अतीत एवं भविष्यत् कार्य की सूचना) (तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(हर्ष पूर्वक) अहो ! जिसके विरह में वक्षःस्थल पर लेपायमान, चन्दन को नेत्र-धारा मानो सिंचित करने लगती है, साथ ही साथ स्पर्द्धाशील वक्षःस्थल उत्तम होकर मानो उसे सुखाने लगता है अनगणित स्वप्नों में भी जिसका दर्शनानन्द मेरे लिए दुर्लभ है, क्या वह श्रीराधिका सहसा मेरे गोद में अवस्थान करेगी ? (सम्मुख देखकर) यह तो कुण्डिनराजनन्दिनी मणिमन्दिर के अलिन्द को अलंकृत कर विराजमान है॥३॥

(अनन्तर माधवी के द्वारा सेवित चन्द्रावली प्रवेश करती है॥)

चन्द्रावली-सखि माधवि ! यह तो आर्यपुत्र आ रहे हैं, अतः उस सुरसौगन्धि पुष्पमाला को लाओ।

श्रीकृष्ण-(निकट जाकर) हे देवि ! तुम एकाकिनी होने पर भी पक्षपातवैकिय के हेतु सर्व प्रकार आक्रमण कर मेरे चित्त सरोवर में राजहंसिनी की भाँति विराज रही हो॥४॥

चन्द्रावली-(अभिलाष के साथ) माधवि ! युक्तिपूर्ण-कथा सुनकर हास्य क्यों कर रही हो ?

माधवी-राजनन्दिनि ! सरोवर में अपने व्रत का विस्तार करने वाली वकी की कथा का स्मरण कर हँस रही हूँ।

श्रीकृष्ण-अहो ! कलह-कण्डुसे युक्त मुखवाली तमोमयि अर्थात् क्रोधिनि माधविके ! तुम चन्द्रावली को विकृत नहीं बना सकती हो, शान्त होओ (ऐसा कहकर देवी को देखने लगते हैं)-

हे सुन्दरि ! मेरा मन तुम में अत्युच्च गौरवमयी

आसक्ति को धारण कर रहा है। अतः तुम्हें छोड़कर अन्यत्र क्षणकाल के लिए स्वस्तिलाभ नहीं कर सकता ॥५॥

माधवी-राजनन्दिनि ! तुमने अपने हाथ से इस सुरसौगन्धिकमाला की रचना की है।

चन्द्रावली-(माला लेकर) आर्यपुत्र ! यह माला कौस्तुभ की सहवासिनी हों, (ऐसा कहकर वक्षःस्थल में पहना देती है)

श्रीकृष्ण-हे सुन्दरांगि ! तुम्हारे निवास-स्थल रूप इस स्निग्ध वक्षःस्थल पर तुम्हारी ग्रथित इस माला के बिना और कोई भी कौस्तुभ की सहवासिनी नहीं हो सकती ॥६॥

(चन्द्रावली लज्जिता एवं नम्रा हो जाती है)

श्रीकृष्ण-(हस्तधारण कर सादर) हे कुंकुम-गौरांगि ! हम अपनी आत्मीया किसी ध्यानपरा तपस्विनी को देखने के लिए प्रतिज्ञा बद्ध हुए हैं। अतः अनुमति प्रदानकर उस प्रतिज्ञा की रक्षा कराइये ॥

चन्द्रावली-जैसी आपकी अभिलाषा हो वैसा करें।

श्रीकृष्ण-(मन में) अब मैं निर्भय हो गया हूँ अतः वृन्दावन के लिए चलूँ (ऐसा कहकर प्रस्थान करते हैं)

नववृन्दा-(प्रवेश कर) देवि ! यह दो अलंकारों की पिटारियाँ हैं। पहली तो देवी के नाम चिह्न से अंकित है दूसरी सत्यभामा के नाम से।

माधवी-(मन में) विश्वकर्मा ने अपनी नातिनी के लिए निश्चय सर्वोत्कृष्ट अलंकार निर्माण किये होंगे। अतः परिवर्तन कर दूसरी से राजनन्दिनी को अलंकृत करूँगी। (प्रकाश्य में) नववृन्दे ! दोनों को दो, मैं निश्चय सत्या के लिए भेज दूँगी।

(नववृन्दा वैसे करती है)

चन्द्रावली-स्नान के लिए गृह-बावली पर जाती हूँ। (परिजन के साथ चली जाती है)

नववृन्दा-वृन्दावन के अभिषेक के लिए अब ऋतुराज बसन्त को शुभ अवसर दिया गया है। अतः वहाँ जाती हूँ। (ऐसा कहकर भ्रमण करने लगती है)।

(पर्दे में से) क्रीड़ोत्सव के लिए इस निबिड़ नवपुष्पावली-शोभित स्थल पर प्रिया के साथ चरण-विहार अर्पणकारी देव को एक ही साथ निज समृद्धि के द्वारा सम्बर्द्धित कराने के लिए समस्त ऋतु कौतुक वश अवतरित हो रही हैं ॥

नववृन्दा-यह तो नवीन वृन्दाटवी को कृतार्थ करने के लिए सुन्दर वन्यवेश-धारण कर जगन्मोहन श्रीहरि श्रीराधिका का अनुसरण कर रहे हैं। (पुनः देखकर विस्मय के साथ) बहुकाल के बाद श्रीराधामाधव का भावोल्लास रूप कल्पवृक्ष विराजित हो रहा है, जो गद्गद

कण्ठध्वनि रूप कोकिल ध्वनि से परिशोभित है। अनुपम भावस्तम्भरूप शोभा से सुशोभित है, रोमांचरूप अंकुरसमूह से परिपूर्ण है, स्वेदाम्बु मुक्ताफल के द्वारा फलवान है, विभ्रमरूप पक्षियों से कम्पायमान एवं उद्गतवाष्प रूप मकरन्द से युक्त है ॥७॥

(अनन्तर यथा-निर्दिष्ट श्रीश्रीराधा-माधव प्रवेश करते हैं)

माधवी-हे प्रिये ! तुम्हारे किसी चिह्न का अन्वेषण करते हुए मैंने निखिल जगत् की लक्ष्मी रूपिणी साक्षात् तुमको प्राप्त किया है। जैसे जगत् में कोई व्यक्ति मुट्ठीभर चनों के लिए भ्रमण करता-करता स्वर्णराशि प्राप्त कर लेता है ॥८॥

नववृन्दा-(श्रीराधा को देखकर) हाय हाय ! श्रीराधा श्रीकृष्ण दर्शन के लिए प्रवृत्ता हो रही है। सजल नेत्र किसी प्रकार से दर्शन करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं, शक्ति रहते हुए भी भुजलता भाव-भार से स्तम्भित हो जाने के कारण आलिंगन में समर्थ नहीं हो रही है, गद्गदता के कारण वाणी उत्तर देने में असमर्थ हो रही है। चिरकाल से वांछित यह मिलन-काल उपस्थित हो रहा है जिससे इस प्रकार वृत्तियाँ उपस्थित हुई हैं ॥९॥

श्रीकृष्ण-(श्रीराधा के निकट जाकर) हे कुम्भस्तनि ! यह मेरा हृदय अन्तर को विरहज्वालारूप जटाओं से तथा उत्कण्ठावली से युक्त होकर अत्यन्त मोक्ष उत्पन्न कर रहा है। अतः तुम अन्तः नवविलास में स्तवकित तथा निरन्तर सुधा-क्षरण-कारिणी चंचलभ्रूभंगि से युक्त दृष्टि को एक बार मेरे लिए निक्षेपित करो ॥१०॥

श्रीराधा-(लज्जित होकर) नववृन्दे ! निश्चय यह स्वप्न है, क्योंकि-इस प्रकार सुखसागर में क्षणकाल मग्न होकर भी पुनः चेतना प्राप्त कर मैंने कुछ काल तक मुक्तकण्ठ होकर क्रन्दन नहीं किया है।

नववृन्दा-सखि ! खेदनिद्रा से तुम जागरिता हुई हो, अतः मन लगा कर देखो, यह नवीनवृन्दाटवी चन्द्र-किरण के स्पर्श से द्रवायमान चन्द्रकान्त-मणिमय-पर्वत के शत-शत कृत्रिम जल प्रवाहों से भूषित हो रही है। यह विस्तीर्ण-वृक्षों से मानो उत्सवान्वित एवं विकसित कमलिनीराजि के परिमल से अन्ध होकर मानो भ्रमरों के लीलायुक्त-गुंजन से आप सबका आह्वान कर रही है ॥११॥

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! उत्तम, अति सुन्दर ! तुमने स्पष्टतया अपूर्व रूप से ऋतुओं की मिश्रण कल्पना की है, जिन्होंने अपने-अपने परिवार वर्ग को तुष्ट किया है।

नववृन्दा-सखि राधे ! देखो देखो, यह वृक्ष नीलकण्ठ मयूर का (पक्षान्तर में) नीलकण्ठ महादेव का सन्तोष-विधान

कर रहा है, पुष्पावली के द्वारा तारकाराजि के (पक्षान्तर में तारका नामक असुर) गर्व को खर्व कर रहा है, पर्वतभूमि के क्रोड में (पक्षान्तर में) पार्वती की गोद में विशाखा की भांति (पक्षान्तर में) कार्तिक की भांति शोभित हो रहा है ॥१२॥

श्रीराधा-(औत्सुक्य के साथ मन-मन में) हाय ! मेरी प्रियसखी विशाखा कहां है ?

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) निश्चय नववृन्दा की कथा में विशाखा का स्मरण होने पर यह दुःखित हो रही है अतः उसका वर्णन करता हूँ। (प्रकाश्य से) प्रिये ! क्षणकाल के लिए एक अद्भुत कथा का श्रवण करो। अभी मैंने सुरसौगन्धिकपुष्प-संग्रह के लिए अर्जुन के साथ खाण्डवारण्य में प्रवेश किया था। वहां गाण्डीवधारी अर्जुन मृगसन्धान में भ्रमण करने लगा। उस समय श्येनपक्षि के द्वारा आक्रान्त होकर एक पक्षि कहने लगा कि-हे सखे कीर ! श्रीराधिका के फलमूल यज्ञमें मैं नवनवचन्द्र की भांति मृणालखण्ड का आस्वादन नहीं कर पाया। शुकने कहा-हाय सखे राजहंस ! श्रीराधिका के फलों के यज्ञ में मंगलग्रह की अपेक्षा स्थूल एवं रक्तवर्ण नागरंग (नारंग) मेरे मंगल के लिए न होंगे।

श्रीराधा-(विस्मृत होकर) उसके बाद, उसके बाद।

श्रीकृष्ण-उसके बाद मैंने दोनों पक्षियों को मुक्त कर दिया। उस समय मैंने एक आकृति-सम्पन्न वृद्धा देखी एवं उससे पूछा कि तुम कौन हो ? वृद्धा ने कहा-पक्षियों की यज्ञस्थल रूप यह तलायी तपस्या-प्रभाव से आविर्भूत हुई है जो सुगन्धि-सुरसौगन्धिकपुष्पों से परिपूर्ण है। और अमृतनिन्दि फलों से परिपूर्ण यह उद्यानवाटिका है। मैं इन दोनों की रक्षयित्री पुलिन्दी हूँ।

अनन्तर मैंने जिज्ञासा की-किसने इसे यज्ञस्थल रूप में परिणत कराया। उसने कहा-कोई तपोधना है, जिसने जलवास-रूप व्रत का समापन कर वर्तमान राधाभीष्ट साधन रूप अन्य व्रत का आरम्भ किया है ॥

श्रीराधा-उसके बाद, फिर ?

श्रीकृष्ण-अनन्तर उसके निर्देशानुसार गिरिगुहा में मेरे नयनमार्ग में मलीन वल्कल से युक्त, धूलिधूसरित तन वाली, जटायुक्त केशों को धारण करने वाली, एक तपस्विनी पद्मरागमणि की एक माला हाथ में धारण किये हुए उपस्थित हुई ॥१३॥

उसने मुझे देखकर रोदन करते-करते गद्गद स्वर से कहा-हा गोकुलेन्द्रनगरी के युवराजलीलाकारी ! हा गोपीकुलहृदयकमल के भ्रमर ! हा राधिका के कुचकुरंग में कस्तूरिकामय अंगराग स्वरूप ! क्या आप सचमुच पुनः

मेरे नयनपथ के पथिक हुए हो ? ॥१४॥

तब विस्मित होकर मैंने पूछा-तुम कौन हो ? उसने गद्गदस्वर में कहा-हे नाथ ! मैं तुम्हारी वह हतभागिनी दासी विशाखा हूँ।

श्रीराधा-हा धिक् हा धिक् हाय प्रियखखि विशाखे ! मन्दभागिनी मैं तुम्हारे लिए मर गयी।

श्रीकृष्ण-एक साथ विषाद एवं हर्ष से अभिभूत होकर, उष्ण एवं शीतल नयनजल से पीत-वसन को भिगो कर तथा विशाखा को पहले जैसा शरीर प्रदान कर स्थाणू की भांति मैं अवस्थान करने लगा। तदनन्तर मंगलार्थी मैंने उस क्षीणांगी को तुम्हारी कल्याण वार्ता के द्वारा आश्वासन दिया और पुनः उसको सुसज्जित कराकर द्वारका-नगरी में प्रवेश करवाया है ॥१५-१६॥

श्रीराधा-(उत्कण्ठा के साथ) सुन्दर ! तुम्हारी वन्दना करती हूँ, विशाखा को दिखाओ।

(श्रीकृष्ण नववृन्दा की मुख की ओर देखने लगे)

नववृन्दा-सखि ! विशाखा ने मुझसे कहा कि-हाय ! मैं पिता के आदेश से विरह-व्याकुल हो रही हूँ। जब तक प्रियसखी को स्यमन्तकमणि का साक्षात् रूप से लाभ नहीं होता है, तब तक उसके साथ साक्षात् करने का पिता ने निषेध किया है। इसीलिए नववृन्दावन के कालिन्दी-निर्झर में मैं निवास कर रही हूँ ॥

श्रीराधा-सत्य, सत्य, माता संज्ञा ने भी कहा है वत्से राधिके ! स्यमन्तकमणि के हस्तगत होने पर तुम्हारा सर्वाभीष्ट पूर्ण होगा।

नववृन्दा-देव ! देखिए देखिए, गिरिधर ! देखिए, वसन्तादि षड्भक्तु का वैभव किस प्रकार एक ही साथ प्रकाश पा रहा है। जो वसन्तकालीन माधवीलता के द्वारा मुदुहास्य कर रहा है पुनः शिरीष के द्वारा पुष्पित, कदम्ब के द्वारा उत्फुल्लित, जाति पुष्प से प्रहसित, जम्बीर के द्वारा सुशोभित तथा श्यामलता के द्वारा मुकुलित हो रहा है ॥१७॥

श्रीकृष्ण-प्रिय देखो देखो, कहीं तो कोकिल कुहुध्वनि कर रही है, कहीं झिल्लीकीट झीं-झीं कर रहा है, कहीं राजहंस शब्द कर रहा है, कहीं किखी गान कर रहा है, कहीं वा हारीतकी शब्द कर रहा है। इस प्रकार षड्भक्तु संपात से मुझे परमानन्द प्राप्त हो रहा है ॥१८॥

नववृन्दा-देव ! देखिए देखिए, पवन किस प्रकार मलयाचल से दांतोंवाले सर्पसमूह के अधरों से पलायन कर रहा है, कमलशोभित पम्पानदी के जल में स्नान कर रहे हैं, सर्पभोजी-गरुड प्रभु आपकी सेवा के लिए उपस्थित हो रहा है ॥१९॥

श्रीकृष्ण-(तरुसमूह एवं लतावली को देखकर) हे कदम्बसमूह ! तुम सब कुशल हो ? हे वकुलगण ! तुम सब अच्छे हो ? हे प्रियंगुराजि ! तुम्हारा कल्याण है ? हे पीलुवृक्षगण ! तुम सब कुशल से तो हो ? हे आम्रवृक्षो तुम्हारा मंगल है ? हे माधवोवलताएँ ! तुम सब कुशल हो ? आज यह राधा सहचर श्रीकृष्ण दीर्घकाल के बाद तुम सबके अनुकूल आचरण कर रहा है ॥२०॥

नववृन्दा-देव ! सम्मुख यह नन्दीश्वर पर्वत अपनी कन्दरा को नवाभिसार-मन्दिर बनाकर आनन्द उद्गार कर रहा है ॥

श्रीकृष्ण-(श्रीराधा को देखते हुए) हे क्षीणोदरि ! नन्दीश्वरपर्वत के ऊपर तटप्रान्त में विराजमान इस चंचलाक्षी मृगवधू को क्या पहिचानती हो ? जो तुम्हारी मरकतमणिमयी हार-लतिका को यवगुच्छ भ्रम से निर्भयता पूर्वक पुनः पुनः दंशन करती थी ॥२१॥

श्रीराधा-क्यों नहीं पहिचानूँगी ? यह तो मेरी प्रियसखी रंगिणी नामक हरिणी है ।

श्रीकृष्ण-कल्याणि ! जिस पर बैठकर गोपों की मल्लक्रीड़ा का मैं बार-बार दर्शन किया करता था, यह वह शरत्कालीन मेघ के समान शुभ्र-मर्मर प्रस्तरमय विलास पीठ है ॥२२॥

श्रीराधा-नववृन्दे ! यह कौन है ? जो कुसुमावली के द्वारा नागकेशर स्तवक को पराजित कर रहा है ?

नववृन्दा-हे सरले ? इसका नाम कुब्जक है ।

श्रीराधा-(पुष्पस्तवक उठाकर देखती हुई) हा धिक् हा धिक् इस स्तवक में दुष्ट भ्रमर छिप रहा है । (ऐसा कहकर भय प्रकाश करती हैं)

श्रीकृष्ण-हे चकित-हरिणाक्षि ! भ्रमर युक्त इस वृक्ष का त्याग करो, यह कुब्जकपुष्प भयोत्पत्ति के स्थान रूप में जगत में विख्यात है ॥२३॥

नववृन्दा-(मन-मन में) श्रीकृष्ण की बात सुनकर यह श्रीराधा मृदु हँसती हुई कटाक्ष करते हुए मेरी ओर देख रही है । (प्रकाश्य से) सखि ? तुम स्वयं पुण्डरीकाक्ष को पूछो ।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! तुम्हारी सखी क्या कहना चाहती है तुम निर्भय पूर्वक कहो ।

नववृन्दा-देव ! कुब्जासंग मधुसूदन (भ्रमर) के परमानन्द का वर्द्धन करता है । इसमें भय का कारण कैसे ?

श्रीकृष्ण-(मृदुहास्य पूर्वक) नववृन्दे ! तुम्हारी सखी मिथ्या शंका कर रही है । देख, यह मधुसूदन (मैं) कुब्जासंग त्याग कर मुख-सुगन्धि से कानन-आमोद-कारिणी इस (श्रीराधा) के पीछे भाग रहा हूँ ।

श्रीराधा-(भय के साथ) हाय, हाय ! चंचल भ्रमर !

ठहर-ठहर इस लीलाकमल से तुमको प्रहार करती हूँ ।

श्रीकृष्ण-देखो देखो, यह मधुकर तुम्हारे बदन-गन्ध से उन्मत्त होकर पलाश में उल्लास वहन नहीं कर रहा है, प्रियंगु को विफल मान रहा है, मालती के गन्ध को नहीं चाह रहा है, कुमुद में आनन्द वहन नहीं कर रहा है, मधुक में माध्वीक के लिए नहीं भाग रहा है और लवेली के निकट नहीं जा रहा है ॥२४॥

नववृन्दा-यह वह पर्वतराज गोवर्द्धनगिरि सम्मुख विराजमान है, जो अपने में विद्यमान निर्झर समूह के द्वारा मृंगार, ऐक्षावली के द्वारा छायाछत्र, स्फटिक के द्वारा पर्यंकावली, धौतोज्ज्वल धातुओं से अलंकार एवं रत्नसमूह के द्वारा दर्पण प्रदान कर रहा है ॥२५॥

श्रीकृष्ण-हे सुन्दरि ! जो बार-बार नृत्यछल से तुम्हारे कर्णभूषण उत्सव विधान के लिए मनोहर पुच्छों को अर्पण करता था वह मत्तमयूर गोवर्द्धन पर्वत में निविष्ट होकर नृत्य कर रहा है ॥२६॥

श्रीराधा-हे ताण्डविक शिखण्डीराज ! चिरकाल तक जीवो ।

श्रीकृष्ण-प्रिये ! गोवर्द्धन से यमुना जाने का जो तुम्हारा मार्ग है क्या वह स्मरण हो रहा है ?

श्रीराधा-क्यों नहीं, आगे चम्पकवृक्षावली है, उसके आगे पत्रागश्रेणी है, उसके आगे जम्बुवृक्ष समूह है, उसके चारों ओर समुन्नत कदम्बवन है । इस प्रकार श्रेष्ठवृक्षों से क्रम-परिचित यह विख्यात मार्ग है जो गोवर्द्धन प्रान्त से यमुना पर्यन्त है ॥२७॥

श्रीकृष्ण-(मृदुहास्य कर) तब तो आओ इस मार्ग में होकर यमुना चलें । (ऐसा कहकर सब चल पड़ते हैं)

नववृन्दा-अहो ! यमभगिनी यह निर्मला यमुना घूर्णन-युक्त सलिल से पूर्ण हो रही है । करकमलों से परिव्याप्त निर्झर से हमारे नेत्रों का आनन्द वर्द्धन कर रही है ॥२८॥

श्रीकृष्ण-प्रिये ! देखो, सामने यह तरुश्रेष्ठ भाण्डीर प्रेमवश वायु के द्वारा कुण्डलित हो रहा है । यह नयन-कान्ति द्वारा स्पन्ध्याकारी-मयूरपुच्छों से अवरुद्ध हो रहा है, एवं शतकोटि शाखा रूप भुजाओं से उद्वण्ड होकर यमुनातटवर्त्ति वृक्षों में इन्द्रत्व प्राप्त कर रहा है ॥२९॥

श्रीराधा-यह सुन्दर-पुष्पधारिणी कीमल मल्लीलताएं सुदूरविस्तारी मनोहर गन्धराशि के द्वारा चंचल भ्रमरसमूह को अवरुद्ध कर मेरे चित्त का हरण कर रही हैं ॥३०॥

(श्रीकृष्ण श्रीराधा के कहे हुए पूर्वश्लोक का पाठ करने लगे)

नववृन्दा-सखि ! तुम्हारे हारसंघर्ष से मुकुन्द के वक्षः

से सुरसौगन्धिक माला गिर गई है, देखो, यह राजहंसी चोंच में लेकर उड़ती जा रही है।

श्रीकृष्ण-अन्तःपुर दीर्घिका की ओर क्यों जा रही है ?

नववृन्दा-सालोक्यादि मुक्ति को तुच्छ मानने वाले अतिमुक्त जन भी जब वृन्दावननिवास-वासना का त्याग नहीं कर पाते हैं तब अन्य क्षुद्रव्यक्तियों की बात कहना ही क्या है ? ॥३१॥

श्रीकृष्ण-प्रिये ! माधवी एवं मालती का इस प्रकार मिलन पहले कभी नहीं हुआ है। इनका पुष्प चयन कर मैं कोई अपूर्व शिरोभूषण बनाता हूँ, जिसकी शिक्षा गुरुकुल में कलाभ्यास के समय मैंने प्राप्त की थी।

(ऐसा कहकर दूर-जाते हुए विस्मय के साथ)

अहो ! यह कौन है जो माधुर्य के द्वारा मनोहरण कर मणिभित्ति अवलम्बन कर सम्मुख विराजमान है ? (पुनः देखकर) यह तो मैं ही मणिभित्ति में प्रतिबिम्बित हो रहा हूँ। (ऐसा कहकर औत्सुक्य के साथ) यह अदृष्ट-पूर्व चमत्कारकारी महा माधुर्यसार सामने स्फुरित हो रहा है, अहो ! इसको देखकर मैं भी लुब्धचित्त होकर कौतुक पूर्वक श्रीराधिका की भांति इसे उपभोग करने की कामना करता हूँ ॥३२॥

(आगे जाकर) निमेषरहित-नयनों के समान भृंगावली-युक्त स्तवक की द्युतिधारण कर यह अम्लानपुष्पा मालती-माला पृथ्वीमें देवी की भांति विराज रही है ॥३३॥

(देवी चन्द्रावली प्रवेश करती है)

देवी-माधवि ! निश्चय इस हँसिनी के द्वारा नववृन्दावन से यह सुरसौगन्धिक माला लायी हुई है।

माधवी-यह सत्य है, परन्तु यह माला नागरी-संगसौरभ का उद्गार कर रही है। इसी शंका से मैंने यहां तुम्हें दी है।

चन्द्रावली-(अपने अंग के प्रति दृष्टिपात कर) सखि ! मैं सत्यभामा के भूषण के द्वारा कैसे भूषिता हुई हूँ ?

माधवी-(झूठ मानते हुए) राजनन्दिनी ! मेरी भूल हुई है।

चन्द्रावली-(सम्मुख देखकर) सखि ! देख, आर्यपुत्र पास में विराजमान हैं।

माधवी-आगे वह भर्ता-आर्यपुत्र नहीं हैं। यह तो उनका इन्द्रनीलमय प्रतिबिम्ब है।

चन्द्रावली-आश्चर्य ! प्रतिबिम्ब की कैसी चमत्कारिता है ? (ऐसा कहकर आगे चलकर) सखि ! यह तो आर्यपुत्र मालती चयन कर रहे हैं, अतः मैं अकेली वहां जाती हूँ। (ऐसा करती है)

श्रीकृष्ण-(चन्द्रावली को देखकर आनन्द से मन-मन

में) क्यों मेरी जीवनेश्वरी श्रीराधा यहां आ रही है ? (प्रकाश्य से) प्रिये ! कैसे इतनी दूर आई हो ? (ऐसा कहकर रोमांच पूर्वक देखकर)

हे खंजननयने ! मैं गुरुजनों की शपथ खाकर सत्य कह रहा हूँ कि तुम ही एकमात्र मेरी प्रीति सम्पादन करने वाली हो। तुम हृदय में कोई संशय मत करो, तुम मेरे प्राणधारण की श्रेष्ठ औषधि हो ॥३४॥

चन्द्रावली-(आनन्द पूर्वक मन-मन में) तो भी मौनालम्बन कर इसका अनुनय देखूँ।

नववृन्दा-(लता के पीछे अवस्थान कर) हाय ! किस प्रकार श्रीराधा का वेष-धारण कर देवी चन्द्रावली यहां उपस्थित हुई है ? तो भी जब तक श्रीमाधव इसको श्रीराधिका मान कर कोई भयानक भूल नहीं कर डालते तब तक मैं इस हारीतपक्षि के द्वारा इस श्लोक को भेजती हूँ। (ऐसा कहकर केतकीपत्र में श्लोक लिखकर वेशगृह में निक्षेप करती है। पुनः अवलोकन कर आनन्द पूर्वक) भाग्यवश श्रीकृष्ण हारीत के द्वारा हस्त में निक्षिप्त इस पद्म को देख रहे हैं, अतः मैं छिप जाती हूँ। (ऐसा कहकर चली जाती है)

श्रीकृष्ण-(पत्र को देखकर गुप्त भाव से पढ़ते हैं) हे मधुव्रतेन्द्र ! जिसको नवकर्णिकार की माला मान कर भ्रम कर रहे हो उसको कुंकुम-कईम से लिप्त पत्रवाली कैरवमालिका जानो ॥३५॥

(ऐसा कह कर चन्द्रावली के प्रति दृष्टि कर मन-मन में) साधु नववृन्दे ! साधु, उचित अवसर पर उपयुक्त सेवा का विधान कर रही हो। (प्रकाश्य में) देवि ! क्यों उदासीन की भांति अवस्थान कर भीतरी प्रसन्नतारूप सुधातरंग को सूचित कर रही हो ?

(ऐसा कहकर आदर के साथ अवलोकन कर)

हे चन्द्रावलि ! तुम शीतलता एवं सौरभ सम्पत्ति के द्वारा चन्द्र एवं कर्पूर के गौरव को खर्व कर रही हो। आज अपने वैभव के द्वारा मेरे अंग समूह को सुखी करो ॥३६॥

माधवी-(लतान्तर में रह कर आनन्दपूर्वक मन-मन में) निश्चय विश्वकर्मा के प्रसाधन प्रभाव से यह सौभाग्यमाधुरी लाभ हुई है।

श्रीकृष्ण-प्रिये ! तुम्हारे अंगसंग के लिए चंचलायमान इस सुहृज्जन को स्वयं अंगीकार करो (ऐसा कहकर अनुराग पूर्वक निकट जाकर मिथ्या भय के साथ) धिक् धिक्, कष्ट है, मैंने अनजान महान् अपराध किया है। क्योंकि यह तो देवी नहीं है परन्तु कोई अन्य कुमारी है (ऐसा कहकर विमर्ष का अभिनय करते हुए) हां जान

लिया, वह विश्वकर्मा की नातिनी होगी जिसको उसने दूर से तर्जनी के निर्देश के द्वारा दिखाया है।

चन्द्रावली-(छलपूर्वक माला दिखाने लगी)

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) हंसिनी ने यह अनर्थ उपस्थित किया है। (प्रकाश्य में) आश्चर्य ! आश्चर्य ! यमुना के तीव्र प्रवाह के द्वारा मेरी यह सौगन्धिक माला अपहरण हुई है। यह इसके हाथ में किस प्रकार आयी है ? अतः मैं अन्तःपुर में जाकर स्वयं समस्त वृत्तान्त देवी को सुनाऊँ। उसमें अपराध व कलंक की बिन्दु मात्र भी गुंजाईश नहीं रहेगी।

माधवी-(निकट जाकर) राजनन्दिनि ! क्या व्यापार है ?

चन्द्रावली-स्वाभाविक महानुराग युक्त के जो सदृश होता है।

माधवी-राजनन्दिनि ! नागरराज का यह व्यवहार लोकोत्तर चातुर्य लक्षण के द्वारा दुर्बोध है। आओ सत्यभामा को देखें॥३७॥

चन्द्रावली-(भ्रमणपूर्वक श्रीराधा का दर्शन करती है) अहो ! राधिका की यह मूर्ति पूर्वदृष्ट विपद्चिह्नों से मुक्त हो रही है। मुख की प्रसन्नता अन्तर के निगूढ़-सुख को व्यक्त कर रही है। इसकी दृष्टि चंचल हो रही है। इससे यह सुन्दरी आज कंसारि की संगम रत्न-उपलब्धि को व्यक्त कर रही है॥

श्रीराधा-(देखकर सखेद मन-मन में) चक्रवाकी-संगम के लिए इन्दीवर को अभिनन्दित किया गया है, परन्तु मात्सर्य परायण कलहंसी क्यों आकर मिली है ?

चन्द्रावली-(मृदुहास्य कर) सखि सत्ये ! कहो, उस बलपूर्वक भुजदण्डपीडन के समय वह सुवृत्त कौस्तुभ तुम दोनों के बीच रहा कि नहीं ?

श्रीराधा-देवि ! दुःखित इस परिजन के प्रति तिरस्कार

करना वृथा है।

माधवी-(सखेद मन में) इस सुरतरंगिणी की लावण्यामृत-विभ्रमलहरी तरंगावली में निमग्न पुरुष कुंजर अपने को स्मरण नहीं कर रहा है, तब किस प्रकार राजकन्यारूप दीर्घिका का स्मरण होगा ?॥

चन्द्रावली-(कपट हास्य पूर्वक) अयि लोलुपे सखि ! मेरे को आमन्त्रित न कर अर्थात् मुझसे न पूछकर इस महाव्रत की सुप्रतिष्ठिता कैसे की ?

श्रीराधा-देवि ! आप शरणागत व्यक्ति के रक्षण में असमर्था हो रही हो, तो भी मुझसे परिहास कर रही हो। क्या ईश्वरियों को यह उपयुक्त है ? कन्या बन्धुजन की अधीना होती है, उन्होंने मुझको आपके गृह में प्रदान किया है। इस गृह का गृहपति अतिचंचल तथा साध्वियों के व्रत को ध्वंस करने वाला है। इस आश्रम में कोई सदाचारिणी प्रामाणिकी अभिभाविका नहीं है। अतः आज निस्तार के लिए आपकी करुणा रूप नौका एकमात्र सम्बल है॥३८॥

चन्द्रावली-(मन में) यथार्थ कहती है। (प्रकाश्य में) सखि ! अब तुम्हारा क्या अभिमत है ?

श्रीराधा-देवि ! जब तक मैं स्यमन्तकमणि के द्वारा व्रत-समापन नहीं करती तब तक मेरी रक्षा कीजिए।

चन्द्रावली-सखि ! विश्वास करो, यह श्रीकृष्ण पुनः छलपूर्वक मेरी वंचना नहीं कर सकते हैं। क्योंकि यह विचक्षणा माधवी सखी सर्वदा मेरे पास रहती है।

माधवी-सुन्दरि ! विश्वकर्मा-प्रदत्त भूषण-पिटारी को अब तुम्हारे पास निकट भेज देती हूँ।

चन्द्रावली-सखि ! तुम माधवी-मण्डप में जाओ। मैं भी माधवी के साथ अन्तःपुर में जाती हूँ॥३९॥

(ऐसा कहकर प्रस्थान करती है) (सब चले जाते हैं)

इस प्रकार नववृन्दावन विहार नामक अष्टम अध्याय समाप्त हुआ॥८॥

नौवां अंक

(अनन्तर नववृन्दा प्रवेश करती है)

नववृन्दा-(सामने देखकर आनन्द के साथ) यह शरद्वृत्तु भक्ति की भाँति मिलित हो रही है जो भवन के विशुद्धि-साधन में दक्षा है। (शरत् पक्ष में जो जगत् में जल की स्वच्छता-क्रिया में दक्षा है) जो परमहंसगण के उल्लास विधान में समर्था है। (पक्षान्तर में श्रेष्ठ हंसगण के उल्लास विधान में समर्था है) जो विधु कृष्णचन्द्र के मधुर दर्शनसाधन में निपुण है (ऋतु पक्ष में चन्द्रमा के मनोहर आलोकसाधन में निपुणा है।।१।।)

(शरद्वृत्तु प्रवेश करती है)

शरत्-सखि ! नववृन्दे ! कहां गई हो ?

नववृन्दा-शरल्लक्ष्मि ! गुरु विश्वकर्मा के निकट।

शरत्-किसलिए ?

नववृन्दा-श्रीकृष्ण की आज्ञा से।

शरत्-किस विषय में ?

नववृन्दा-रैवत पर्वत पर सोलह हजार गृह-निर्माण के विषय में।

शरत्-उसका क्या कारण ?

नववृन्दा-जगत् विघ्नकारी, नीतिज्ञान रहित धरणीतनय नरकासुर ने कपट-कलह व्यपदेश से ब्रजपुरी से जिन सोलह हजार एकशत अश्रुपूर्ण-नयना कमललोचनाओं का हरण किया है, अब क्रीड़ागुरु श्रीहरि ने उस नरकासुर का वध कर उनका उद्धार किया है।।२।।

शरत्-(आश्चर्यान्वित होकर) क्या वे सब गोकुलकुमारियाँ हैं ?

नववृन्दा-इसमें क्या सन्देह है। जब कि वृन्दावन में केशिमधन श्रीहरि रूप फल के बिना एक क्षुद्रवृक्ष तक भी नहीं रहा है, तब वहाँ गोपियों के अपूर्व पर्वयुक्त प्रेम कल्पतरु की अस्तित्व-सम्भावना कहां है ?।।३।।

शरत्-तो वे सब राजकन्या हैं-ऐसी प्रसिद्धि क्यों है ?

नववृन्दा-कुमारियों की किसी मधुधारा से मोहित होकर भूमिपुत्र नरकासुर ने कामाख्यादेवी को प्रतारित करने के लिए दानवकुमारों के साथ विवाह होगा-इस प्रकार मिथ्या निरूपण कर उनको राजपुत्री करके प्रकाशित किया है।

शरत्-सत्य, सत्य, द्वारकापुरी में उनका प्रस्थापन कामाख्यादेवी का अभिमत है।

नववृन्दा-उस कामाख्यादेवी ने रुष्ट होकर इन्द्र को द्वारका भेजकर नरकासुर के वध की प्रार्थना की है।

शरत्-सखि ! समस्त गोपकुमारियों का यहां मिलन संघटन हुआ है। केवल पद्मा प्रमुख चार पद्मा, शैब्या, भद्रा एवं श्यामला-ये चार कन्या अवशेष रही हैं।

नववृन्दा-उनका पहले से ही एकत्र मिलन हो चुका है। शरत्-वह कैसे ?

नववृन्दा-उन पशुपालश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने एक समय सात वृषों को स्तम्भित कर अनुराग-सागर में मग्नदृष्टि वाली नग्नजित् दुहिता पद्माको ग्रहण किया है। और भी घनी प्रणयघूर्णा में घोर तृष्णा वाली, मित्रवृन्दारूपिणी शैब्या को, कन्दर्प-सर्प की गरलज्वाला से तपायमाना भद्रा को मुरहर श्रीकृष्ण ने मृदुहास्य रूप सुधाधारा से अभिसिंचित कर बलपूर्वक रंगस्थल से हरण किया है।।४-५।।

और भी-उच्चखम्भ के मूलदेश में सत्रिविष्ट जल में प्रतिबिम्ब देखते हुए ऊपर के भाग में भ्रमरचक्र के बीच बारम्बार भ्रमणशील मत्स्य को लक्ष्य कर ऊपर वाण फेंककर लीला से दो टुकड़े कर सुभद्राग्रज श्रीकृष्ण ने पुनः मद्राजनन्दिनी लक्ष्मणा नाम से परिचित श्यामला को प्राप्त किया है।।६।।

शरत्-(आनन्द से) तो फिर सौभाग्य वश पुनः गोकुल-सुख वैभव का दर्शन करूंगी।

नववृन्दा-सखि ! वसन्त शोभा के साथ अब वृन्दावन को विभूषित करो। देखो श्रीकृष्ण श्रीराधिका के साथ आ रहे हैं।

शरत्-देवी की अनुमति कैसे प्राप्त की है ?

नववृन्दा-कुण्डलेश्वरनन्दिनी माधवी-विरहिता हो रही है-यह जानकर मधुवीर श्रीकृष्ण सुन्दरविलास-प्रकाश के द्वारा उसको आनन्दित करते हुए हास्यमुख से कहने लगे-।।७।।

हे देवि ! ब्रह्मा ने सत्य-लोक दर्शन के लिए प्रार्थना की है, अतः मैं वहां जाना चाहता हूँ। आप भक्तिपूर्वक अनुमति दीजिए। (पक्षान्तर में-यह व्यक्ति (मैं) कामपीड़ित होकर सत्यभामा के दर्शन की इच्छा कर रहा है, अतः उस विषय में अनुमति-प्रदान कीजिए)।।८।।

शरत्-सखि ! प्रमाद है, प्रमाद।

नववृन्दा-कैसा ?

शरत्-माधवी ने भूषणपेटिका समर्पण कर देवर्षिशिष्या सुकण्ठी नामक किन्नरी को श्रीराधा के निकट भेजा है।

नववृन्दा-इसमें कोई शंका नहीं है, क्योंकि यह सुकण्ठी

सत्यभामा में अनुरागिणी है। तब तो मैं निश्चिन्त होकर जा रही हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती है) (तदनन्तर श्रीराधिका का आनन्दविधान करते-करते श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-हे कल्याणि ! तुम्हारी विम्बाधर अमृतमधुरिमा की सुरभि को दूरीभूत कर रहा है, मुखविम्ब पद्मगन्धयुक्त हो रहा है, कण्ठस्वर कोकिलस्वर के गर्व को खर्व कर रहा है। अंग चन्दन की भांति शीतल है, तुम समस्त सौन्दर्य-सम्पन्ना हो, तुमको आज प्राप्त कर मेरा इन्द्रिय समूह बार-बार आनन्दित हो रहा है। ॥६॥

(चारों ओर देखकर) अहो ! शोभा-लक्ष्मी चारों ओर पवित्र कैरववन में विराजमान हो रही है, प्रशस्त-मार्गद्रोही अन्धकारपुंज क्षीण होता जा रहा है, क्षूद्रात्मा नक्षत्रों में क्रमशः हास की संघटना हो रही है। अतः ऐसा बोध होता है कि शंकर का शिरोभूषण द्विजराज चन्द्र पूर्वदिशा में उदित हो रहा है। ॥१०॥

नववृन्दा-(निकट जाकर) भुवन का अन्धकार नाशक, क्रम से रक्तवर्ण परित्याग करने वाला, विशुद्ध वैष्णवरूप चन्द्रमा दूर से अपनी अमृतमयी कान्ति को फेंकता हुआ आकाशमार्ग में प्रवेश कर रहा है। (पक्षान्तर में जगत् के तामसिक-भाव को हरण करने वाला, क्रम से संसाराशक्ति को परित्याग करने वाला, विशुद्ध वैष्णव-चन्द्रमा मोक्षलाभ की इच्छा को परित्याग करता हुआ विष्णुपदप्राप्ति स्वरूपा भक्ति-पथ में प्रवेश कर रहा है)। ॥११॥

श्रीकृष्ण-सखे कौस्तुभ ! विलासिनी चक्रवाकी के विरह से शोकाकुल यह चक्रवाक् श्रेष्ठ बार-बार शब्द कर रहा है। अतः अपनी किरण श्रेणी का विस्तार करो।

श्रीराधा-(कौतुक के साथ देखने लगती हैं)

श्रीकृष्ण-हे सुन्दरि ! देखो देखो, मध्याह्न कालीन सूर्य के समान कान्तिवाले मणिराज कौस्तुभ की किरणावली से यमुना-पार की तटान्त भूमि में अन्धकार दूरीभूत हो गया है। इस रात्रि के समय में भी दिन के ज्ञान से आक्रान्त चित्त होकर चक्रवाक् युवक गम्भीर उत्कण्ठा से बार-बार कान्ता के साथ मिल रहा है। ॥१२॥

(पेटिका हाथ में लेकर सुकण्ठी प्रवेश करती है)

सुकण्ठी-सौभाग्यवश यहां सत्या के साथ श्रीकृष्ण मिलित हो रहे हैं। अतः लतान्तर में रहकर दर्शन करूँ। (ऐसा करती है)

नववृन्दा-हे कुन्ददन्ति ! तुम्हारे दोनों नेत्र चन्द्रकान्तमणि के समान हैं, जब श्रीहरि का मुखचन्द्र उदित हुआ है तब ने कैसे न द्रवीभूत होंगे ?

श्रीराधा-(आश्चर्य के साथ) पद्माकर में अथवा

चन्द्रालोक में पद्मपुष्प समूह कैसे प्रफुल्लित हुए हैं ?

श्रीकृष्ण-देखो, सम्मुख शुद्ध कांचस्थली पद्माकर की भांति आचरण कर रही है। क्योंकि उसमें पद्मरागमणि समूह पद्म की भांति निरन्तर प्रफुल्लित हो रही है। ॥१४॥ (पदों में) यह सुमनस्विनी माधवी वृन्दावन में विराज रही है। (इस अब्धौक्ति के बाद)-

श्रीकृष्ण-(सम्भ्रम के साथ) हाय ! यहां देवी आ रही है, अतः यहां से भाग चलना ही कल्याण कारक है। (ऐसा कहकर सब इधर-उधर चले जाते हैं)। (पुनः पदों में) जिसका स्तवक जगद्भूषण का भूषण है। ॥१५॥

सुकण्ठी-हा धिक् हा धिक्, मधुमंगल के हस्त में रहने वाले उस कामरूपदेशोत्पन्न शुकराज ने यह विघ्न उपस्थित किया है। अतः कन्दरा में छिपी हुई सत्यभामा का अनुसरण करती हूँ। (ऐसा करती है) (श्रीराधा प्रवेश करती हैं)

श्रीराधा-हाय हाय ! यह कोई आ रहा है, इसने मुझको कैसे देखा है ?

सुकण्ठी-स्वामिनि ! चिन्ता मत करिये, मैं आपकी किंकरी सुकण्ठी हूँ।

श्रीराधा-(सहर्ष) सुकण्ठी ! मैंने जान लिया, जान लिया।

सुकण्ठी-स्वामिनी ! आपके वस्त्र गीले क्यों देख रही हूँ ?

श्रीराधा-स्थलभ्रम से जल में गिर गई थी।

सुकण्ठी-माधवी प्रेरित इस अलंकार को ग्रहण कीजिए।

श्रीराधा-देखो, इस प्रस्तर में कोई चित्र दीख रहा है, इसके दर्शन का उपाय करो।

सुकण्ठी-बाहर जाकर आलोक (रोशनी) लाती हूँ।

श्रीराधा-मैं भी गीलावस्त्र त्याग करूँ (ऐसा कहकर पिटारी लेकर चली जाती है)

सुकण्ठी-(बाहर आकर) यह तो मधुमंगल के साथ स्वामी श्रीकृष्ण सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं। (अनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-सखे ! तुम्हारे हाथवाला अनर्थकारी वह शुक कहां है ?

मधुमंगल-उड़कर सम्मुख दाड़िमवृक्ष पर बैठा है।

श्रीकृष्ण-तब आओ, प्राणवल्लभा का अन्वेषण करें।

(ऐसा कहकर पवन का उपभोग करते हुए) हे धीर ! तुममें धूलि संस्पर्श नहीं है, तुम दक्षिणदिशा से प्रवाहित हो रहे हो, और बसन्त का आनुकूल्य विधान कर रहे हो, अतः हे सखे मलयानिल ! तुमसे प्रार्थना करता हूँ बतलाओ तो मेरी नीलपद्माक्षी श्रीराधिका कहां है ? ॥१६॥

मधुमंगल-सखे ! धीरे से कहो।

श्रीकृष्ण-(भ्रमण कर) हे कुरंगि ! ऐसा ज्ञात होता है कि-तुमने इस वन की सीमा में रमणीय, नवीना जंगम-सुवर्णलता के समान श्रीराधिका देखी है। क्योंकि उस राधारूप गुरु से तुमने माधुर्य गर्भित चंचल नेत्रलीला-दीक्षा को ग्रहण किया है। १७७।

(सामने दाड़िम वृक्ष को देखकर)

हे शुक ! क्या तुमने अनुपमा पीतकान्तिवाली उस मृगनयनी का इस वन में अवलोकन किया है, जिसका मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ ?

मधुमंगल-वयस्य ! तुम्हारे प्रश्न का अनुवाद करता हुआ वह शुक उत्तर दे रहा है कि हे पीतांशुक ! पीताम्बरधारि ! स्फीत कान्ति धारण करने वाली जिसे आप ढूँढ रहे हो। वह मृगलोचना मैंने आज इस वन में देखी है। १७८।

सुकंठी-(निकट आकर) जय हो, जय हो।

मधुमंगल-आप क्यों आई हैं ?

सुकंठी-इस प्रश्नोत्तरानुरूप किसी मधुर कथा के श्रवणार्थ।

मधुमंगल-प्रश्नोत्तर को क्या आपने श्रवण किया है ?

सुकंठी-केवल प्रश्नोत्तर ही नहीं।

मधुमंगल-फिर और क्या ?

सुकंठी-जो कुछ देखा है वह देवी को निवेदन करूँगी। (ऐसा कहकर चलने लगती है)

श्रीकृष्ण-(सम्भ्रम से) भद्रे सुकंठी ! देवि के मन को कलुषित करने की चेष्टा मत करना। हमसे संगीतविद्या में सर्वाधिपत्य के वर को ग्रहण कीजिये।

सुकंठी-देवी की कृपा से रुद्राणी की गायिकाएं आकर मेरी चरणवन्दना करती हैं, तुम्हारे वर से क्या मिल सकता है ?।

श्रीकृष्ण-तुम्हारी इच्छा क्या है ? मांगो।

सुकंठी-देव ! एक प्रार्थना है।

श्रीकृष्ण-निःसंकोच कहो।

सुकंठी-इस कन्दरा के बीच में कोई एक चित्रपट है, उसे देखने के लिए मेरी पूजनीया एक विद्याधरी उत्कण्ठित हो रही है।

श्रीकृष्ण-(ईषत् हास्य के साथ भ्रमण करते-करते) सखे कौस्तुभ ! तुम समस्त रत्नमण्डली के चूड़ामणि हो। अच्छा हुआ है, सुन्दर हुआ है, क्योंकि बिना कहे मेरी अभिलाष को तुमने पूर्ण किया है।।

मधुमंगल-हाय हाय ! पर्वत-कन्दरा में मध्याह्न समय की अपेक्षा भी अधिक उज्ज्वल आलोक उत्पन्न हो रहा

है।

(तदनन्तर श्रीराधिका प्रवेश करती है)

श्रीराधा-(अपने अंग के प्रति लक्ष कर) माधवी ने देवी की सज्जादि क्यों भेजी है ? (भ्रमण करती-करती श्रीकृष्ण को देख कर) मीन तो अंजलिमात्र जल चाहती थी, परन्तु उस पर स्वयं नवजलधर धारा-वर्षण कर आनन्द वर्द्धन कर रहा है।

मधुमंगल-(कान में) हे वयस्य ! दुष्टा वनचारिणीदासी के पुत्र ने मुझको बड़ी विपत्ति में डाला है।

श्रीकृष्ण-सखे ! कैसी विपत्ति ?

मधुमंगल-(रोष के साथ) मेरे से पूछते हो ? बांयी ओर देखो तो।

श्रीकृष्ण-(देखकर आवेग से) कैसे, यहां देवी किस प्रकार आयी है ?

श्रीराधा-(मन में) हा धिक् हा धिक् ! देवी कन्दरा में प्रवेश कर रही है ?-(ऐसा कहकर अन्तर्हित हो जाती है)।

श्रीकृष्ण-(मन में) निश्चय क्रोध की अतिशयता से देवी प्रच्छन्न हुई है।

मधुमंगल-(मृदुस्वर से) हताशे किन्नरि ! प्रिय-वयस्य के प्रति तुम्हारी इस प्रकार शठता उचित है क्या ?

सुकंठी-(मन में) देवी की वेषभूषा धारण करने वाली सत्यभामा को देवी मानकर यह (कृष्ण) भीत हो रहा है। अतः इसके निकट जाकर समस्त निवेदन करूँ।।

(निकट जाकर देवी के कान में कहती है) स्वामिनि ! आपसे श्रीकृष्ण को देवीभ्रम हो रहा है।

श्रीराधा-(मृदुहास्य से) इस मधुमंगल से परिहास करो। सुकंठी-आर्य्य मधुमंगल ! देवी रुष्टा होकर कह रही है।

मधुमंगल-क्या कह रही है ?

सुकंठी-अन्तःपुर में आये इस ब्रह्मबन्धु को बांधकर रखूँगी।

मधुमंगल-(भय के साथ) भो सखे ! अब तो स्तम्भ की भांति गम्भीर (जड़) हो रहे हो।

श्रीकृष्ण-सखे ! विस्मय से स्तम्भित हो रहा हूँ। क्योंकि यह स्वभाव से दक्षिणा होकर धीरता का त्याग कर रही है। (परामर्श कर चिन्तापूर्वक) स्वभाव से धीरजन भी समयानुरोध से कभी अधीर हो जाता है। क्योंकि सर्वसहा पृथ्वी भी क्षमागुण का परित्याग कर बहु बार विचलित हो जाती है। १७९।।

सुकंठी-(मन में) प्रभु के समक्ष धृष्टतासाहस उचित नहीं है। अतः यथार्थ कहती हूँ। (प्रकाश्य) आर्य्य ! यह

देवी नहीं है, सत्यभामा है।

मधुमंगल-सखे ! तुमने इस दुर्मुखी का कपट प्रलाप सुना है ?

श्रीकृष्ण-सुकंठि ! विदर्भनन्दिनी की प्रियता के कारण तुम चपल हो रही हो। अतः तुम्हारे वचनों में दरिद्रता क्यों ?

मधुमंगल-हे चेटिके ! तुम तो विषकण्ठी हो, लोग तुमको सुकंठी क्यों कहते हैं ? क्या यह ऐसी है कि-अमंगलरूपा विष्टियोग को जैसे भद्रा नाम से अभिहित किया जाता है ॥२०॥

श्रीकृष्ण-(निकट जाकर अनुनय के साथ) देवि ! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।

श्रीराधा-(मृदुहास्य पूर्वक) मैं देवी नहीं हूँ, मानुषी हूँ।

श्रीकृष्ण-(सहर्ष) सुकण्ठिके ! तुमने यह जो उपकार किया है, उसका प्रत्युपकार मेरे लिए दुःसाध्य हो रहा है।

मधुमंगल-ही-ही ! हे तुरंगमुखि चेटि ! तुमने क्या यह कपटविद्या देवर्षि से सीखी है ?

श्रीकृष्ण-प्रिये ! निकट में लाकर इस चित्रपट को देखो।

श्रीराधा-निश्चय यह नववृन्दा के गुरु विश्वकर्मा का कलाकौशल है।

(नववृन्दा प्रवेश करती है)

नववृन्दा-सखि ! इस विचित्र चित्र का सम्यक् रूप से अवलोकन करो। इसमें भली भाँति मथुरा-सम्बन्धिनी लीलामण्डली अनुक्रम से सन्निवेशित हुई है।

मधुमंगल-यह तो प्रथम है नन्दमहोत्सव।

नववृन्दा-इस विचित्र बालक के दर्शन से भीतर-बाहर आनन्द पूर्ण स्नेहातिशय से नवनीत निक्षेप कर गोपगण उत्सव कर रहे हैं ॥२१॥

(पुनः तर्जनी के द्वारा दिखाकर) कौन पवित्रजन पूतना गति लाभ करने में समर्थ होगा ? जो पूतना हरि के कण्ठ संलग्न होने पर हरिष्मणि युक्त हारधारिणी हुई है ॥२२॥

श्रीकृष्ण-मेरे पादांगुलिदल के द्वारा कुटी एवं भाण्डयुक्त शकट के भग्न होने पर मेरे पिता-माता आंगन में दुःख से कातर हो गये हैं-मैं उनका निरन्तर स्मरण करता हूँ ॥२३॥

नववृन्दा-यह तो तृणावर्तरूप-धारी वायु का नित्य विलास है।

श्रीकृष्ण-उस दुष्ट तृणावर्त्तासुर ने अपने निर्मित अज्ञान एवं अन्धकार के द्वारा सुहृज्जनों के मन एवं नयनों को आवृत कर ब्रज में निष्ठुर रूप को प्रकट किया है ॥२४॥

मधुमंगल-यह तो गोकुलेश्वरी स्वयं दधिमन्थन कर रही हैं।

श्रीराधा-मातः गोकुलेश्वरि ! वन्दना करती हूँ। (ऐसा कहकर अश्रुत्याग करने लगीं)

श्रीकृष्ण-(करुणा के साथ) महान् कदर्थनरूप बाल्यचापलसमूह से समुद्गत प्रेमाधिक्य के द्वारा माता विह्वल हो गई थी उन माता का अवलोकन कर आज मेरा हृदय उत्तप्त घृत के समान पिघलता जा रहा है ॥२५॥

नववृन्दा-गुरुदेव ने इस विषय में एक पद्य लिखा है। यथा-हे ब्रजेन्द्रमहिषि ! जिस बलवान् मुकुन्द ने अनर्गल सत्त्वादि गुणत्रय के द्वारा त्रिजगद्वर्त्ति चतुर्मुख-प्रमुख प्राणियों को बांधकर रखा है, उन मुकुन्द को तुमने सूक्ष्म रज्जुओं से बांधा है, अतः तुम्हारी प्रभावराशि को हम क्या कह सकते हैं ? ॥२६॥

मधुमंगल-यह यमलार्जुन-भंजन है ॥

नववृन्दा-गुह्यकद्वय श्रीकृष्ण का उलूखल-बंधन मोचन न करके क्यों चले गये ?

श्रीकृष्ण-(अश्रुयुक्त नयन से) हे सखि ! माता यशोदा ने वात्सल्यमण्डल रूप दृढतररज्जु के द्वारा मेरा जो दृढतर बन्धन-निर्माण किया, परमबन्ध विमोक्षण-कारी जब मैं उसके मोचन में असमर्थ हो रहा हूँ तब दूसरे की बात क्या करना ? ॥२७॥

नववृन्दा-तुम वत्सगण को अमृतदान करते रहते हो, अतः वत्सासुर को अमृतदान करना (मारकर मोक्ष देना) तुम्हारे लिए उपयुक्त हो रहा है। परन्तु शत्रुओं के लिए वह वक-राहित्य विधान कर किस प्रकार मित्रगण की रक्षा का विस्तार कर रहे हो ॥२८॥

श्रीकृष्ण-(श्रीराधा को देखकर) हे शशिमुखि ! यमुना तटभूमि में वत्सचारण-रूपमहामहोत्सव से जिन दिनों को अतिवाहित किया है, आज उन दिवसों के लिए मेरा चित्त अत्यन्त स्पृहायुक्त हो रहा है ॥२९॥

नववृन्दा-उन समस्त गोपरमणियों तथा गौओं की चरणावली को हम सब अवनत शरीर से मंगल के लिए प्रणाम करती हैं कि, जिनके अन्तःप्रणय के द्वारा मधुर क्षीरपान के लिए लुब्ध होकर क्षीरसागर अधिपति आनन्द से पुत्रभाव धारण कर रहे हैं ॥३०॥

श्रीकृष्ण-हे पद्माक्षि ! सम्मुख पर्वतगुहा के समान, गोपबालकों के क्रीडास्थल स्वरूप सर्परूप अघासुर का मृत शरीर बार-बार देखा जा रहा है। उस मुखादि छिद्रमार्ग में सर्वदा वायु प्रवेश कर रहा है, जिससे वह उदर पूरक-भरे पेट का प्रतीत हो रहा है ॥३१॥

नववृन्दा-देखो देखो, हे सखि ! चतुर परमेष्ठी-ब्रह्मा

अपने चार मुख से प्रकाशित वेदचारों के सारभाग के द्वारा जन नयनानन्दकारी अपने जनक श्रीकृष्ण का स्तव कर रहा है॥३२॥

मधुमंगल-इस सुगन्धि तालवन को देखकर मानो जीवन प्राप्त हो रहा है।

नववृन्दा-(श्रीबलरामजी को देखकर) तुम बड़े अद्भुत हो क्योंकि धेनुओं के पालक होकर भी तुमने धेनुक का वध किया है। ताल ध्वज होकर अत्युच्च तालवृक्ष को तोड़ने में कौतुकवान हो॥३३॥

श्रीकृष्ण-इस भाण्डीर मार्ग में आर्य की अतिशय विक्रम घोषणाकारिणी प्रलम्ब-पशु की मारणवेदी है।

नववृन्दा-(मन में) ज्ञात होता है कि-राधिका को दुःख होगा, इसलिए जानकर देव ने कालियदमन लीला नहीं दिखलाई।

श्रीकृष्ण-हे मनोहरकण्ठ ! देखो, सम्मुख मुञ्जाटवी शोभा पा रही है। यहां शरपुष्प के साथ दावानल आता देखकर आभीरसमूह भीत होकर पंकजमाला के समान मेरे चारों ओर घिर आया है॥३४॥

नववृन्दा-आगे यह वस्त्रहरण-तीर्थ (चीरघाट) है।

श्रीकृष्ण-प्रिये ! विशाखा के पीछे मस्तक पर कृतांजलि बद्ध होकर कौन अवस्थान कर रही है, मैं नहीं पहिचान रहा हूँ।

श्रीराधा-(लज्जा के साथ मन में) मेरे को चित्रित जानकर परिहास कर रहे हैं। (प्रकाश्य में) यह पद्मा है।

श्रीकृष्ण-पद्माक्षि ! पद्मा की बाँये ओर ?

श्रीराधा-(असूया से साथ) अब अपने गुणविस्तार की आवश्यकता नहीं है।

श्रीकृष्ण-हे मुग्धे ! मस्तक पर अंजली बांधकर वस्त्र लो-मेरी इस बात पर तुमने भ्रूयुगल कुञ्चित करके जो दृष्टिपात किया है, उससे तुम्हारा अधर स्फुरित हो उठा, मन्दहास्य व्यक्त हो गयी, एवं रोदन के साथ असूया तथा भ्रूभंग प्रकाश प्राप्त हुआ था। मैं तुम्हारे उस समय के मुख का स्मरण करता हूँ॥३५॥

श्रीराधा-मस्तक पर थाल रखकर ये सब कौन खड़ी हैं ?

नववृन्दा-यज्ञपत्नियां होंगी।

श्रीकृष्ण-स्वभावसिद्ध मन्दस्मित एवं नेत्र युगल के स्वाभाविक चांचल्य का मेरे संगोपन करने पर भी द्विजपत्नियों की राग-बन्धि धूमायित हो गई। उससे एक अभूतपूर्व गति अंकुरिता हुई॥३६॥

मधुमंगल-(अभिलाषा के साथ) हे प्रिय-वयस्य ! क्या तुम्हें स्मरण है, द्विजपत्नियों ने आस्वादन के लिए नाना

प्रकार भोजन द्रव्य प्रदान किया था, उनमें से मयूरपुच्छ के समान गोलाकार कुण्डली-पटलवाला एक आश्चर्य्य द्रव्य (जिलेपी) का हम सबने भोजन किया था॥३७॥

नववृन्दा-देखो, यह गोवर्द्धन-धारण है।

श्रीराधा-समस्त गोपियों का हृदय-पर्वत मानो एक ही समय अपूर्वभाव से दो भागों में विभक्त हो उठा है। एक भाग तो पर्वत की गुरुत्व-विवेचना में सन्तप्तमान है और दूसरा दिवारात्र प्रियदर्शन रूप महोत्सव से आनन्द युक्त था॥३८॥

नववृन्दा-गिरिमेखला में यह पद्म लिखा हुआ है, यथा-ईषद् उद्गत गोपियों के स्तन-परिसर के प्रति बार-बार दृष्टिपात करने पर गोवर्द्धन पर्वत कुछ चलायमान हो गया, उससे समस्त गोपवृन्द भयार्त होकर स्तुति करने लगे। सम्मुख हास्यमुख श्रीबलदेवजी को देखकर मधुसूदन नतवदन हो कर जय प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण-(शैलेन्द्रकन्दरा देख कर मुसकराते हुए) हे पद्माक्षि ! तुम्हें स्मरण है कि-कपट द्यूतक्रीड़ा में तुम पराजित हो गई थी। तुमने सखी के सामने यह प्रण किया था कि जो पराजित होगा वह दो बार आलिंगन दान करेगा॥३९-४०॥

श्रीराधा-(लज्जा के साथ आगे दृष्टि डालकर) इस पर्वतशिखर में उपविष्ट हम दोनों के गले में हार क्यों नहीं दीख रहा है ?

श्रीकृष्ण-क्या तुमको विस्मृत हो गया है कि तुम्हारे कुण्ड-राधाकुण्ड वाले निकुंजगृह में हम दोनों मिलन-परिश्रम से निद्रित हो गये थे। ललिता ने चोरी-छिपे आकर हम दोनों के हारों का अपहरण किया था॥४१॥

नववृन्दा-विपक्षियों को दर्शन मात्र से आप भवबन्धन से मुक्त करते हो। अतः वरुण-बन्धन से नन्दमहाराज को जो मुक्त किया, उसमें विस्मय की बात क्या रही॥४२॥

(ऐसा कहकर आगे अवलोकन कर)-पृथ्वी पर भारतवर्ष उत्तम है, उसमें मधुपुरी श्रेष्ठा है। मथुरामण्डल से वृन्दावन श्रेष्ठ है, उसमें यमुना पुलिन श्रेष्ठ है, उनमें रासस्थली अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि जहां गोपिका एवं श्रीकृष्ण के चरणों की परिचय प्राचुर्य्य युक्त रेणु विराजमान है, जो नारदादि महामुनियों में मनोराज्य में पूजित होती है॥४३॥

श्रीराधा-(चमत्कार के साथ) आश्चर्य्य ! वह वेणुशब्दमाधुरी सुनी जा रही है। (ऐसा कहकर अत्यन्त आनन्दपूर्वक कुछ कदम चलकर उन्माद के साथ) हे मातः ! वन में जगमोहन-कारिणी वंशी ध्वनि का श्रवण कर मैं उद्धूर्णा से चंचलचित्त होकर जाने को उद्यत हो रही हूँ। तुम यदि द्वार पर स्थूल अर्गल स्थापित करती

हो, तो उससे क्या होगा ? परन्तु मेरे प्राणनिर्गम पथ की सीमा पर अर्गल रखने में तुम कैसे समर्थ हो सकती हो ? ॥१४४॥

(ऐसा कहकर उद्धूर्णाग्रस्त हो जाती हैं)

श्रीकृष्ण-(औत्सुक्य के साथ) अहो ! रास-नामक यह अक्षर द्वय जहां से उत्पन्न हुए हैं उस शब्द के श्रवण-पथ में आने पर हम दोनों के मन प्रणयकेलिसिन्धु में निमग्न हो रहे हैं, मस्तक प्रमोद चक्र में निविष्ट होकर घूर्णायमान हो रहा है।

नववृन्दा-सखि ! यह रासोत्सव चित्रगत होकर भी तुम्हारे सम्बन्ध में सत्य हो रहा है।

श्रीराधा-हा धिक् यह क्या चित्र में परिणत हुआ है ?

श्रीकृष्ण-हे राधे ! केलिकुंजों में नवमदन-विनोद से परितोष प्राप्त होने पर लज्जा दूरीभूत हो गई। जो समस्त रात्रियां निमेष की भांति अतिवाहित हुई हैं उन समस्त शारदीय रात्रियों का स्मरण हो रहा है क्या ? (ऐसा कहकर उत्कम्प प्रकाश पूर्वक) हे राधे ! यमुना-उपवन में आप सबके साथ विविधक्रीड़ा में मैं अन्य समस्त भूल गया था। क्या पुनः वह अतुलनीय उत्सव-पूर्ण दिन उपस्थित होंगे ?

नववृन्दा-इस अम्बिकावन में सुदर्शन-प्रसाद तीर्थ विराजमान है। श्रीकृष्ण ने इस सुदर्शन को सर्पशरीर से मुक्त कर विधाधर देह प्राप्त कराया है ॥१४८॥

मधुमंगल-यह वह शंखचूड़ है।

श्रीराधा-(सभय) रक्षा करो, रक्षा करो। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण को आलिंगन करती हैं)

श्रीकृष्ण-(आलिंगन-सुख का आस्वादन कर) उत्तम है उत्तम, रे भैया शंखचूड़ ! मैंने तुमको संघर्ष में विनष्ट किया है, परन्तु उस पर भी तुम अपूर्व आनन्द दे रहे हो ॥

नववृन्दा-देखो, देखो, जिस अरिष्टासुर के लीलावश शिरकँपने पर शम्भु भीत होकर अपने वृष को मन्दराचल की गुहा में ले गये हैं, अहो ! आश्चर्य यह है कि उस दैत्य श्रेष्ठ अरिष्ट को श्रीहरि ने कौतुक वश क्रीड़ा करते-करते मार दिया (पुनः दिखाकर) ॥१४६॥

हे कृष्ण ! जो भुजा नीलकमलनयनी ब्रजबालाओं के कन्धे पर संलग्न होकर नीलकमल की भांति कोमल एवं स्निग्ध होकर प्रतीयमान होती है, वह भुजा केशीदानव के प्रति प्रयुक्त होकर बज्र होकर बज्र की भांति व्यवहार कर रही है ॥१५०॥

श्रीकृष्ण-यह व्योमासुर को वरण करने वाली मुक्तिकन्या का क्रीड़ाक्षेत्र है अर्थात् यहां व्योमासुर वध हुआ था मुक्ति

को प्राप्त हुआ था।

मधुमंगल-यह अक्रूर-(इतना कहकर चुप हो जाता है) श्रीराधा-हाय, हाय ! क्या करूँ ? (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं)

श्रीकृष्ण-(सम्भ्रम पूर्वक आलिंगन कर) कोमले ! कातरा मत होओ, यह चित्रमात्र है।

श्रीराधा-(भावगोपन कर) अहो ! इस प्रसंग की कैसी दारुणता है। जो चित्रित होकर भी सन्ताप दे रही है ?

नववृन्दा-यह मथुरा प्रस्थान का उपक्रम है।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! अक्रूरयात्रा की बात को बन्द करो, इसके आगे अन्य चित्र का अनुसरण करो, क्योंकि प्रिया का करुण विलाप मेरे स्मृतिपथ में उपस्थित होकर मेरी अन्तरात्मा को विदीर्णकर रहा है ॥१५१॥

नववृन्दा-जिसने राजकीय रजक का वध किया है, जिसने दरजी को वरदान दिया है, और जिसने दमनक की माला को धारण किया है, उस सुदाम के प्रियदेव को मैं नमस्कार करती हूँ ॥१५२॥

श्रीकृष्ण-(हँसकर) प्रिये ! देखो देखो, ताम्बुलिकाओं का अनुराग, जिससे मैं भीतर-बाहर दोनों प्रकार से रंजित हो रहा हूँ ॥

श्रीराधा-इस चित्र को क्यों छोड़े जा रहे हो ?

श्रीकृष्ण-(मन में) इसे गोपन नहीं कर सका, क्योंकि यह तो कुब्जा है।

श्रीराधा-नववृन्दे ! इस राजमार्ग में गोकुलनाथ के पीतवस्त्र का आकर्षण कौन कर रही है ?

(नववृन्दा कुछ हँसकर मुख को नीचे कर लेती है)

श्रीकृष्ण-(कुछ हँसकर) यह दूती अत्यन्त निपुणा है, यद्यपि तुमने इसे नियुक्त नहीं किया, तो भी यह तुम्हारे प्रति स्नेहपरायणा होकर वृन्दावन ले जाने के लिए मेरा वस्त्र धारण कर आकर्षण कर रही है ॥१५३॥

श्रीराधा-इसने तुम्हारी कीर्तिमण्डली के द्वारा ब्रह्माण्ड चिरपूर्ण किया है, अब आप इसे कितना छिपा सकते हैं ?

नववृन्दा-देखो देखो, हरिसेवा समस्त धर्मों से श्रेष्ठ है, ऐसा मानकर बनमाला में आसक्त होकर अलिकुल मदजल से पुष्ट विशाल हाथी का त्याग कर रहे हैं ॥१५४॥

अहो ! देखो ! श्रीकृष्णरूप मेघ मल्लमरालगण को भय उत्पादन कर जगत् का ताप निवारण कर रहा है। यद्यपि वह जगत् का जीवनदायक है तो भी कंस को कल्याण प्रदान क्यों नहीं कर रहा है अर्थात् उसे मार रहा है।

श्रीराधा-यह कौन है ? जिसके वेश को खींचकर उच्चमंच से श्रीकेशव भूमि पर गिरा रहे हैं।

नववृन्दा-यह वही दुष्ट कंस राजा है।

श्रीराधा-(आनन्द के साथ) मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य हुआ है।

श्रीकृष्ण-निश्चय रात्रि का पहला याम अतिवाहित हो गया है। कन्दराके बाहिर छाया-विस्तार संकुचित हो रहा है। आइये, हम सब यमुनातट पर चलें। (ऐसा कहकर सब चले जाते हैं)

श्रीकृष्ण-यहां अति निकट मेरी प्रतिमूर्ति है, जिसके पास में मेरी महाविलास-विद्या की सिद्ध भूमि रूप तमाल-रसालों से परिवेष्टित कुंजशालिका विद्यमान है। (बायीं ओर दृष्टिपात कर)

अहो ! माणिक्यकुट्टिम के तट पर यमुना के प्रवाह में एवं कौस्तुभमणि में तुम्हारा मुख-मण्डल प्रतिबिम्बित हो रहा है। जो एक होकर भी वनभूमि में अनेक चन्द्रावली को प्रकट कर रहा है॥५६॥

(माधवी के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली-सखि ! विरहबिभ्रान्ता में वृन्दावन में प्रवेश कर रही हूँ। क्योंकि इस समय इन्द्र-नीलमणि प्रतिमा के बिना मेरा अन्य कोई अवलम्बन नहीं है॥

माधवी-राजनन्दिनि ! मैंने ऐसा सुना है कि स्वामी (द्वारकानाथ) ने शुभक्षण में यात्रा की, परन्तु अब तक ब्रह्मलोक (सत्या के लोक) में नहीं पहुँचे, यहां ही विराजमान हैं॥

चन्द्रावली-सखि ! सत्य कह रही हो, क्योंकि उनका अंग-सौरभ विस्तारित हो रहा है। वे अवश्य यहां ही होंगे॥

श्रीकृष्ण-(कुंजदेहली पर आकर) प्रिये ! इधर आओ, हम क्षणकाल विश्राम सुख का अनुभव करें।

नववृन्दा-(मन में) प्रणयजात असूया के द्वारा भ्रूद्वय को वक्र करके नम्रमुखी श्रीराधिका आम्रवृक्ष के अन्तराल में क्यों अवस्थित होने लगी है ?

चन्द्रावली-(ग्रीवा उठा कर) सखि ! देख देख आर्यपुत्र कुंजगृह में अवस्थित हैं।

श्रीकृष्ण-यहां निर्भयता से हमारा मिलन होगा, क्योंकि विदर्भराजनन्दिनी अब द्वारका में अवस्थान कर रही है॥५७॥

चन्द्रावली-माधवि ! आर्यपुत्र ने निश्चय मुझे देखा है, क्योंकि "विदर्भअंगभू" ऐसा कह रहे हैं॥

माधवी-तुम तो लतान्तर में छिपी हुई हो, तुम्हारे दर्शन की सम्भावना कहां है ? ऐसा बोध होता है वे उत्कण्ठित होकर भावना के द्वारा तुम्हें देख रहे हैं। अतः तुम एकाकिनी होकर अलक्षित में निकट गमन कर

उनको आनन्दित करो॥

श्रीकृष्ण-चंचल-लोचना यह गौरी रुक्मिणी (अर्थान्तर में स्वर्णमयी) हारलता की भांति गुणों के द्वारा उज्ज्वलस्वरूपा होकर मेरे हृदय में अर्पिता होने के लिए उपयुक्ता होकर कण्ठ तट में क्या संलग्ना नहीं होगी ?॥५८॥

(चन्द्रावली अग्रसर होकर श्रीकृष्ण का अपांग दृष्टि से अवलोकन कर सम्मुख अवस्थान करने लगी)

श्रीकृष्ण-(विस्मय पूर्वक आनन्द से मत्त होकर) अहो ! आश्चर्य ! तुम तो रसालवृक्ष के अन्तराल में छिपी हुई थीं, परन्तु तमालमूल से कैसे आयीं ?

चन्द्रावली-(भयपूर्वक नववृन्दा के मुख के प्रति देखने लगी)

नववृन्दा-देव ! देवी साक्षात् रूप में यहां विराजमान है।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! केवल वेश के द्वारा नहीं, किन्तु संकल्प के द्वारा, क्योंकि यह उसी प्रकार गम्भीरता का अवलम्बन कर रही है।

चन्द्रावली-(मन में) इस प्रकार वाक्य से मैं अत्यन्त सन्देह में पड़ गयी हूँ।

श्रीकृष्ण-(नववृन्दा को देखकर) सत्यभामा मुझे क्यों.....? (इस अर्द्धोक्ति में नववृन्दा नेत्रों को संकोचित करने लगी)

चन्द्रावली-(खेद पूर्वक धीरे धीरे) हूँ, प्रेम के गौरव को जान गयी।

श्रीकृष्ण-(अवलोकन कर मन में) हाय ! क्या वह देवी है ? तो सम्बरण करने के लिए चेष्टा करूँ॥ (प्रकाश्य में) देवी अकोपना होकर भी क्यों आज प्रसन्ना नहीं हो रही है ? इसका कारण न जानकर मेरा हृदय अब व्यथित हो रहा है॥५९॥

चन्द्रावली-माधवि ! तुम कहां हो ?

माधवी-(निकट आकर) यह रही मैं।

श्रीकृष्ण-(शंकित होकर मन में) हे सखे ! हे बालरसाल ! तुम अपने शरीर को इस प्रकार बढ़ाओ कि जिससे तुम्हारी ओट में अवस्थित उस सुन्दरी को रुक्मिणी नहीं देखे॥६०॥

माधवी-राजनन्दिनि ! रसालमूल में अपने द्वितीय शरीर का दर्शन करो॥

चन्द्रावली-(भली भांति देखकर) यह उपयुक्त हुआ।

श्रीकृष्ण-(मन में) इस आम्रवृक्ष से कोई सहायता नहीं मिली है, अब तो छल का सहारा लेना होगा। (प्रकाश्य से) देवि ! चंचल नेत्रों युक्त मुख को उठाओ, तुम्हारे इस मुखकमल को देख कर मृगलांछन चन्द्र लज्जित हो रहा

है इस मलिन मुखचन्द्र को देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, क्योंकि तुम मुझे जीवन से अधिक प्रिय हो।।६१।।

माधवी-देव ! तुम्हारे प्रेम-कोमल शब्दों के योग्या इसे मत समझो, यह सत्या नहीं है।

श्रीकृष्ण-उत्तम, माधविके ! तुमने मेरी हृदय शंका निरस्त की। इन्द्रजाल में अभिज्ञा नववृन्दा ने इस मायामयी देवीमूर्ति का निर्माण किया है। और रसाल-मूलवर्त्ति मूर्तिसत्या है-ऐसा ज्ञात होता है। (अतः आम्रमूल के निकट गमन कर अनुनय के साथ कहते हैं)-हे कुण्डिनेश्वरसुते ! हृदय के संतोष रूप अमृत के द्वारा प्लावित होकर तुम विशुद्धा हो रही हो, इसीलिए अन्तःपुर से स्वयं यहां आयी हो। असमय में मेरे प्रति क्यों प्रबल मानमुद्रा का विस्तार कर रही हो ?।।६२।।

नववृन्दा-देव ! माधवी के पार्श्व में देवी अवस्थित हुई है।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! तो क्या रसाल के मूल में देवी की मायामयी मूर्ति है ?

नववृन्दा-मायामयी नहीं है, यह देवी की सत्यभामा नाम्नी कोई प्रियसखी है।

श्रीकृष्ण-अहो ! देवी के करुणामृतझरणा की कैसी गंभीरता ! क्योंकि उसके द्वारा सखीजन को सारूप्य प्रदान करने से मैं अत्यन्त विभ्रान्त हो गया।।

श्रीराधा-(मन में) यहां से चला जाना मेरे लिए एकमात्र उपाय है। (ऐसा कहकर नववृन्दा के साथ चली जाती है)

चन्द्रावली-(उपहासपूर्वक मृदुहास्य करके) माधवि ! जिसमें कज्जल की भांति श्यामता है, जो नवीन पल्लव के समान उज्ज्वल है, उस गुंजाफल के समान अधर का दर्शन कर मैं विशेष आनन्दित हुई।।६३।।

श्रीकृष्ण-देवि ! अन्य प्रकार की शंका मत करना,

सुगन्धपूर्ण शैलशिला खण्ड का आग्राण करते समय उसकी कस्तूरी लग गयी होगी।।

चन्द्रावली-देव ! कौमारकाल से मैंने सुन्दर अध्ययन किया है, अतः अध्यापन-परिश्रम की आवश्यकता नहीं।

माधवी-राजनन्दिनि ! अवसर-क्रम से ईश्वरों (बड़ों) की उपासना होती है। हमारी अनवधानता के हेतु नीति-मर्यादा का जो अतिक्रमण हुआ है, उसके लिए द्वारकानाथ से क्षमा प्रार्थना करो।

श्रीकृष्ण-माधवि ! तुम्हारी प्रकृति अति-विचित्र है, क्योंकि तुम सर्पी भाव का अवलम्बन कर नेवली का चरित्र प्रकाश कर रही हो। (ऐसा कहकर अंजलिजोड़ कर) हे प्राणाधिके ! हे प्रियतमे ! हे देवि ! आज मेरे प्रति प्रसन्न हो। राहु सहसा चन्द्रकला का स्पर्श नहीं करता। अतः चन्द्रावली के स्पर्श की बात का तो कहना ही क्या ?।।६४।।

माधवी-इस प्रकार सम्बोधन में प्रयोजन नहीं है। क्योंकि यह सत्यभामा नहीं है।

चन्द्रावली-देव ! तुम्हारी संकोचता को देखकर मैं दुःखी हो रही हूँ। अतः प्रसन्न होकर निर्भयता से क्रीड़ा करो, मैं अन्तःपुर के लिए जा रही हूँ।

(ऐसा कहकर परिजन के साथ प्रस्थान करती है)

श्रीकृष्ण-देवी तो अन्तःपुर को चली गई है, तब हम भी चलें।

(ऐसा कहकर भ्रमण करते-करते) श्रीराधिका मेरे मुख के प्रति अपांग तरंग निक्षेपपूर्वक क्रीड़ा प्रसंग भंग से विवर्णमुखी हो गयीं एवं देवी को देख मस्तक अवनत कर आम्रवृक्ष में छिपकर मेरे मन का आश्रय करने लगी।।६५।।

(ऐसा कहकर सब प्रस्थान करते हैं)

इसप्रकार चित्रदर्शन-नामक नवम अंक समाप्त हुआ।।६॥

दसवां अंक

(अनन्तर तुलसी और मालती दोनों प्रवेश करती हैं)
तुलसी-सखि ! मालति ! कोई मंगलवार्ता तुम्हारे कर्णागोचर हुई है क्या ?

मालती-सखि तुलसि ! कैसी मंगलवार्ता ?

तुलसी-भगवती पौर्णमासी ने कुटुम्बों के साथ गोष्ठेश्वर श्रीनन्द महाराज को लेकर सौराष्ट्रदेश में प्रवेश किया है !

मालती-(आनन्द के साथ) सखि ! माधवी-चतुःशाला में जाकर यह शुभवृत्तान्त राधिका को सुनाऊँगी।

तुलसी-सरले ! राधिका अब माधवी-चतुःशाला में नहीं है।

मालती-तो वह कहां है ?

तुलसी-उस चित्र-दर्शन वाले दिन केलि-लक्षण देखकर परिहास करती उसको अन्तःपुर में ले गई।

मालती-परिहास कैसा ?

तुलसी-भगिनि ! बोध होता है शुकपक्षियों समुन्नत दाड़िमबुद्धि से तुम्हारे स्तन पर और ने बिम्बफलज्ञान से अधर पर क्षत किया है। मयूरो ने फणिबुद्धि से तुम्हारी यह मणिमयी माला विदीर्ण की है। अतः इस प्रकार से तुम्हारा बनवास हृदय को व्यथित कर रहा है॥१॥

मालती-हँसने दो, परन्तु तो भी यह कनिष्ठा होकर सौभाग्य से गरीयसी मानी जाएगी॥

तुलसी-सत्य कहती हो, देख देख, आज श्रीकृष्ण कौस्तुभ की हजारों किरणों से सूर्यदेव को तिरस्कृत कर राधासंग-लाभ के लिए युक्ति कर राजमहल में विराजमान हुए हैं॥२॥

अतः आओ हम अपने-अपने घर चलें। (ऐसा कहकर प्रस्थान करती हैं)

(तदनन्तर स्वर्ण-दण्ड पर अवस्थित शुकपक्षी को हाथ में लेकर विदूषक एवं उसके उपास्यमान श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-अहो ! मेरी प्रिया स्नेह से उद्दीपिता होकर भी विदर्भसुता के द्वारा अन्तःपुर में अवरुद्धा हो गई है, जो कलसी से आवृत प्रदीपशिखा की भांति मेरे मनो-मालिन्य को दूर करने में असमर्था हो रही है॥३॥

मधुमंगल-ऊँचे स्वर से मत कहो, क्योंकि यहां देवी के परिजन चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं।

श्रीकृष्ण-सखे कौस्तुभ ! तुम्हारी ज्योति से मेरी यहां विद्यमानता का अनुमान कर सकती है। अतः आज

मृदुता का अबलम्बन करो॥

(नववृन्दा प्रवेश करती है)

नववृन्दा-देव ! देवी ने मुझे भेजा है।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! किसलिए ?

नववृन्दा-कीरराज के लिए।

श्रीकृष्ण-सखे ! शुकपक्षी को दे दो।

(मधुमंगल नववृन्दा के हाथ शुकपक्षी का स्वर्णदण्ड अर्पण करने लगता है)

श्रीकृष्ण-(उत्कण्ठा पूर्वक) सखि नववृन्दे ! परिमल से उज्ज्वल एवं मनोहर-अंगवाली, अन्तःपुर में सत्राजितकन्या करके विख्याता, कर्णालम्बी रत्नकुण्डल के किरणों से शोभित गण्डवाली उस राधिका को देखने के लिए मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है॥४॥

नववृन्दा-यह विषय दुर्लभ प्रतीयमान हो रहा है। उस देवी ने बहु प्रकार वंचित कर अपनी चातुरी विद्या का अध्यापन कर लिया है। अतः गंभीर अनुरागप्रकटन छल से सत्यभामा को अपनी छाया की भांति कर अपने पास रख लिया है।

मधुमंगल-आश्चर्य ! सत्य ही यह कौस्तुभ अतिचंचल है, क्योंकि निषेध करने पर भी राजमहल को आलोकित कर रहा है।

श्रीकृष्ण-सखे ! यह कौस्तुभ-किरण नहीं है। अतः इसको तिरस्कृत मत करो।

नववृन्दा-आर्य्य मधुमंगल ! सत्यभामा की सखी पिंगला स्यमन्तकमणि लेकर इधर आ रही है। (पिंगला प्रवेश करती है)

पिंगला-(श्रीकृष्ण को देखकर लज्जा के साथ) देव ! स्वामी सत्राजित ने राजनन्दिनी सत्यभामा को देने के लिए इस मणीन्द्र को भेजा है। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण के हाथ में देती है)

श्रीकृष्ण-(मणि को हृदय में रखकर आनन्द से) हाय ! प्रिया के परिवार के संगम से उसके संग-साधन को प्राप्त हो रहा हूँ।

मधुमंगल-किस प्रकार ?

श्रीकृष्ण-मैं युवतीवेश और कलाविलास को धारण कर मणि को हाथ में लेकर पिंगला का अनुसरण कर देवी के द्वारा भी सादर अभ्यर्थित होकर रात्रि में उस मृगाक्षी के साथ विहार करूँगा॥५॥

नववृन्दा-सत्य, यह विधान दुर्लक्ष्य है।

श्रीकृष्ण-नववृन्दे ! सन्ध्या निकट है, तुम अन्तःपुर में प्रवेश करो, हम निर्जन में स्त्रीवेश धारण करते हैं ॥

(ऐसा कहकर के मधुमंगल एवं पिंगला के साथ प्रस्थान करते हैं)

नववृन्दा-(आगे चलकर) देखो, देवी परिजनवर्ग से परिवृता होकर सत्यभामा को दक्षिणपार्श्व में लेकर मणिमन्दिर में विराजमान है।

(तदनन्तर उसी प्रकार चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली-(नर्महास्य के साथ) सखि सत्ये ! मैं अत्यन्त गौरव से तुम्हारा इस अन्तःपुर में लालन-पालन कर रही हूँ। तो भी तुम वनमाला के (पक्षान्तर में श्रीकृष्ण की वनमाला के) साथ एकत्र वाससुख का स्मरण कर क्यों हरिणी की भांति उत्कण्ठिता हो रही हो ? ॥

श्रीराधा-(अभिलाषा के साथ हास्यपूर्वक) देवि ! समस्त सुख के आवास स्थान इस अन्तःपुर में मेरे मन में वनमाला की संगामिलाषा क्यों होगी ?

नववृन्दा-(निकट आकर) देवी ! कामरूप देश से आनित जिस शुक पक्षीराज की कथा तुमने सुनी है, यह वही शुकपक्षी है।

चन्द्रावली-(आनन्द के साथ) मैं सन्तुष्ट हुई हूँ, क्योंकि इसका आकार अति सुन्दर है।

नववृन्दा-देवी ! इसकी बुद्धि अति तीक्ष्ण है। अतः इसका स्वभाव भी अति सुन्दर है।

चन्द्रावली-हे कंचुकि ! पके दाड़िम फल के द्वारा इस शुकराज को आनन्दित करो।

कंचुकी-देवी ! आपकी जैसी आज्ञा। (ऐसा कहकर शुकपक्षी के साथ प्रस्थान करती है) (तदनन्तर स्त्रीवेशधारी श्रीकृष्ण एवं पिंगला के पीछे-पीछे मधुमंगल प्रवेश करता है)

मधुमंगल-(परिक्रमण कर) देवि ! सत्राजित ने इन रमणियों को भेजा है।

चन्द्रावली-(श्रीकृष्ण को देखकर मन में) अहो ! आश्चर्य सौन्दर्य है। यह उज्ज्वल श्यामवर्णा सुन्दरी कौन है जो कान्तिसमूह से मेरे अलिन्द को इन्द्रनीलमणिमय कर रही है ?

नववृन्दा-देवी ! यह सौभाग्य-भागिनी रथांगी नामक सत्यभामा की सखी है।

(श्रीराधा श्रीकृष्ण को पहिचान कर हास्य करने लगती हैं)

माधवी-आर्य मधुमंगल ! यह श्यामला भली भांति अवगुण्ठिता होकर नवीन वधू की भांति क्यों लज्जिता हो रही है ?

पिंगला-सखि ! इसकी प्रकृति अति संकोचशील है।

नववृन्दा-(देवी को देखकर) यह रथांगी बार-बार उत्सुका हो रही है। तुम्हारे सम्मुख अपनी सखी के साथ बोलने में लज्जिता हो रही है। अतः अपने प्रियजन की संगामिलाषिणी सत्यभामा को स्वर्ण मन्दिर में भेज दो ॥६॥

चन्द्रावली-सखि सत्ये ! स्वर्ण मन्दिर में जाकर इस रथांगी को आलिंगन करो।

श्रीराधा-(मृदु हँसकर) जैसी आज्ञा।

(श्रीकृष्ण के साथ सपरिवार प्रस्थान करती हैं)

चन्द्रावली-माधवी ! मैंने सुना कि भगिनी राधिका के पास सूर्यविम्ब के समान एक मणिरत्न है ?

(पर्दे में शुकपक्षी श्रीकृष्णोक्त “स्नेहेन दिप्ता” (संख्या-३ द्रष्टव्य) इस पद्य का पाठ करने लगा)

चन्द्रावली-(पर्दे की ओर देखकर) यह शुकपक्षी क्या पाठ कर रहा है ?

(वेषगृह में “अद्य प्रियां परिमलोज्ज्वलरम्यगात्राम” (संख्या-४ द्रष्टव्य) इत्यादिश्लोक पाठ करने लगा)

चन्द्रावली-(खेद के साथ) सखि ! सुनने की बात मैंने सुनी। (पुनः नेपथ्य में) “पिंगलामनुसृत्य मणिसंगी” (संख्या-४ द्रष्टव्य) इत्यादि श्लोक पाठ होता है।

चन्द्रावली-माधवी ! तुमने सुना है क्या ?

माधवी-केवल सुना नहीं, देखा भी है।

चन्द्रावली-सखि ! यदि सत्या अन्तःपुर में वास करती है तो मेरा मंगल कहाँ है ? अतः किसी उपाय से मैं इसको कुण्डिनपति के घर भेजती हूँ ॥७॥

माधवी-राजनन्दिनी ! अच्छी युक्ति की है।

चन्द्रावली-आश्चर्य, वंचनविद्या की कैसी विलक्षणता है, क्योंकि विशेष सावधानी से भी हम सब वंचित हुई हैं। अतः आओ स्वर्ण मन्दिर में चलें। (प्रस्थान करती हैं)

(तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(आनन्द पूर्वक) हे सुन्दरि ! चंचल चकोर को चमत्कृत करने वाले नयनों की किंचित् खोलो, और सुधाकर के माधुर्य को तिरस्कृत करने में निपुण श्रेष्ठ हास्य-सुधा का वर्षण करो ॥८॥

श्रीराधा-(लज्जा के साथ) सुन्दर ! केवल मुख में प्रिय वचनों का प्रयोजन नहीं। हे देव ! तुमने त्रिजगत् के कर्णों के चमत्कारी जिस प्रेम-उद्रेक कारी डिण्डिम (वाद्य विशेष) को प्रदान किया है, वह अब नीरव हो रहा है ॥९॥

श्रीकृष्ण-प्रिये ! ऐसा मत कहो, हे मधुरेक्षणे ! चंचल अपांग-भंगी-अभ्यासक्रीड़ा में अतिपटु बहुत सुनयना सुन्दरियां मौजूद हैं। परन्तु तुम्हारे बिना मुझे क्षणभर भी मंगल की सम्भावना नहीं है। आकाश तारावली से

परिवृत होकर और चन्द्रकिरण से आलिंगित होकर भी वृष-राशिस्थ सूर्य की कान्ति के बिना किसी प्रकार स्वच्छता प्राप्त नहीं कर सकता (पक्षान्तर में-शुद्ध मुक्ताफलों से युक्त होकर चन्द्रावली की कान्ति से आलिंगित होकर भी मैं वृषभानुनन्दिनी ! (आप) के बिना आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता ॥१०॥

नववृन्दा-चारुमुखि ? यह बात उपचार नहीं है, सत्य ही है।

श्रीकृष्ण-प्रिये ! तुम्हारे मनोहर मुख का दर्शन कर मेरे हृदय में उपमा के लिए किसी वस्तु का प्रवेश नहीं होता है, क्योंकि हे प्रिये ! तुम्हारे चरण रूप अंक में कमल स्थान प्राप्त करने की विज्ञता नहीं प्राप्त कर रहा है। रत्नमुकुट भी चरणांगुष्ठ नख की तुल्यता विधान करने में समर्थ नहीं हो रहा है। हे चण्डि ! अधिक क्या कहूँ, समुज्ज्वल कलावाली आनन्दमयी चन्द्रावली भी तुम्हारे मुखमण्डल के निर्मञ्छन में औचित्य लाभ करने में समर्थ नहीं हो रही है ॥११॥

(माधवी के साथ चन्द्रावली प्रवेश कर रही है)

चन्द्रावली-माधवि ! तुमने सुना है ?

माधवी-हां।

श्रीकृष्ण-(सम्मुख देखकर) देखो ! देखो ! देवी निकट आ गई है।

(ऐसा कहकर सब सम्भ्रम के साथ उठ जाते हैं)

चन्द्रावली-(निकट आकर) सखि ! सत्यभामे ! तुम्हारे पिता सत्राजित् ने तुमको जिस आश्चर्य मणिन्द्र का दान किया है उसको देखने के लिए मैं आयी हूँ।

नववृन्दा-(श्रीकृष्ण के हाथ से मणि लेकर दिखाने लगती है)

चन्द्रावली-सुना है यह मणीन्द्र क्षीरोदसागर मन्थन के समय उत्पन्न हुआ है।

मधुमंगल-देवि ! ऐसा ही है।

चन्द्रावली-वहां एक और आश्चर्य है।

नववृन्दा-देवि ! वह कैसा ?

चन्द्रावली-दानवों के द्वारा धन्वन्तरि के हाथ से बलपूर्वक अमृत-कुम्भ छीने जाने पर आर्यपुत्र ने उस समय एक अपूर्वरूप को प्रकट किया था, जो मोहिनी नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीकृष्ण-(मन में) निश्चय देवी ने मुझे जान लिया है, नहीं तो असमय मोहिनी की बात क्यों उठाई है।

चन्द्रावली-वह मोहिनी मूर्ति यथार्थ नाम की थी, जिससे योगिराज शंकर भी अति मोहित हो गये थे। उसमें हम सबका कहना ही क्या है ?

सब-(मन-मन में सोचने लगे कि इस प्रकार दुरूह रूपधारण की बात देवी ने कैसे जानी ?)

चन्द्रावली-(मृदुहास्य पूर्वक) सखि ! सत्यभामे ! इसमें ऐसा कोई उपाय है कि जिससे हम सब उस रूप को देख सकेंगे।

(श्रीराधा ईर्ष्यापूर्वक भ्रूभंगी प्रकट कर श्रीकृष्ण को देखने लगीं)

श्रीकृष्ण-(मन में) जब सम्मुख में ऐसा हुआ है तो वचन के द्वारा मेरी वंचन-चातुरी अत्यन्त निष्फल हुई है। (प्रकाश्य में) देवि ! आज मुझको तुम पहचानने में समर्थ होगी अथवा नहीं, इसकी परीक्षा के लिए मैंने इस वेष को धारण किया है।

चन्द्रावली-(कृत्रिम सम्भ्रम को प्रकाश कर) हाय ? हाय ? यह तो आर्यपुत्र हैं।

(ऐसा कहकर मस्तक अवनत करने लगी)

मधुमंगल-हे प्रियवयस्य ! हमारी देवी तुमको पहिचान कर जीत गई है। अतः तुम अपने को चतुर मत समझो।

माधवी-आर्य ! मधुमंगल ! यह तो काले भुजंग के दंशन पर वज्राघात हो रहा है।

चन्द्रावली-मुग्धे ! माधवि ! इस महोत्सव में क्यों दुःख करती हो, इस दुर्लभ रूपामृत का पान करो।

श्रीराधा-(मन में) हाय ! हाय ! मैंने पराधीनता की पराकाष्ठा का अनुभव किया है।

चन्द्रावली-देव ! मैं हतभागिनी अति अमंगलमयी मणिदर्शन की उत्कंठा प्रकाश कर तुम्हारे निकट अपराधिनी हुई हूँ।

श्रीकृष्ण-देवि ! जैसी इच्छा हो, तिरस्कार करो, परन्तु तुम्हारी करुणा ही मेरा आश्रय है।

(पर्दे में) सखि ! जो सुनने का था वह सुना है।

मधुमंगल-कंचुकी के हाथ में यह फिर पड़ रहा है।

श्रीकृष्ण-(मन-मन में) मेधावी शुक ने यह कदर्थना की है।

(पुनः पर्दे में) “अन्तःपुरेऽस्मिन् सत्या” अर्थात् “यह सत्या अन्तःपुर में” इत्यादि श्लोक (संख्या-७ द्रष्टव्य)।

श्रीराधा-(खेद पूर्वक मनमें) उत्तम, अरे कीर अति उत्तम, मुझे खूब अनुगृहीत किया है। अतः अब दुर्लभ अभीष्टदान में अनुग्रहकारी तीर्थराज कालियदह में प्रवेश कर शीघ्र ही इस शरीर का सर्पों को उपहार दूँगी।

(ऐसा कहकर नववृन्दा एवं पिंगला के साथ प्रस्थान करने लगीं)

चन्द्रावली-देव ! एक निवेदन करना चाहती हूँ।

श्रीकृष्ण-देवि ! आज्ञा कीजिए।

चन्द्रावली-देव ! तुम्हारे विलास-सुख का व्याघात करने के कारण मैंने महान पाप किया है। अतः कृपा कर आज्ञा कीजिए कि गोष्ठराज के गोष्ठ में निवास कर तुमको सुखी करूँ।

(पर्दे में) गोष्ठपति नन्दराज श्रीकृष्ण को आलिंगन करने के लिए व्याकुल होकर और बन्धुगण के साथ स्वर्णशकट में आरोहण कर यशोदा एवं पौर्णमासी के द्वारा सुशोभित होकर आनन्द से द्वारका के द्वारपथ में प्रवेश कर रहे हैं ॥१२॥

श्रीकृष्ण-(आनन्द पूर्वक) सखे ! देवी के मंगलमय ध्यान-फल से सकुटुम्ब गोष्ठराज के दर्शन प्राप्त हुए हैं। अतः आओ वहीं गमन करें।

(ऐसा कहकर दोनों का प्रस्थान)

चन्द्रावली-उपयुक्त समय में बन्धुगण उपस्थित हुए हैं। (पर्दे में) पौर्णमासी के द्वारा मार्ग दिखाने पर परिजन के साथ यशोदा रोहिणीदेवी के गृह पर गमन कर रही हैं ॥१३॥

माधवी-सौभाग्य सौभाग्य, क्योंकि ठकुरानी रोहिणी तुम्हारे दुःख को जानती है।

चन्द्रावली-अतः चलें गुरुजन की बन्दना करें। (ऐसा कहकर जाने लगी) यह तो रानी रोहिणी का अन्तःपुर है। (पर्दे से) अहो ! गोपराज-महिषी यशोदा के नयनों से अश्रुधारा और स्तन से दुग्ध-धारा एक साथ वर्षित हो रही है। वे उन धाराओं से अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपने पुत्र को अभिसिंचित कर रही हैं ॥१४॥

चन्द्रावली-यह तो गोकुलेश्वर की गोद में आर्यपुत्र उपविष्ट हैं। अतः मैं अब कुछ समय तक अपेक्षा करूँ। (तदनन्तर यशोदा-पौर्णमासी-मुखरादि का प्रवेश होता है।)

यशोदा-(श्रीकृष्ण के मस्तक का आघ्राण कर अश्रुविसर्जनपूर्वक) तात ! निश्चय तुम हमें भूल गये हो, नहीं तो बहुकाल से मेरा स्मरण क्यों नहीं किया है।

श्रीकृष्ण-(नयनों में जल भरकर) माँ ! इस प्रकार कहकर इस लज्जित व्यक्ति को पुनः लज्जित क्यों कर रही हो।

मुखरा-भगवति पौर्णमासि ! श्रीकृष्ण कोटि ब्रह्माण्ड के नाथ हैं ऐसा आपसे सुनकर भी मेरे निकट गोपनागर रूप से प्रतिभात हो रहा है।

श्रीकृष्ण-(मृदु हँसकर) आर्य्य ! मुखरे ! आपने मेरे मन की बात कही है, ऐसा आशीर्वाद दीजिए, जिससे कि आप सबका उसी प्रकार मंगलभाजन बनूँ॥

पौर्णमासी-हाय ! बहुकाल के बाद मेरा सौभाग्यवीज

अंकुरित हुआ है। क्योंकि आज यशोदा की गोद में उपविष्ट माधव को देख रही हूँ॥

श्रीकृष्ण-अम्बा ! मैंने जिन पशु-पक्षियों का पालन-पोषण किया था, क्या वे आप सबको सुख दे रहे हैं ?

पौर्णमासी-मुकुन्द ! सुख क्यों कहते हो, “दुःख” ऐसा कहो।

यशोदा-तुमने मातृवियोग से दुःखित जिस हरिणशिशु को स्नेह से पात्र में कपिला गो का दुग्ध पान कराकर परिपुष्टि किया था, वह आज तुमको न देखकर कातर होकर उच्च आर्त्तनाद के द्वारा ब्रजवासियों का मर्म भेदकर व्याघ्र के समान क्रीड़ा विस्तार कर रहा है ॥१५॥

पौर्णमासी-हे कंसारि ! जिन मयूरों ने तुमको स्निग्ध पुच्छ रूप कर्णभूषणों का उपहार दिया था, उनको देखकर कौन दुःखित नहीं हो रहा है ? वे मयूर आकाश में समुद्रित नीलवर्ण नवीन मेघ को देखकर “तुम आविर्भूत हुए हो” ऐसा मानकर नृत्य करते रहते हैं ॥१६॥

श्रीकृष्ण-(क्षणकाल मौन होकर) भगवति ! मेरे वयस्य सखाओं का मंगल तो कहो ?

पौर्णमासी-वे सब तुमको देखने के लिए गोपराज के साथ सुधर्मा महल (सभा) में अपेक्षा कर रहे हैं, अतः शीघ्र उनकी अभिलाषा पूर्ण करो॥

श्रीकृष्ण-जो आपकी आज्ञा, ऐसा ही करता हूँ। (भ्रमण करते-करते मन-मन में) माता की वन्दना के लिए ललिता एवं पद्मा का यहां आगमन भी उचित है॥ (ऐसा कहकर प्रस्थान करते हैं)

चन्द्रावली-निकट में जाने का यह अवसर है। (वैसा करने लगी)।

पौर्णमासी-(आनन्द पूर्वक) गोष्ठेश्वरि ! सामने यह चन्द्रावली है।

(चन्द्रावली निकट में जाकर भुजाओं से यशोदा को आलिंगन करने लगी)

यशोदा-(स्नेह-पूर्वक) वत्से ! सौभाग्यवश पुनः तुमको देख रही हूँ।

(ऐसा कहकर कण्ठ में धारण करने लगी)

चन्द्रावली-(यशोदा का अभिवादन कर अश्रुपूर्ण नयनों से) मातः ! इससे बढ़कर तुम्हारे कारुण्य-विलास की प्रचुरता क्या होगी ? आपने मुझे अपने चरण-स्पर्श की सौभाग्य-भागिनी बनायी है।

यशोदा-वत्से ! हमारे उस गोकुलनिवास की बात क्या तुम भूल गई हो ?

चन्द्रावली-मातः ! कोटि माता की भांति स्नेहमयी आप जहां निवास कर रही हैं वहां के निवास-सौभाग्य

को कौन नीच भूल सकता है ?

मुखरा-(चन्द्रावली को आलिंगन कर) हा राधे !
बहुतकाल से तुमको नहीं देख पायी हूँ।

यशोदा-(व्यथा के साथ) हाय धात्रि ! तुमने क्यों
शोकनगर की अर्गलकुंचिका (कुंजी) रूप “राधा” इस
अक्षर का प्रकाश किया है ?।

चन्द्रावली-हाय कनिष्ठ भगिनि ! मैं ऐसी मन्दभागिनी
हूँ कि एकबार भी तुमको न देख पाई।।

रोहिणी-हा त्रिलोकसुन्दरि वत्से ! तुम कहां गई हो ?
पौर्णमासी-हाय-हाय ! मैं बज्र से भी कठिन हूँ,
क्योंकि राधा को खोकर अब तक जीवित हूँ।।

रोहिणी-(धैर्य के साथ) प्रियसखि यशोदे ! चन्द्रावली
बड़ा कष्ट पा रही है, अतः शोकत्याग कर उसको
सान्त्वना दो।

यशोदा-(चन्द्रावली का आलिंगन कर) तुम दुःख मत
करो, इसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं है।।

(तदनन्तर कंचुकी जिनके पीछे-पीछे चल रही थी, वे
दोनों ललिता और पद्मा पृथक् रूप में प्रवेश करती हैं)

पद्मा-(बायीं ओर देखकर आश्चर्यान्वित होकर) यह
कौन है अपूर्वरूपा ? पहले देखा है-ऐसा ज्ञात होता है।
(निकट में जाकर अश्रुपूर्ण नयन से) सुन्दरि ! तुमको
देखकर ललिता समझकर प्रेम से विकल हो रही हूँ।।

ललिता-(संगद्गद) सखि ! क्या तुम पद्मा हो ?।

पद्मा-(आवेग के साथ) हाय ! यह तो ललिता है।
(ऐसा कहकर भुजाओं में एक दूसरे को भर लेती हैं)

ललिता-(गाढ़रूप से आलिंगन कर सजल-नयन से)
प्रिय सखी चन्द्रावली ने तुम्हें क्यों छोड़ दिया ?

पद्मा-सखि ! मैं मन्दभागिनी हूँ।

कंचुकी-यह भगवती रोहिणी का मन्दिर है, यहां दोनों
बहिन प्रवेश कीजिए।

दोनों कहती हैं-निश्चय राज्ञी की वन्दनाके लिए हम
दोनों को लाया गया है।

रोहिणी-भगवति ! यह कौन हैं ? जिसको देख ललिता
को भ्रम हो रहा है।

पौर्णमासी-(व्यग्रता पूर्वक) हाय हाय, देखो यह वही
राधिका की प्राणसखी है।

(ऐसा कहकर सब सामने भागने लगती हैं)

ललिता-आश्चर्य ! गोकुलेश्वरी प्रमुख गोकुल के समस्त
बन्धु यहां उपस्थित हैं ? (ऐसा कहकर रोदन करती-करती
सबके चरण-प्रान्त में गिर जाती है) (सब क्रन्दन करते
हुए उसे उठाकर कंठ से लगाने लगती हैं)

चन्द्रावली-हाय सखि ललिते ! जीवित हो ? (ऐसा

कहकर आलिंगन करती है)

ललिता-(आनन्द से आश्चर्यान्वित होकर) यह तो
प्रियसखी चन्द्रावली है (ऐसा कहकर आलिंगन कर) यह
तो अमृत-सागर में स्वर्ग की चिन्तामणि मिली है, क्योंकि
गोकुलबन्धुओं के साथ तुम्हारा संग लाभ हुआ है।

चन्द्रावली-ललिते ! मैं तुमको भगिनी-रूप में लाभ
कर रही हूँ।

ललिता-हा सखि राधे ! तुम्हारा दर्शन दुर्लभ हो रहा
है। (मुखरा का आलिंगन कर रोदन करने लगती है)

पद्मा-(चन्द्रावली को आलिंगन कर) हाय प्रियसखि !
भाग्यवश तुमको देख पायी हूँ।

पौर्णमासी-देखो, यह रुक्मिणी मूर्ति पद्मा का आलिंगन
कर नयनजल से विगलित हो रही है।

ललिता-(विस्मय के साथ) भगवति ! रुक्मिणी को
प्रियसखी चन्द्रावली करके सुना जा रहा है।

पौर्णमासी-ऐसा ही है।

ललिता-तो सूर्यदत्ता अर्वाचीना सत्यभामा नाम्नी कुमारी
की दुःख-निदान रूप में प्रसिद्धि क्यों है ?

पौर्णमासी-वत्से चन्द्रावलि ! बलदेव-जननी रोहिणी के
मुख से तुम्हारे दुःख का कारण सुना है, अतः चिन्ता मत
करो।

यशोदा-वत्से ! तुम ही राधिका स्थान पर वर्तमान हो,
तब हमारे सामने तुम्हारी क्या चिन्ता है ?

चन्द्रावली-सखि ललिते ! सुनो,

हाय ! जो मेरे प्राणों से भी प्रियतम होने में उपयुक्त
है, वह सौन्दर्य-अवलोकन क्षणकाल के लिए भी नयन-पथ
का पथिक न हुआ, परन्तु जो दुरन्त मनोवेदना में दक्ष है
वह मेरे श्रेष्ठ सहवासि रूप में यहां वास करने लगी
हैं।।१७।।

(व्यस्त होकर बकुला प्रवेश करती है)

बकुला-देवि ! मैं पुनः पुनः निषेध कर रही हूँ तो भी
वह सत्या भीषण सर्पोंसे परिपूर्ण कालियहृद में प्रवेश
करने जा रही है।

पौर्णमासी-दैववश पद्मिनी-हृदय उत्तापकारी शीतलपवन
सर्पोंके मुखविवर में विलीन हो गई है।

बकुला-देखा है, नववृन्दा के स्वामी को यह कथा
जानने पर वह विह्वल होकर सत्या का अनुसरण कर रहे
हैं।

सब बोले-विलम्ब का प्रयोजन नहीं, चलो उस सर्पावास
(कालियदह) में चलो। (ऐसा कहकर स्खलितगति से सब
प्रस्थान करते हैं) (अनन्तर पिंगला के द्वारा अभ्यर्थमाना
राधिका प्रवेश करती हैं)

श्रीराधा-सब प्रकार से परतन्त्रता के कारण श्रीकृष्ण-संग मेरे लिए सुखजनक नहीं हुआ है। मिलन में भी दुःखमय विच्छेद का भय रहता है। अतः मरण ही मेरे एक मात्र गति है-यह निश्चय है।।

पिंगला-राजनन्दिनि ! तुम्हारा इस प्रकार साहस उचित नहीं है।

श्रीराधा-(अवज्ञा पूर्वक) सखि ! यह कालियहृद निविड़ तरंगभंगी के साथ सचरित कृष्ण-भुजंगमण्डली के द्वारा मेरे नयनों का आनन्द विधान कर रहा है।

(वामाक्षिस्पन्दन का अभिनय कर तिरस्कार पूर्वक)-मेरी वामदृष्टि रूपिणी मकड़ी कृपणा होकर भी स्फुरित होकर प्राण पतंग को धरने के लिए शीघ्र ही चारों ओर आशाजाल का विस्तार कर रही है।।२०।।

पिंगला-मंगल की सूचना हो रही है, अतः मुहूर्तकाल की अपेक्षा करो।।

श्रीराधा-दृष्टि मर्कटी के आश्वास में मेरा क्या विश्वास है ? (ऐसा कहकर अवतरण करने लगी है) (तदनन्तर नववृन्दा के साथ श्रीकृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण-हे कठोरे ! शीतल-छाया युक्त सौरभमयी इस तनुलता को, जो मेरे चिर-विरही प्राणपक्षी का एक मात्र आश्रयस्थल है, उसको अत्यन्त कृश कर अब सर्पविष रूप अग्नि में निक्षेप कर रही हो। हाय ! तुम मेरे प्रति विन्दुमात्र भी करुणा नहीं कर रही हो।।२१।।

(ऐसा कहकर कालियहृद में गिरने का अभिनय करने लगे)

नववृन्दा-देव ! यह मणीन्द्र समस्त अनर्थ दूर करता है। (ऐसा कहकर श्रीकृष्ण के मणिबन्ध में मणि को बांधने लगी)

श्रीराधा-हाय धिक् ! हाय धिक् मुझ हतभागिनी को सर्प भी तो दंशन नहीं कर रहे हैं।

(ऐसा कहकर सर्पों के निकट जाने लगीं)

श्रीकृष्ण-(सम्भ्रम पूर्वक निकट जाकर) महासाहसिनि ! यह क्या अन्याय कार्य कर रही हो ? (ऐसा कहकर पीछे से दोनों भुजाओं द्वारा श्रीराधा का कण्ठ-देश धारण करने लगे)

श्रीराधा-(शोक से अनसुनी की भांति आनन्द पूर्वक)-बड़ा भाग्य है, एक ही साथ दो भुजंग मुझको वेष्टन कर रहे हैं। (ऐसा कहकर स्पर्श-सुखानुभव का अभिनय कर) उपयुक्त समय पर अपकारी वस्तु भी प्रिय हो जाती है, क्योंकि यह सर्पस्पर्श भी सुखमय बोध हो रहा है। (ऐसा कहकर) अनुकूल विधाता ने इतने दोनों के बाद मेरे चिरवांछित का साधन किया है, इतने दिनों के

बाद मैं कृष्णभुजंग को प्राप्त हुई हूँ। अब तो मेरी यातनाएँ चिरकाल के लिए दूर हो जायेंगी।।२२।।

नववृन्दा-परमसौभाग्य जो श्रीकृष्ण भुजाओं में इसको इस प्रकार का ज्ञान हो रहा है।

श्रीराधा-(नेत्र को ईषत् उन्मीलित कर) आश्चर्य, मणिकान्ति के द्वारा भूषित-मस्तक होकर यह भुजंग मुझे दंशन नहीं कर रहा है ?

नववृन्दा-हे सौभाग्यवती ! निर्मल मलयवायुसेवी चक्रांकित मणिधारी कृष्ण-भुजंग एवं कृष्णभुजा-इन दोनों में कोई भेद नहीं है।।२३।।

श्रीकृष्ण-हे मनोहरांगि ! तुम्हारे सौन्दर्य-माधुर्य समूह से लक्ष्मी तक भी भीत होती है। इस अपूर्व शरीर को परित्याग कर जगत् को विफलनेत्र करने में क्यों अद्यत हो रही हो ?।।२४।।

श्रीराधा-(गर्दन घुमाकर देखती हुई) हाय ! धिक्कार, धिक्कार ! मैं निहत होकर के भी सुन्दर रूप से निहत हो गई हूँ। क्योंकि मुझ नगण्य व्यक्ति के लिए आप अपने त्रिलोक-सुखवर्धनकारी शरीर को कालियदह में निक्षेप कर रहे हैं ?

श्रीकृष्ण-(निकट आकर श्रीराधिका के हाथ में स्यमन्तकमणि बांधकर मृदुहास्य युक्त तिरस्कार पूर्वक)-हे निष्ठुरे ! तुम अनुराग से स्वयं सर्पों के विषदन्त का भंजन कर भोगाभिलाषी मुझे काम्य-वस्तु से निवारण करने में क्यों उद्यता हुई हो ? (ऐसा कह कर पिंगला के साथ दोनों प्रस्थान करते हैं तदनन्तर पौर्णमासी आदि का अनुगमन करते हुए रोती हुई यशोदा प्रवेश करती हैं)

यशोदा-हाय हाय ! वह कालिय हताश होकर चला गया था, पुनः इस मन्दभागिनी के लिए वह आ रहा है क्या ?

नववृन्दा-(मन में) राधिका की परवश्यतारूप बाधा को निवृत्त करने के लिए मैंने जिस कौशल की अवतारणा की है, वह सिद्ध हुआ है। (प्रकाश्य में) हाय पूजनीय आर्यागण ! अब आप सब शान्त होइये। क्योंकि खेद परित्याग के लिए गरुडध्वज श्रीकृष्ण सत्यभामा को उठा कर तट पर आ गये हैं।

सब ने गद्गद होकर कहा-अच्छा है अच्छा है, मंगल-मंगला (ऐसा कहकर सबने धैर्य धारण किया) (पर्दे में) दुर्गादेवी को पार्श्व में से कर श्रेष्ठ वृषभ पर आरोहण पूर्वक अर्धचन्द्रचूड़ महादेवजी त्रिभुवन के गुरु पद्मयोनि ब्रह्मा को आगे कर श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए शीघ्र ही द्वारकापुरी में प्रवेश कर रहे हैं।।२५-२६।।

नववृन्दा-देखो देखो, गिरीन्द्रनन्दिनीवल्लभ शंकर के

आनन्द-वर्धन के लिए मुकुन्द आगे आकर उपस्थित हो रहे हैं।

(सब दूर से श्रीकृष्ण को देखकर सब आनन्द प्रकाशित करने लगते हैं)

पौर्णमासी-नववृन्दे ! तुम्हारी प्राणसखी सत्या कहाँ है ?

नववृन्दा-आगे माधवमण्डप में।

पौर्णमासी-श्रीहरि के बिना जाने शीघ्र ही सत्या को कुण्डिननगर में भेजती हूँ।

मुखरा-मैं जाकर उसको ले आती हूँ। (ऐसा कहकर चली जाती है)

(पिंगला के साथ श्रीराधा प्रवेश करती है)

श्रीराधा-सखि ! यहाँ कौन कथोपकथन कर रही है ?

पिंगला-देवि ! रुक्मिणि के कुटुम्बीगण तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं।

श्रीराधा-हाय ! मेरे लिए मरण दुर्लभ हो रहा है। (ऐसा कहकर मुख ढककर रोदन करती है)

मुखरा-(दूर से देखकर चमत्कृत हो फिर आती है।)

पौर्णमासी-मुखरे ! क्यों फिर आ रही हो ?

मुखरा-भगवती ! कुछ बोलना चाहती हूँ परन्तु भय हो रहा है।

पौर्णमासी-मुग्धे ! भय क्या है विश्वस्त चित्त से कहो।

मुखरा-(अश्रुपूर्ण गद्गद कण्ठ से कान-कान में)-ऐसा है।

पौर्णमासी-(तिरस्कार पूर्वक) प्रलापिनि ! चुप हो तुम्हारा ऐसा भाग्य कहाँ है ?

यशोदा-भगवति ! यह क्या कह रही है ?

पौर्णमासी-गोकुलेश्वरी ! वह अवश्यम्भाविनी कथा है।

(मुखरा पुनः कान-कान में कुछ कहने लगी)

पौर्णमासी-जान लिया, जान लिया, महारत्न के कारण तुम भ्रान्ता हो रही हो।

मुखरा-नातिनि ललिते ! तुम एक बार आकर देखो।

(ललिता पौर्णमासी के मुख को देखने लगती है)

पौर्णमासी-वहाँ जाती हूँ, इसमें दोष क्या है ? (सब जाने के लिए उद्यत होती हैं)

पौर्णमासी-(ललिता एवं मुखरा के साथ कुछ आगे जाकर औत्सुक्य के साथ) यद्यपि इस सुन्दरी का सर्वांग नहीं दीख रहा है, तो भी यह वरांगी मेरे हृदय में कुछ करुणा का संचार कर चमत्कार आरोप कर रही है।

ललिता-(निकट जाकर गद्गद से) अयि ! क्षीणोदरि ! क्यों रोती हो ?

श्रीराधा-(मुख से अंचल दूर कर रोती-रोती) हाय हाय ! यह मेरी प्रियसखी ललिता कहाँ से आई है ? हाय ! वत्सला भगवती कहाँ से आई और आर्या मुखरा भी कहाँ से आई ? (ऐसा कहकर आनन्द से घूर्णित होकर पृथ्वी में गिर जाती है)।

ललिता-(विचित्र शब्द करती हुई श्रीराधा को आलिंगन कर प्रमोद-मूर्च्छा को प्राप्त होती है)

पौर्णमासी-अहो ! वत्सा राधिका किस प्रकार यहाँ आई ? (ऐसा कहकर उच्चःस्वर से रोने लगती है)

मुखरा-नातिनि ! पुनः तुमको प्राप्त किया है। (ऐसा कहकर उन्माद का आचरण करने लगी)।

यशोदा-(रोहिणी के साथ भागकर गद्गद होकर) हा वत्से ! तुम जीवित हो ! (ऐसा कहकर मुखचुम्बन करने लगती है)

चन्द्रावली-(कम्पितांग होकर) क्या ? यह मेरी भगिनी राधिका है ? (ऐसा कहकर स्खलित गति से श्रीराधा का कण्ठ धारण करने लगती है)

पौर्णमासी-अहो ! तीव्र तृष्णात्तों के लिए मरुप्रदेश में स्वयं शीतल-नदी उपस्थित हुई है।

श्रीराधा-(सबका चरणबन्दन कर उत्कण्ठा पूर्वक) मेरी भगिनी चन्द्रावली कुशल में है ?

चन्द्रावली-(गाड़ आलिंगन कर) बहिन ! मैं दुर्जन हतभागिनी चन्द्रावली हूँ मैं।

(ऐसा कहकर रुदन करती है)

श्रीराधा-(आनन्द-सम्भ्रम पूर्वक चरण में गिरकर) हा धिक् हा धिक् ! हतदैव के द्वारा मैं प्रतारित हुई हूँ। (अनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण-(आनन्द पूर्वक) वहुकाल के बाद अपने को गोकुलवासी मानकर आनन्द-मुग्ध हो रहा हूँ।

यशोदा-(कृष्ण का आलिंगन कर) तात ! बड़े सौभाग्य का विषय है कि वधू को लेकर तुम कालियदह से निष्क्रान्त हुए हो।

नववृन्दा-गोकुलेश्वरि ! वह भुजंग का संग मायामय था। (ऐसा सुनकर सब हँसने लगे)

ललिता-सखि ! राधे ! विशाखा कहाँ है ?

नववृन्दा-देखो यह, विशाखा निज सूर्यप्रदत्त घोड़े से उतरकर आनन्द पूर्वक आ रही है।

(सब आगे बढ़कर विशाखा को आलिंगन करने लगे)

विशाखा-(गुरुजनों का चरणवन्दन कर श्रीराधा को आलिंगन करती है)

ललिता-हे सखि विशाखे ! सौभाग्य से ही तुम्हें देखा है। (ऐसा कहकर दोनों आलिंगन करती हैं)

चन्द्रावली-(कान-कान में) भगवति ! मेरे वचन के अनुसार राधिका के पाणिग्रहण के लिए आर्यपुत्र को निवेदन कीजिए।

पौर्णमासी-वत्से ! तुम चतुरजनों की शीर्ष स्थानीया हो। अतः श्रवण करो। हे देवि ! तुमसे मधुरिपु के हाथ में राधिका को समर्पण कराने पर इनके विवाह-विधान में रत्नधारा अभिषेक की प्रेम सौभाग्य रूप घण्टाध्वनि त्रिजगत् में हर्ष-विधान करेगी और “यह साध्वी है यह देवी है” यह प्रसिद्धि चिरकाल तक उदित रहेगी।

चन्द्रावली-(हर्ष के साथ) आर्य ! मेरी ऐसी इच्छा है कि गोकुलेश्वरी के सामने इसका सम्पादन कीजिए।

(पौर्णमासी यशोदा को निवेदन करती है)

यशोदा-पुत्र ! वत्सा चन्द्रावली कुछ निवेदन करना चाहती है।

श्रीकृष्ण-मातः ! आज्ञा दीजिए, इसकी किस अभिलाषा को पूर्ण करूँ ?

यशोदा-इस प्रकार है वह।

श्रीकृष्ण-मातः ! जैसी आज्ञा, ऐसा ही हो। (ऐसा कहकर निकट जाकर कान में देवी के प्रति) देवि ! यह गुरुतर महाभार अत्यन्त दुर्वह है। अतः इसके अतिरिक्त और कुछ आदेश करो।

चन्द्रावली-(प्रणय-ईर्ष्या के साथ) उपयुक्त समय पाकर भय करना तुम्हारे पक्ष में उचित है। (ऐसा कहकर श्रीराधा का कर धारण पूर्वक) हे पुण्डरीकाक्ष ! यह मेरी भगिनी है। आप मुझसे अधिक इसका आदर करना (ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के हाथ में श्रीराधा को समर्पण करने लगती है)

श्रीकृष्ण-(मदुस्वर से) देवि ! तुम्हारे अनुग्रह की कौन अभ्यर्थना नहीं करेगा। (ऐसा कह आदर के साथ ग्रहण करते हैं।)

(पर्दे में) जाम्बवानु के मुख से यह वृत्तान्त अवगत कर पर्वतराज विन्ध्य रैवत पर्वत के साथ बायें हाथ में गोवर्द्धन का हाथ ग्रहण कर अपने नगर से श्रीकृष्ण नगरी में प्रवेश कर रहा है।

पौर्णमासी-देखो, देखो, वसुदेवजी वृष्णीवंशीय वीरों से परिवृत होकर हलधर का हाथ धारण कर अपूर्व विवाहवेदी में प्रवेश कर रहे हैं। इधर देवकी यदुकुल-रमणियों से सेवित होकर रेवती देवी की सद्भाव से पकड़ कर उपस्थित हो रही है। ॥२७॥

नववृन्दा-देखो, देखो ! श्याम उत्कण्ठता होकर दोनों हस्तों से भद्रा का दक्षिणहस्त एवं शैव्या का वाम हस्त ग्रहण कर आगे आ रही है। (पर्दे से आवाज आती

है)-श्रीराधिका के विवाह-विधान में देवी रुक्मिणी प्रसन्न होकर अपने पिता का प्रण खण्डन करने लगी है। इस समय कार्यदक्ष गरुड़ मृदुहास्य के साथ उन सोलह हजार एक सौ कुमारियों को लाकर पर्ववेदी में प्रवेश कर रहा है। ॥२८-२९॥

यशोदा-आश्चर्य, देव की एक समय सब प्रकार से अनुकूलता हो रही है ?

पौर्णमासी-देखो देखो, दाहिने में श्रीदाम के साथ एवं बायें ओर सुबल के साथ सुशोभित होकर परम आनन्द के साथ सामने श्रीनन्द प्रवेश कर रहे हैं। (श्रीनन्दजी का प्रवेश होता है) ॥३०॥

श्रीनन्द-भगवति ! चिर-पोषित मनोरथ के पूर्ण हाने के कारण मैं चरितार्थ हो गया हूँ।

(श्रीकृष्ण को आलिंगन करते हैं)

श्रीराधा एवं चन्द्रावली पौर्णमासी की ओट में रहकर गोपराज-श्रीनन्द को प्रणाम करती हैं।

श्रीनन्द-एक दूसरे को प्राणों से भी अधिक मान कर सौभाग्यवती रहो पुत्रियों ! ऐसा आशीर्वाद देते हैं।

पौर्णमासी-समस्त सतीवृन्दों के साथ यह अरुन्धती आगमन कर रही हैं, और अखाण्डित व्रत वाली अगस्त्य-पत्नी साक्षात् आकर मिल रही है। ॥३१॥

नववृन्दा-देखो, देखो ! देवताओं के अधिपति इन्द्र पुलोमतनया शची को लेकर, कुवेर अपनी भार्या रिद्धी को लेकर, सूर्य-सुत यम धूमीना को लेकर, वरुण गौरी नाम्नी भार्या को लेकर, चण्ड किरणवाला सूर्य अपनी पत्नी विश्वकर्मा पुत्री संज्ञा को लेकर, वायुदेव शिवा को लेकर, अग्निदेव अपनी पत्नी स्वाहा को लेकर, और चन्द्रदेव रोहिणी को लेकर द्वारका में उपस्थित हो गये हैं। ॥३२॥

(पर्दे में से आवाज आती है)-यह सैरन्धी (कुब्जा) नाना प्रकार सुगन्ध अंगराग को प्रस्तुत कर रही है। सुदामा आनन्दित मन से प्रचुर माला ग्रन्थन कर रहा है। यह दरजी विविध उत्कृष्ट वस्त्रों की रचना कर रहा है। इस प्रकार अति आनन्द से विह्वलचित्त परिजनों से पूर्ण होकर द्वारका नगरी अत्यन्त उल्लास प्रकट कर रही है। ॥३३॥

ललिता-विशाखे ! पुनः श्रीश्रीराधाकृष्ण दोनों का संगम महोत्सव दर्शन कर तुम अत्यन्त कृतार्थ हुई हो।

पौर्णमासी-हे श्रीकृष्ण ! अभिषेक की समस्त वस्तुएँ उपस्थित हैं। अतः पहले श्रीराधा के साथ पर्ववेदि को भूषित करो और उसके बाद क्रम से कुमारियों के साथ विवाह-वेदिओं को अलंकृत करो।

श्रीकृष्ण-(सबका अभिनन्दन करते हुए निर्जन में) प्राणेश्वरी राधे ! प्रार्थना करो इससे आगे तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ?

श्रीराधा-(आनन्द के साथ) स्वभाव से मधुर प्रेम से मनोहारिणी ये सखीगण आकर मिलित हो रही हैं। भगिनी चन्द्रावली एवं श्वश्रु गोष्ठेश्वरी को प्राप्त हुई हूँ। इस वृन्दावन के निकुंज धाम में आपके साथ नाना रस सम्पन्न मिलनोत्सव सम्पन्न हुआ है। अतः इसके आगे मेरा क्या प्रियतर कर्तव्य अवशिष्ट रहा है। तो भी ऐसा हो, कि जो सब स्थिर-बुद्धि वाले जनगण बहुकाल से आप में आशा मात्र धारण कर माधुर्यमय गम्भीर मधुपुर में निवास कर रहे हैं, हे गोकुलपते ! किशोरवय की सख्यता धारणकर आपको अवश्य उनके नयनपथ का पथिक होना पड़ेगा ॥३४-३५॥

और आपके लीलास्थान समूह की सौरभ को विस्तार करने वाले वनसमूह से परिव्याप्त एवं माधुर्य समूह से परवेष्टित मधुरा नामक जो पवित्र भूमि विराजमान है, उसमें गोपीभाव से मुग्धचित्त हम सबसे परवेष्टित होकर प्रफुल्ल-वदन पूर्वक उल्लासमय वेणु वादन करो।

श्रीकृष्ण-प्रिये ! ऐसा ही होगा।

श्रीराधा-किस प्रकार ?

श्रीकृष्ण-(स्थगित होकर दायीं ओर दृष्टिपात करने लगे)

(गार्गी के साथ एकानंशा देवी प्रवेश करती है)

एकानंशा-सखि ! राधे ! इसमें कुछ संशय मत करो। क्योंकि तुम सब उस श्रीमद्गोकुल में वर्तमान हो। परन्तु मैंने समयक्षेपण के लिए लीलाविस्तार किया है। अतः इसको मन-मन में अनुभव करो। श्रीकृष्ण भी उसी गोकुल में अवस्थित हैं-ऐसा विश्वास करो।

गार्गी-(मन मन में) मैंने पिता के मुख से जो सुना, वह सफल हुआ।

श्रीराधा-यह सब श्रवण कर आनन्द से विह्वल होने लगी।

गार्गी-सखि ! शान्त हो।

श्रीराधा-(आश्वासित होकर वक्रदृष्टि से श्रीकृष्ण को देखने लगीं)

श्रीकृष्ण-प्रिये ! तुम्हारा और अधिक क्या प्रिय साधन करूँ ?

श्रीराधा-(मृदुहास्य) हम सब बहिरंगजन के द्वारा अलक्षित होकर अपने-अपने स्वरूप से गोकुल को विभूषित करेंगी।

श्रीकृष्ण-प्रिये ऐसा हो। अब आओ तुम्हारी भगिनी की प्रार्थना को सफल करें ॥३६-३७॥

(ऐसा कहकर सबसे परिवेष्टित होकर दोनों चले जाते हैं)

सबका प्रस्थान होता है।

इस प्रकार पूर्ण-मनोरथ नामक दसवां अंक समाप्त हुआ ॥१०॥

इस नाटक में मन्थन मनोहारी श्रीहरि अपनी इच्छारूप समुचित उदात्त नायकता को प्रकाश कर लीला के द्वारा ललितभाव को प्राप्त हो रहे हैं।

॥ इस प्रकार श्रीललितमाधव नाटक का श्रीश्यामदासकृत अनुवाद समाप्त हुआ ॥

दिनांक : २६ अगस्त श्रीगुरुपूर्णिमा संवत् २०४८